वर्ष:46, अंक: 4 जुलाई-अगस्त 2023

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

लोक साहित्य और इतिहास

गगनांचल के आगामी अंकों की आवरण कथाओं के संभावित विषय

सितम्बर-अक्तूबर, 2023

वसुधैव कुटुम्बकम् की भारतीय संकल्पना

जी 20 और वसुधैव कुटुम्बकम्
जी 20 की भारतीय अध्यक्षता के निहितार्थ
वसुधैव कुटुम्बकम् की भारतीय संकल्पना
ग्लोबल विलेज और वसुधैव कुटुम्बकम्
क्या हो वसुधैव कुटुम्बकम् का आर्थिक स्वरूप
राजनीतिक शक्ति संतुलन और वसुधैव कुटुम्बकम्
इतिहास में वसुधैव कुटुम्बकम्

नवम्बर-दिसम्बर, 2023

भारत-रूस सम्बन्ध के 70 वर्ष

रूस में भारतीय संस्कृति
भारत-रूस संबंध और हिन्दी की भूमिका
भारत-रूस सम्बन्धों का इतिहास
भारत-रूस में सांस्कृतिक आदान-प्रदान
भारत-रूस आर्थिक संबंधों की संभावनाएं
भारत और रूस में सामरिक संबंध
विविध सोवियत गणराज्यों के साथ भारत के सम्बन्ध

ISSN : 0971-1430

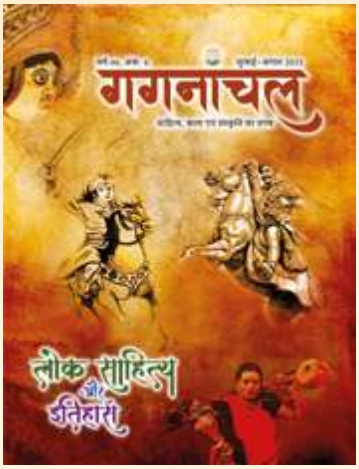

वर्ष:46, अंक: 4 जुलाई–अगस्त 2023

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

प्रकाशक

कुमार तुहिन

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

संपादक

रवि शंकर

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली–110002

ई–मेल : pohindi.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध
http://www.iccr.gov.in/Publication/Gagananchal
पर क्लिक करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	₹ 500
	यू.एस	$ 100
त्रैवार्षिक	:	₹ 1200
	यू.एस.	$ 250

उपर्युक्त सदस्यता शुल्क का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रण : स्पेस 4 बिजनेस सोल्यूशन्स प्रा. लि. दिल्ली

इस अंक के आकर्षण

लोक साहित्य में इतिहास

भारत-मॉरिशस की लोक-संस्कृतियों में अंत:संबंध

मुख्तार औजोव का रचना संसार और भारत

पत्रकारिता और लाला लाजपत राय

मणिपुर के एकल नृत्य में जयदेव का 'गीत-गोविन्द'

वास्तुकला का अद्भुत उदाहरण त्रिलोकीनाथ का मंदिर

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अत: प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

अनुक्रम

गगनांचल
साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम
वर्ष:46, अंक: 4, जुलाई-अगस्त 2023

प्रकाशकीय

3 **लोक साहित्य ने दिलाई विश्व में भारत को पहचान**
कुमार तुहिन

संपादकीय

4 **लोक साहित्य ही है राष्ट्र के अस्तित्व का आधार**
रवि शंकर

आवरण कथा

5 **लोक जीवन और लोक साहित्य में इतिहास**
डॉ. विवेक भटनागर

11 **लोकसाहित्य और इतिहास**
डॉ. अरुण प्रकाश

13 **वार्ता साहित्य और इतिहास-लेखन का स्वरूप**
रजत शर्मा

19 **राष्ट्र की चिति है हमारा लोक साहित्य**
सोमदत्त शर्मा

25 **लोक-साहित्य के द्वारा लोक-शिक्षण**
डॉ. रमेश तिवारी

विश्ववारा संस्कृति

29 **भारत व मॉरीशस की लोक-संस्कृतियों में अंत:संबंध**
डॉ. अनीता शुक्ल, सुश्री शिक्षा धनपत

35 **हिंदी सांस्कृतिक शब्दावली से थाई का अनुवाद विश्लेषण**
डॉ. वुत्थिफोंग थविलसमबत

41 **मुख्तार औजोव का रचना संसार और कजाख साहित्य में भारतप्रेम**
अकमारल कैनाजारोवा

साहित्य

47 **सप्त-सिंधु क्षेत्र में पत्रकारिता और लाला लाजपत राय**
डॉ. जयप्रकाश सिंह, संजीव कुमार

55 **विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होती हिंदी**
डॉ. वाय. जी. काले, अभिनय कुमार शर्मा

60 **राष्ट्रीय चेतना का अलख जगाती कालजयी कहानियाँ**
डॉ. पुरुषोत्तम पाटील

65 **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की शिक्षा-नीति**
डॉ. बिजय कुमार रबिदास

कला

77 **वास्तुकला का अद्भुत नमूना त्रिलोकीनाथ मंदिर**
शकुन्तला देवी

79 **मणिपुर के एकल नृत्य में जयदेव कृत 'गीत-गोविन्द': गुरु मैसनम अमूबी सिंग का योगदान**
डा.खंगेम्बम खोनी

संस्कृति

83 **गोस्वामी तुलसीदास की जन्मस्थली है सोरों शूकर क्षेत्र**
प्रो. योगेंद्र मिश्र

86 **इतिहास में गुम चोल एवं अन्य भारतीय राजवंश**
प्रणय कुमार

स्थायी स्तंभ

72 **कहानी: और तिलिस्म टूट गया..**
महावीर राजी

89 **गतिविधियाँ**

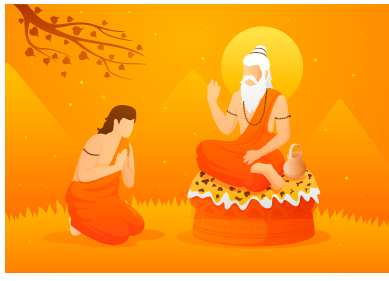

प्रकाशकीय

लोक साहित्य ने दिलाई विश्व में भारत को पहचान

भारत की संस्कृति का एक अविभाज्य हिस्सा है उसका लोक साहित्य। भारत का लोक साहित्य न केवल काफी विविधतापूर्ण है, बल्कि उसमें भारत के इतिहास, विज्ञान, परंपराएं, सामाजिक व्यवस्थाओं का चित्रण, राजनीतिक शिक्षण आदि भी भरपूर प्राप्त होता है। भारत के लोक साहित्य में निहित इन मूल्यों और परंपराओं पर गगनांचल के कुछ अंक निकालने की योजना है, जिसमें से यह पहला अंक पाठकों को समर्पित है। इस अंक में लोक साहित्य और उसमें निहित इतिहास पर कुछ सामग्री दी जा रही है।

भारत में इतिहास की एक सुदीर्घ परंपरा प्राप्त होती है। हालाँकि विदेशी औपनिवेशिक इतिहास लेखकों ने यह दिखलाने का प्रयास किया कि भारत में इतिहास लेखन की कोई परंपरा नहीं रही है और इसलिए भारत का इतिहास लिखने के लिए अनिवार्य रूप से विदेशी यात्रियों के वर्णनों पर ही निर्भर रहना होगा। सत्य ऐसा नहीं है।

भारत का इतिहास न केवल लिखित रूप में सुरक्षित मिलता है, बल्कि वह लिखित इतिहास लोक परंपराओं में जाने पर लोक साहित्य में बिखरा हुआ प्राप्त होता है। भारत की आंचलिक भाषाओं में व्याप्त लोक साहित्य पर यदि हम दृष्टिपात करेंगे तो हमें भारत के इतिहास के अनेक अनछुए आयाम देखने को मिलेंगे। भारतीय योद्धाओं की शौर्य गाथाएं मिलेंगी तो भारतीय संतों की त्याग की कहानियां भी मिलेंगी। रोचक बात यह है कि भारत के सभी भागों में प्रचुर लोक साहित्य प्राप्त होता है और वह प्राचीन परंपराओं से व्यवस्थित रूप से जुड़ा मिलता है।

भारत के समस्त लोक साहित्य में रामायण और महाभारत की कथाएं प्राप्त होती हैं। लोक गीतों और लोक नृत्यों की विभिन्न परंपराओं में रामायण और महाभारत का गायन और मंचन किया जाता है। स्थानीय लोक देवताओं और योद्धाओं के संघर्षों की कहानियां लोक साहित्य में मिलती हैं, लिखित इतिहास तो उनकी उपेक्षा कर देता है। उदाहरण के लिए आल्हा ऊदल की कहानी हो या फिर गोगा महाराज की उनका इतिहास तो लोक साहित्य ने ही सुरक्षित रखा है।

लोक साहित्य विभिन्न भाषाओं में होने के बाद भी भारत की एकात्मता का एक ज्वलंत प्रमाण भी है। भारत की कोई भी भाषा हो, उसके लोक साहित्य में दर्शन की समानता प्राप्त होती है। सभी भाषाओं के लोक साहित्य में आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म आदि के सिद्धांत प्राप्त होते हैं। भारत का समस्त लोक साहित्य भारतीय संस्कृति को एक समान रूप में प्रदर्शित करता है। यही उसका वैशिष्ट्य है।

भारत के लोकगीतों में न केवल भारत की पारिवारिक परंपरा दिखती है, बल्कि उसमें वह इतिहास भी गुंथा हुआ मिलता है, जिसे आज हम माइथोलॉजी कह कर नकार देते हैं। इन लोकगीतों में हमें श्रीराम, सीता आदि आमजन की भांति उपस्थित मिलते हैं और वे आमजन की भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए भी दिखते हैं।

भारतीय संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने में लोक साहित्य का बड़ा योगदान रहा है। भारतीयों को जब गिरमिटिया मजदूर बना कर ले जाया गया था तो उन्होंने लोक साहित्य के माध्यम से ही अपनी संस्कृति को संरक्षित करके रखा। विश्व में उनकी अपनी पहचान भी इस लोक साहित्य के कारण ही बन पाई।

कुमार तुहिन
महानिदेशक

संपादकीय

लोक साहित्य ही है राष्ट्र के अस्तित्व का आधार

किसी भी देश या स्थान की इतिहास वहाँ की स्मृति होती है। स्मृति यानी यादें। स्मृतियों के होने से ही व्यक्ति का अस्तित्व होता है। इसीप्रकार स्मृतियों के होने से ही देशों या राष्ट्रों का अस्तित्व होता है। जब हम पढ़ते हैं कि यूनान, मिश्र, रोम आदि मिट गए, इसका अर्थ है कि वहाँ के लोगों में उनके अपने इतिहास का स्मृतिलोप हो गया। वे भूल गए कि वे कौन हैं और उनकी नयी पहचान बना दी गई। दुर्भाग्यवश गत डेढ़ सौ वर्षों से ए नेशन इन द मेकिंग के नाम से भारतवर्ष में भी यही करने का प्रयास हो रहा है।

लोगों की स्मृतियों के इतिहास ही लोक साहित्य में परिलक्षित होता है। यदि यह लोक साहित्य शास्त्रों से सम्बद्ध रहे तो उसकी स्मृति और प्रगाढ़ हो जाती है। यूनान, मिश्र, रोम आदि इसलिए मिट गए, क्योंकि शास्त्रों से उनकी दूरी हो चुकी थी और लोक साहित्य नष्ट कर दिया गया। पूरे यूरोप का मूल संकट यही है कि वहाँ लोक तो था, परंतु वह अपनी शास्त्रीय परंपरा से दूर था और इसलिए वहाँ लोक साहित्य उनके इतिहास को स्पष्ट रूप से बता पाने में सक्षम नहीं होता। भारत में लोक साहित्य भारत के इतिहास को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करता है और इसलिए वह भारत की पहचान और अस्तित्व को बनाए रखने में सक्षम रहा है।

भारत की नयी पहचान बनाने के लिए लोक साहित्य की उपेक्षा आवश्यक थी और इसलिए औपनिवेशिक इतिहासलेखन ने लोक साहित्य में वर्णित इतिहास को इतिहास मानने से इनकार कर दिया। वैज्ञानिक इतिहासलेखन के नाम पर लोक साहित्य के इतिहास को मिथक, गल्प आदि कह कर नकारा गया और ऐतिहासिक स्रोत के रूप में उसकी उपेक्षा की गई। इसका एक कारण और भी था। यह कारण था लोक साहित्य के विकास क्रम के संबंध में मिथ्या औपनिवेशिक अवधारणा।

औपनिवेशिक अवधारणा यह मानती है कि मनुष्यों का विकास पशुओं से हुआ है और इसलिए लोक स्मृतियाँ तथा उन पर आधारित साहित्य हमारे पिछड़ेपन की ही कहानी बताएंगे, विकसित अवस्था के नहीं। उन्हें आदिम स्मृतियां कहकर उन्हें हीन बताने का भी प्रयास किया गया। इसलिए लोक साहित्य और परंपराओं को संग्रहालय की वस्तु के रूप में देखा गया, समाज की जीवंत परंपरा के रूप में नहीं। दूसरी ओर, भारतीय परंपरा यह मानती है कि हम पशुओं से विकसित नहीं हुए, बल्कि हम अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न ऋषियों की संतानें हैं और इसलिए हमने अपनी लोक स्मृतियों में उनकी परंपराओं को संजो कर रखा हुआ है। भारत के लोक साहित्य को देखें तो यह बात अक्षरशः सत्य भी प्रतीत होती है। ग्राम्य और नगरीय लोक साहित्य की तो बात छोड़ दें, भारत में जिन्हें आज आदिम जनजातियां कहा जाता है, उनकी लोक स्मृति में भी भारत की ऋषिप्रणीत शास्त्रीय परंपरा के सूत्र प्राप्त होते हैं।

इसलिए आज की यह आवश्यकता है कि हम लोक साहित्य, उस पर आधारित आयोजनों की परंपराओं तथा उनमें वर्णित इतिहास का पुनःस्मरण करें। रामलीलाएं और पंडवानी जैसी नृत्य नाटिकाएं भारत की ऐतिहासिक धरोहर को ही संजोए हुए हैं। प्राचीन इतिहास के साथ-साथ नवीन इतिहास को भी लोक साहित्य और परंपराओं में संभाल कर रखा गया है। आल्हा-ऊदल और गोरा-बादल इतिहास की पुस्तकों से अधिक लोक साहित्य में उपलब्ध होते हैं।

यह विषय इतना बड़ा है कि इस पर कई अंक निकाले जा सकते हैं। इस अंक से इस विषय का प्रारंभ किया जा रहा है। इस प्रारंभ से प्रेरणा लेकर देश के समस्त राज्यों के लोक साहित्य और उनमें वर्णित इतिहास पर शोधपरक सामग्री तैयार की जाए और एक-एक राज्य के लोक साहित्य और उसमें वर्णित इतिहास पर हम एक-एक अंक निकालने सकें, इस आशा के साथ यह अंक सभी सुधि पाठकों को समर्पित है।

रवि शंकर
मोबाइल : +91-8076624400
ई-मेल : ravis.dhn@gmail.com

लोक जीवन और लोक साहित्य में इतिहास

- डॉ. विवेक भटनागर

भारतीय लोक परंपराओ ने अपनी लोक संस्कृति की रक्षा की है। लोक संस्कृति प्रकृति की गोद में पनपती है। लोक संस्कृति की शिक्षा प्रणाली में श्रद्धा-भक्ति की प्राथमिकता रहती है। लोक संस्कृति में श्रद्धा भावना की परम्परा शाश्वत है, वह अन्त: सलिला सरस्वती की भाँति जनजीवन में सतत प्रवाहित हुआ करती है। लोक संस्कृति एवं लोकोत्तर संस्कृति तथा विश्व की सभी संस्कृतियों का बीज एक ही है। यह बीज लोक संस्कृति ही है। लोक को समझना इतना आसान भी नहीं है, लोक परम्परा और लोक संस्कृति में भी बड़ा अन्तर है, परम्पराओं में से अच्छी अच्छी बातें निकल निकल कर कालांतर में लोक संस्कृति बनती रहती है, लोक संस्कृति अन्तस में रची बसी होती है।

संस्कृति लोक में ब्रह्म के समान है। यह एक सम्पूर्ण जगत का निर्माण ब्रह्म की भाँति करती है। वह सामाजिक जीवन की विधि निर्माता है, इसलिए विधाता भी है। वह इतनी व्यापक है कि समाज के विज्ञान, इतिहास, साहित्य और दर्शन के विभिन्न आयामों का बोध करती है, इसलिए जीवन की विविध प्रवृत्तियों से सभी को प्रभावित करती है। जीवन की बाह्य प्रवृत्ति-मूलक अभिधारणाएं सभ्यता स्वरूप है और उसकी अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों संस्कृति स्वरूप है।

लोकसंस्कृति पर विभिन्न विद्वानों यथा डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. सत्येन्द्र आदि ने भी यह बताया है कि लोकसंस्कृति वह संस्कृति है, जो अनुभव, श्रुति और परम्परा से चलती है। इसके ज्ञान का आधार पोथी नहीं होती।

लोक संस्कृति के विविध आयाम

भारतीय लोक परंपराओ ने अपनी लोक संस्कृति की रक्षा की है। लोक संस्कृति प्रकृति की गोद में पनपती है। लोक संस्कृति की शिक्षा प्रणाली में श्रद्धा-भक्ति की प्राथमिकता रहती है। लोक संस्कृति में श्रद्धा भावना की परम्परा शाश्वत है, वह अन्तः सलिला सरस्वती की भाँति जनजीवन में सतत प्रवाहित हुआ करती है। लोक संस्कृति एवं लोकोत्तर संस्कृति तथा विश्व की सभी संस्कृतियों का बीज एक ही है। यह बीज लोक संस्कृति ही है। लोक को समझना इतना आसान भी नहीं है, लोक परम्परा और लोक संस्कृति में भी बड़ा अन्तर है, परम्पराओं में से अच्छी अच्छी बातें निकल निकल कर कालांतर में लोक संस्कृति बनती रहती है, लोक संस्कृति अन्तस में रची बसी होती है।

लोक संस्कृति के संरक्षक, प्रतिष्ठापक ये ग्रामीण, परमहंस अथवा अबोध बालक की भाँति स्वयं अपने को कुछ भी नहीं समझा करते। इनके मर्म और वास्तविक स्वरूप को अध्ययन-मननशील विद्वान ही समझते हैं। भारतीय लोक संस्कृति की आत्मा भारतीय साधारण जनता है जो नगरों से दूर गाँवों, वन-प्रांतों में निवास करती है।डॉ. रामप्रसाद दाधिच के अनुसार राजस्थान के बहुआयामी विराट् लोक-साहित्य की श्री-सम्पदा के अवलोकन के पूर्व लोक-साहित्य शब्द के पारिभाषिक स्वरूप को समझ लेना आवश्यक है। लोक-साहित्य वस्तुतः लोक की मौखिक अभिव्यक्ति है। यह साहित्य आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना से शून्य होता है। यह किसी एक व्यक्ति की कृति नहीं होता। परम्परागत मौखिक-क्रम से यह अतीत से वर्तमान और वर्तमान से भविष्य में संचरण करता है। इसमें समूचे लोक-मानस की प्रवृत्ति समाई रहती है। शिष्ट-साहित्य और लोक-साहित्य से अन्य विभाजन रेखाओं के अतिरिक्त एक मूलभूत रेखा है- अहं चैतन्य की। यह अहं चैतन्य शिष्ट - साहित्य में

विद्यमान रहता है, किन्तु अपने ज्ञापित और परिमार्जित रूप में, और वह एक व्यक्ति का होता है। लोक-साहित्य में यह अहं-चैतन्य किसी एक व्यक्ति का न होकर पूरी जाति अथवा समाज का होता है, अतः अज्ञापित रहता है।

(डॉ. जयसिंह नीरज एवं डॉ. भगवती लाल व्यास, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, प्रकाशक: राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृष्ठ संख्या 195)

राजस्थानी लोक कथाएं मौखिक परम्परा से इतिहास का निर्माण करती है। दसवीं शताब्दी से अनेक लोककथाएं लिखित रूप में मिलने लगीं। उनका लेखक कौन था, ये कब लिखी गई? इन प्रश्नों के प्रामाणिक उत्तर आज भी नहीं मिलते। राजस्थान में कुछ जातियां ऐसी रहीं जो लोककथाएं कहकर लोकानुरंजन का कार्य करती रही हैं। रावल, तीसर, भाट, बड़वा, राणीमंगा, ढाढी, नगारची, सरगरा, जांगड़ आदि जातियाँ प्राचीनकाल में कथा कहने का पेशा करती आई हैं। अपने यजमानों के यहाँ इन जातियों के लोग कथाएं सुनाया करते हैं। इन कथावाचकों को ये लोककथायें कण्ठस्थ हैं। कथा के बीच-बीच में सामयिक दोहों का प्रयोग, किसी भक्ति-पद व शृंगार गीत की संगीतमय प्रस्तुति कथा में अनोखा चमत्कार व प्रभाव उत्पन्न कर देती है। संक्षेप में, लोककथा का सम्पूर्ण सौन्दर्य उसकी कथन-शैली में निहित है और राजस्थानी कथावाचकों के पास यह कला मौजूद है। राजस्थानी लोककथाओं की विषय-वस्तु और रचना-शिल्प के आधार पर विद्वानों ने इनके निम्नलिखित वर्ग किये हैं-

1. वीर भावात्मक कथाएं।
2. नीति सम्बन्धी कथाएं।
3. धर्म, व्रत तथा त्यौहार-विषयक कथाएं।
4. देवी-देवता विषयक कथाएं।
5. पौराणिक कथाएं।
6. ऐतिहासिक कथाएं।
7. प्रेम व शृंगार-विषयक कथाएं।
8. स्त्री-चातुर्य की कथाएं।
9. कहावतों की कथाएं।
10. पद्यात्मक कथाएं।
11. चोर-डाकुओं की कथाएं।
12. हास्य व व्यंग्य कथाएं।
13. बाल-बालिकाओं की कथाएं।

इतिहास को प्रस्तुत करती लोक कथाएं और फड़

बगड़ावत, पाबूजी, गोगाजी, तेजाजी, रामदेवजी डूंगजी-जवारजी आदि ओज की कथाएं हैं। ये कथाएं लोक में स्व अभिमान और गौरव का भाव प्रगट करती है। क्योंकि इन गाथाओं के नायक धर्म, जाति, ब्राह्मण, भूमि, गाय, सतीत्व की रक्षा के लिए वीरता का प्रदर्शन करते हुए अपने प्राणोंत्सर्ग करते हैं। इनमें बगड़ावत, पाबूजी, गोगाजी, तेजाजी लोक देवता के रूप में स्थापित हैं और इनकी फड़ों का गायन धार्मिक अनुष्ठान के रूप में होता है।

बाबा रामदेव

राजस्थान में बाबा रामदेव सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध लोक देवता है। रामदेव को मानने वाले इन्हें विष्णु का अवतार मानते हैं। रामदेव जी, बाबा रामदेव, रामसा पीर, आदि नामों से ख्यात रामदेव सामजिक समरसता का प्रतिक हैं। इनकी पूजा करने वाले पुजारी अधिकतर उन समाजों से आते हैं जिन्हें मध्यकाल में मंदिर में प्रवेश का अधिकार भी नहीं दिया जा रहा था। बाबा रामदेव जी तंवर वंशी क्षत्रीय अजमालजी के पुत्र थे। अजमाल जी जैसलमेर की शिव रियासत के उंडूकासमेर ठीकाने के ठाकुर थे। रामदेवजी की माता मैणा दे भाटी क्षत्रियों की पुत्री थी। रामदेव जी का विवाह अमरकोट के सोढ़ा राजपूत दलै सिंह की पुत्री निहालदे के साथ हुआ। इस प्रकार श्री रामदेव जी राजस्थान में क्षत्रीय कुल परम्परा से आते थे और इनका जन्म चैत्र सुद पंचमी वि.स. 1409 को राजस्थान के उंडूकासमेर नामक स्थान पर हुआ जिस अब रामदेवरा के नाम से जाना जाता है।वह राजस्थान के एक ऐसे लोक देवता हैं जिनकी पूजा सम्पूर्ण राजस्थान व गुजरात समेत कई भारतीय राज्यों में की जाती है। इनके भक्त उनके राजस्थान व गुजरात के अलावा हरियाणा, पंजाब, मध्य प्रदेश, मुंबई, दिल्ली के अलावा पाकिस्तान के सिंध व पंजाब में भी हैं। बाबा रामदेव ने वि.स. 1458 में भाद्रपद शुक्ल एकादशी को राजस्थान के रामदेवरा (पोकरण से 10 कि.मी.) में जीवित समाधि ले ली। इनके समाधि-स्थल पर भाद्रपद माह शुक्ल पक्ष द्वितीया से दशमी तक भव्य मेला लगता है, जहाँ पर देश भर से लाखों श्रद्धालु पहुँचते हैं।

लोक कथा में रामदेव

लोक कथा के अनुसार बाल्यकाल में इन्हें नाथ सम्प्रदाय के संत गुरु मल्लिनाथ जी से पोकरण में ज्ञान की प्राप्ति हुई। पोकरण में उस समय एक प्रसिद्ध क्रूर व्यक्ति रहा करता था जिसका नाम भैरव था। बाल्यावस्था में ही रामदेव जी ने उस क्रूर भैरव का अंत कर दिया तथा वहां के क्षेत्रीय निवासियों को आतंक व भय से मुक्त किया।

राजा अजमाल जी व उनका पुत्र दुःख

बाबा रामदेव जी के पिता अजमाल जी की दो पुत्रियां लासा व सुगना थी किंतु उन्हें कोई पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई। तो वह द्वारका गए और वहां पर भगवान कृष्ण से पुत्र प्राप्ति के लिए मनोकामना की। ऐसा माना जाता है कि जब अजमल जी द्वारका गए थे तो वहां पर वे कई दिनों तक भगवान कृष्ण की आराधना करते रहे पर उन्हें कृष्ण की भगवान कृष्ण की मूर्ति से कोई जवाब नहीं मिला तो क्रोधित होकर उन्होंने मूर्ति पर लड्डू फेंक दिया जिसके बाद वहां के पुजारी ने उन्हें सलाह दी कि आप बैट द्वारका में चले जाइए। तब अजमाल जी ने पानी में डूबी हुई द्वारका में जाने की ठान ली। उनके विश्वास व भक्ति को देखकर कृष्ण भगवान ने उन्हें एक वरदान दिया और कहा

कि वह उनके पुत्र के रूप में जन्म लेंगे। कुछ ही वर्षों के बाद, अजमाल जी के दो पुत्र हुए इनमें बड़े का नाम वीरमदेच और छोटे का नाम रामदेव रखा गया।

रामदेव द्वारा समाज सुधार कार्य

रामदेव जी ने सभी इंसानों को एक समान माना चाहे वह अमीर हो, गरीब हो या फिर उच्च परिवार से हो या निम्न परिवार से। उन्होंने विशेषकर गरीबों की बहुत मदद की। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों का विरोध किया। तथा लोगों को जात-पांत, छुआछूत, ऊंच-नीच जैसी चीजों से अवगत कराया तथा उनसे दूर रहने के लिए कहा। उन्होंने सभी इंसानों को बराबर बताया व उनमें कभी भी भेदभाव नहीं किया जिसकी वजह से आज भी वह सभी धर्मों में पूजे जाते हैं और बहुत सारे लोगों के इष्ट देव भी हैं।

उनकी प्रसिद्ध भक्त डाली बाई एक मेघवाल समुदाय से थी फिर भी वह रामदेव जी की सबसे बड़ी भक्त बनी। इससे यह पता चलता है कि रामदेव जी ने जात-पात को त्याग दिया था। उस समय में छुआछूत व जात-पात बहुत ज्यादा थी फिर भी रामदेव जी ने इस तरह की छुआछूत को पूर्णतः मिटाने का संदेश दिया। उन्होंने जाति प्रथा, मूर्ति पूजा और तीर्थ यात्रा का विरोध किया।

रामदेव ने किसी भी धर्म विशेष पर अपने कटाक्ष व्यंग्य प्रकट नहीं किए बल्कि उन्होंने तो सभी धर्मों को समान माना व सभी व्यक्तियों को एक ही ईश्वर की संतान बताया। उन्होंने कामड़िया पंथ की स्थापना की। रामदेव जी ने पोकरण को अपने भाई वीमरदेव की पुत्री को दहेज में दे दिया और इसके बाद रामदेवरा (रुणिचा) गांव बसाया जो कि वर्तमान समय में राजस्थान के जैसलमेर जिले में है।

लोक देवता पाबूजी राठौड़

प्रचलित वाचिक कथा के अनुसार पाबूजी राठौड़ का जन्म कोलूगढ़ के दुर्गपति के घर हुआ था। यह कथा माँ देवल चारणी के साथ आरंभ होती है जो मारवाड़ में आपने कुटुंब और गाय-घोड़ों के साथ रहती थी। कथा में देवलजी को अद्वितीय सुंदरी और शक्ति (हिंगलाज) का अवतार माना गया है। देवल माता के पास काले रंग की एक घोड़ी है जिसका नाम कालिमी (केसर कालमी) है। जायल के सामंत जींदराव खींची को कालिमी घोड़ी पसंद आ जाती है वह उसे प्राप्त करने का प्रयास करता है। किंतु देवलजी जींदराव को कालिमी देना अस्वीकार कर देती है। जींदराव पाबू जी के बहनोई थे।

कथा में इस घटना का इस प्रकार सुनाया जाता है कि राजस्थान का कौन ऐसा व्यक्ति है, जिसने वीरवर पाबू जी राठौड़ का नाम न सुना हो ? मां देवल चारणी के पास कालमी नामक एक प्रसिद्ध घोड़ी थी, जिसके गुणों से आकर्षित होकर यह राठौड़ वीर उनके पास घोड़ी की याचना करने को पहुँच गया। देवल जी ने कहा कि यह घोड़ी तो उसी को दी जा सकती है, जो मेरी गाएँ घिरने पर उनकी रक्षा के लिए अपने प्राण देने के लिए तैयार हो। यह सुनते ही पाबू जी ने भीष्म प्रतिज्ञा की।

पानी पवन प्रमाण, धर अंबर हिन्दू धरम।
अब मोइ धांधल आण, सिर देस्यां गायां सटे।।

जब मां देवल से केसर कालिमी प्राप्त नहीं होती है तो जींदराव क्रोधित हो जाता है। अपने अपमान का बदला लेने के लिए वह चारणों की गायों व पशुधन को हांक ले जाता है। इस पर वीरवर पाबू जी अपने विवाह के अवसर पर देवल जी की गायों के घिरने का समाचार पाते हैं और प्रतिज्ञा के अनुसार, वह राजकन्या का हाथ छोड़ कर कालमी घोड़ी पर सवार होकर जींदराव खींची से लड़ने के लिए निकल पड़ते हैं। जींदराव खींची उस इलाके का एक बलशाली सामंत होता है और उसके सनिक भी संख्या में थे। खींची से युद्ध के लिए पाबूजी के साथ भील, चारण, रबारी व अन्य राजपूत सैनिक थे। आखिर में पाबूजी गायों को छुड़ा देते हैं किंतु युद्ध में अंत में पाबूजी वीरगति को प्राप्त करते हैं। इस युद्ध में पाबूजी के बड़े भाई बूरोजी भी शामिल थे। कथा में कुछ भील योद्धाओं के भी नाम मिलते हैं-चंदो, ढेंभों, खापु, पेमलो, खालमल, खंगारो और चासल। हरमल राईका व सलजी सोलंकी भी उनके साथी थे। आगे चलकर, पाबूजी के बड़े भाई बूरोजी का पुत्र, झरड़ोजी, जींदराव को मार डालता है और अपने पिता और काकोसा पाबूजी की मृत्यु का बदला लेता है।

संस्कृति लोक में ब्रह्म के समान है। यह एक सम्पूर्ण जगत का निर्माण ब्रह्म की भाँति करती है। वह सामाजिक जीवन की विधि निर्माता है, इसलिए विधाता भी है। वह इतनी व्यापक है कि समाज के विज्ञान, इतिहास, साहित्य और दर्शन के विभिन्न आयामों का बोध करती है, इसलिए जीवन की विविध प्रवृत्तियों से सभी को प्रभावित करती है। जीवन की बाह्य प्रवृत्ति-मूलक अभिधारणाएं सभ्यता स्वरूप है और उसकी अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों संस्कृति स्वरूप है।

फड़-सार

इस कथा में देवल माता, बाहरी सतह पर, एक पशुपालक है। उनका चारण कुटुंब घोड़ों के व्यापारी व मवेशीओं के स्वामी हैं। लेकिन वह वास्तव में एक देवी अवतार हैं, जिन्होंने यह सुनिश्चित करने के लिए मानव रूप धारण किया है कि पाबूजी एक राजपूत के रूप में अपना कर्तव्य पूरा करते हैं, जिसमें गायों की रक्षा करना, अपना वचन रखना और एक न्यायोचित युद्ध लड़ना शामिल है। पाबूजी के दैवीयकरण के समान, देवल माता को दैवीय गुणों से युक्त वर्णित किया गया है, जिनमें से एक चारण के रूप में उनकी पहचान है, और अंततः आदि देवी, हिंगलाज का अवतार है। वह राजस्थान, सिंध, गुजरात और यहां तक कि बलूचिस्तान सहित श्रेगिस्तानश् क्षेत्र के बहुमुखी चारण समुदाय के समान कई

भूमिकाएं निभाती हैं।

समकालीन संदर्भ

पाबूजी महाकाव्य का सोलहवीं शताब्दी से प्रचलन में होना प्रतीत होता है। सबसे पुराना पाबूजी काव्य मेहाजी वीठू द्वारा रचित 'पाबूजी रा छंद' है। इस कथा के एक गद्य संस्करण को मुन्हता नैणसी ने अपनी ख्यात में 'वात पाबूजी री' के रूप में उद्धृत किया है। इनके बार में लोक गायन फड़ के रूप में किया जाता है जो इनके भोपे करते हैं।

लोक देवता गोरक्षक एवं सर्प रक्षक गोगाजी चौहान

गोगाजी चौहान राजस्थान के लोक देवता हैं जिन्हे जाहर पीर के नाम से भी जाना जाता है। राजस्थान के हनुमानगढ़ जिले का एक शहर गोगामेड़ी है। यहां भादों कृष्णपक्ष की नवमी को गोगाजी देवता का मेला भरता है। इन्हें हिन्दू, सिखऔर मुसलमान तीनो पूजते हैं। गुजरात मे रेबारी जाती के लोग गोगाजी को गोगा महाराज के नाम से बुलाते है। गोगाजी गुरुगोरखनाथ के परमशिष्य थे। उनका जन्म विक्रम संवत् 1003 में चुरू जिले के ददरेवा (दत्तखेड़ा) गाँव में एक प्रतिष्ठित राजपूत परिवार हुआ था। पर सभी धर्म और सम्प्रदाय के लोग मत्था टेकने के लिए दूर-दूर से आते हैं। कायम खानी मुस्लिम समाज उनको जाहर पीर के नाम से पुकारते हैं तथा उक्त स्थान पर मत्था टेकने और मन्नत माँगने आते हैं। कायमखानी मूल रूप से इसी क्षेत्र के चौहान वंश से मोमिन हुए। इस तरह यह स्थान हिंदू, सिख और मुस्लिम एकता का प्रतीक है। मध्यकालीन महापुरुष गोगाजी हिंदू, मुस्लिम, सिख सभी संप्रदायों में समान रूप से स्वीकार्य है। गोगाजी का जन्म राजस्थान के ददरेवा (चुरू) चौहान वंश के शासक जैबरजी (ठाकुर जेवरसिंह) की पत्नी बाछल कंवर के गर्भ से गुरु गोरखनाथ के वरदान से भादो सुदी नवमी को हुआ था। मान्यता है कि गोगाजी का राज्य सतलुज सें हांसी (हरियाणा) तक था।

लोकमान्यता व लोककथाओं के अनुसार गोगाजी को सांपों के देवता के रूप में भी पूजा जाता है। लोग उन्हें गोगाजी, गुग्गा वीर, जाहिर वीर, राजा मण्डलिक व जाहर पीर के नामों से पुकारते हैं। यह गुरु गोरक्षनाथ के प्रमुख शिष्यों में से एक थे। राजस्थान के छह सिद्धों में गोगाजी को समय की दृष्टि से प्रथम माना गया है।

राजस्थानी लोक कथाएं मौखिक परम्परा से इतिहास का निर्माण करती है। दसवीं शताब्दी से अनेक लोककथाएं लिखित रूप में मिलने लगीं। उनका लेखक कौन था, ये कब लिखी गई? इन प्रश्नों के प्रामाणिक उत्तर आज भी नहीं मिलते। राजस्थान में कुछ जातियां ऐसी रहीं जो लोककथाएं कहकर लोकानुरंजन का कार्य करती रही हैं। रावल, तीसर, भाट, बड़वा, राणीमंगा, ढाढी, नगारची, सरगरा, जांगड़ आदि जातियाँ प्राचीनकाल में कथा कहने का पेशा करती आई हैं।

गोगादेव की जन्मभूमि पर आज भी उनके घोड़े का अस्तबल है और सैकड़ों वर्ष बीत गए, लेकिन उनके घोड़े की रकाब अभी भी वहीं पर विद्यमान है। उक्त जन्म स्थान पर गुरु गोरक्षनाथ का आश्रम भी है और वहीं है गोगादेव की घोड़े पर सवार मूर्ति। भक्तजन इस स्थान पर कीर्तन करते हुए आते हैं और जन्म स्थान पर बने मंदिर पर मत्था टेककर मन्नत माँगते हैं। आज भी सर्पदंश से मुक्ति के लिए गोगाजी की पूजा की जाती है। गोगाजी के प्रतीक के रूप में पत्थर या लकडी पर सर्प मूर्ती उत्कीर्ण की जाती है। लोक धारणा है कि सर्प दंश से प्रभावित व्यक्ति को यदि गोगाजी की मेडी तक लाया जाए तो वह व्यक्ति सर्प विष से मुक्त हो जाता है। भादवा माह के शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष की नवमियों को गोगाजी की स्मृति में मेला लगता है।

जातरु ददरेवा आकर न केवल धोक आदि लगाते हैं बल्कि वहां अखाड़े (ग्रुप) में बैठकर गुरु गोरक्षनाथ व उनके शिष्य जाहरवीर गोगाजी की जीवनी के किस्से अपनी-अपनी भाषा में गाकर सुनाते हैं। इसे गोगाजी की फड़ कहा जाता है। प्रसंगानुसार जीवनी सुनाते समय वाद्ययंत्रों में डैरूं व कांसी का कचौला विशेष रूप से बजाया जाता है। इस दौरान अखाड़े के जातरुओं में से एक जातरू अपने सिर व शरीर पर पूरे जोर से लोहे की सांकले मारता है। मान्यता है कि गोगाजी की संकलाई आने पर ऐसा किया जाता है। गोरखनाथ जी से सम्बंधित एक कथा राजस्थान में बहुत प्रचलित है। गोगा जी और तुर्क आक्रांताओं (गजनी का महमूद) में युद्ध हुआ। कथा के अनुसार गोगा जी का अपने मौसेरे भाई अर्जन चौहान व सुरजन चौहान के साथ कुछ जमीन के शासन को लेकर झगड़ा चल रहा था। अरजन सुर्जन इनके विरुद्ध तुर्क महमूद गजनवी की फौज चढ़ा लाये। इन आक्रामकों ने इनकी गायों को घेर लिया, जिसके प्रतिरोध में गोगाजी ने युद्ध किया।

गोगाजी युद्ध में चपल और सिद्ध होने के कारण रणक्षेत्र में जगह दिखाई देते थे। उनके इस रणकौशल को देखकर ही महमूद गजनवी ने कहा था कि यह तो 'जाहीरा पीर' है अर्थात् साक्षात् देवता के समान प्रकट होता है। इसलिए ये 'जाहरपीर' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। (कुछ लोग जाहर पीर का मतलब भगवान नरसिंह के वीर से जोडते है)

राजस्थानी लोक कथा अनुसार ये युद्ध भूमि में अपने 47 पुत्रों तथा 60 भतीजों के साथ वीरगति हुए। उत्तर प्रदेश में भी इन्हें 'जाहर पीर' के नाम से जाना जाता है। गोगाजी ने गौ-रक्षा एवं तुर्क आक्रांताओं (महमूद गजनवी) से देश की रक्षार्थ अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। राजस्थान का किसान वर्षा के बाद हल जोतने से पहले गोगाजी के नाम की राखी 'गोगा राखड़ी' हल और हाली, दोनों को बाँधता है। गोगाजी के 'थान' खेजड़ी वृक्ष के

नीचे होते हैं, जहाँ मूर्ति एक पत्थर पर सर्प की आकृति अंकित होती है। इसलिए बागड़ में तो यह कहावत है कि 'गाँव-गाँव गोगो ने गाँव-गाँव खेजड़ी।' ऐसी मान्यता है कि युद्ध भूमि में लड़ते हुए गोगाजी का सिर चूरू जिले के जिस स्थान पर गिरा था वहाँ 'शीश मेड़ी' तथा युद्ध करते हुए जहाँ शरीर गिरा था उसे 'गोगामेड़ी' कहा गया।

गोगाजी कौन थे

गोगाजी के बारे में कथा है जो कि विभिन्न लोकगीतों और गोगा जी के जागरण में भगत समैया द्वारा गाई जाती है। कथानुसार महाभारत के पांडव अर्जुन हुए अर्जुन के पौत्र का नाम 'परीक्षित' था एक बार राजा परीक्षित के सिर पर कलयुग सवार हो गया तब राजा ने आखेट के समय वन में कलयुग के प्रभाव में आकर अपने एक प्रश्न का उत्तर ऋषि शमीक द्वारा परिस्थितिवश ना दे पाने के फलस्वरूप ऋषि के गले में मृत सर्प डाल दिया था। परीक्षित के इस कृत्य से अनभिज्ञ ऋषिपुत्र 'श्रृंगी' को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने श्राप दे दिया कि जिस किसी ने भी मेरे पिता के गले में मृत सर्प डाला है उसे आज से सातवें दिवस 'तक्षक' नाग डसकर मृत्युलोक पहुंचा देगा।

राजा को जब यह ज्ञात हुआ तब उसने अपने लिए एक सप्ततल प्रासाद (महल) निर्मित करवाया। कड़ी सुरक्षा के पश्चात भी तक्षक नाग प्रासाद में प्रवेश कर गया और राजा को सातवें दिवस डस लिया। कुछ समय पश्चात् राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय को जब यह ज्ञात हुआ कि उसके पिता को तक्षक ने डसा था। तब उसने सर्पदमन यज्ञ का आयोजन किया जिसके कारण समस्त सर्पयज्ञ मे भस्मीभूत होने लगे। तत्पश्चात् माता मनसा देवी के पुत्र मुनि आस्तीक के सतप्रयत्नों से नागों के प्राणों की रक्षा हुई। किंवदंती है कि जब राजा जन्मेजय की मृत्यु हुई तब नागों ने जनमेजय की आत्मा को पाताल लोक में बंदी बना लिया था, कलयुग में जब माता बाछल ने गुरु गोरखनाथ जी की सेवा की तब उनकी सेवा से प्रसन्न होकर गुरु गोरखनाथ जी ने उनको तेजस्वी पुत्र का वरदान देने के लिए पाताल लोक की ओर प्रस्थान किया वहां से वे राजा जनमेजय की आत्मा को गूगल में छुपा कर जाने लगे कहते हैं तब नाग भी उनका पीछा कर रहे थे जब गोगा जी धरती पर आए तब भी तक्षक नाग ने उनका पीछा नहीं छोड़ा और उनके हाथ से गूगल छीन कर निगल गया।

सौभाग्य से वहां एक युवक प्रक्षालन (साफ-सफाई) कार्य कर रहा था। जब उसने देखा कि साधु के हाथ से नाग ने कुछ वस्तु निगल ली है तब उसने नाग पर झाड़ू के डंडे से प्रहार किया। जिसके कारण गूगल तक्षक के मुख से नीचे गिर पड़ी गुरु गोरखनाथ जी ने गूगल उठाई और और उक्त युवक को वरदान दिया कि इस गूगल से उत्पन्न बालक बड़ा ही सिद्ध पुरुष होगा जिस के भजनों का तुम लोग गायन करोगे ऐसा कहकर गुरु गोरखनाथ जी अंतर्ध्यान हो गए। तक्षक नाग भी निराश होकर पाताल को लौट गया। इस प्रकार राजा जन्मेजय ही गोगाजी के नाम से विख्यात हुए।

गुर्जरों के पितृ पुरूष देव नारायण जी

लोक देवता और गुर्जरों के पितृ पुरूष देवनारायण जी का जन्म एक लोकप्रिय मंडलजी गुर्जर के परिवार में हुआ था। जिन्होंने मेवाड़ में भीलवाड़ा जिले के पास प्रसिद्ध मंडल झील की स्थापना की थी। मंडलजी, अजमेर के राजा बिसाल देव गुर्जर (विशाल देव चौहान) के भाई थे, जिन्होंने ने संभवतः 8 वीं शताब्दी में अजमेर पर शासन किया था और साथ ही अरब घुसपैठ का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया और तोमर वंश के शासकों को दिल्ली पर नियंत्रण पाने में मदद की। श्री देवनारायण जी का मूल स्थान वर्तमान में अजमेर के निकट नाग पहाड़ था। राजस्थान में प्रचलित लोक कथाओं के माध्यम से शौर्य पुरूष देवनारायण के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से जानकारी मिलती है। देवनारायण की फड़ के अनुसार माण्डलजी के हरिरामजी, हरिरामजी के बाघजी और बाघजी के 24 पुत्र हुए जो बगड़ावत कहलाये। इन्हीं में से बड़े भाई राजा सवाई भोज और माता साडू (सेढू) खटाणा के पुत्र के रूप में विसं 968 (911 ई.) में माघ शुक्ला सप्तमी को आलौकिक पुरुष देवनारायण का जन्म मालासेरी में हुआ।

बगड़ावतों की फड़

राणी जयमती (जैमति) को लेकर राण के राजा दुर्जनसाल से बगड़ावतों का युद्ध हुआ। युद्ध से पूर्व बगडावतों तथा दुर्जनसाल

की मित्रता थी तथा वे धर्म के भाई थे। ये युद्ध खारी नदी के किनारे हुआ था। बगड़ावतों ने अपना वचन रखते हुए राणी जैमति को सिर दान में दिए थे। बगड़ावतों के वीरगति प्राप्त होने के बाद देवनारायण का अवतार हुआ तथा उन्होंने राजा दुर्जनसाल का वध किया। देवनारायण की 3रानियां थीं- पीपलदे परमार (धारा के राजा की बेटी), नागकन्या तथा दैत्यकन्या।

परिचय

देवनारायण पराक्रमी योद्धा थे जिन्होंने अत्याचारी शासकों के विरूद्ध कई संघर्ष एवं युद्ध किए। उन्होंने अनेक सिद्धियाँ प्राप्त की। चमत्कारों के आधार पर धीरे-धीरे वे देव स्वरूप बनते गये एवं अपने इष्टदेव के रूप में पूजे जाने लगे। देवनारायण को विष्णु के अवतार के रूप में गुर्जर समाज द्वारा राजस्थान व दक्षिण-पश्चिमी मध्य प्रदेश में अपने लोकदेवता के रूप में पूजा की जाती है। उन्होंने लोगों के दुःख व कष्टों का निवारण किया। देवनारायण महागाथा में बगडावतों और राण भिणाय के शासक के बीच युद्ध का रोचक वर्णन है।

देवनारायणजी का अन्तिम समय ब्यावर तहसील के मसूदा से 6 कि.मी. दूरी पर स्थित देहमाली (देमाली) स्थान पर गुजरा। भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को उनका वहीं देहावसान हुआ। देवनारायण से पीपलदे द्वारा सन्तान विहीन छोड़कर न जाने के आग्रह पर बैकुण्ठ जाने पूर्व पीपलदे से एक पुत्र बीला व पुत्री बीली उत्पन्न हुई। उनका पुत्र ही उनका प्रथम पुजारी हुआ।

कृष्ण की तरह देवनारायण भी गायों के रक्षक थे। उन्होंने बगड़ावतों की पांच गायें खोजी, जिनमें सामान्य गायों से अलग विशिष्ट लक्षण थे। देवनारायण प्रातःकाल उठते ही सरेमाता गाय के दर्शन करते थे। यह गाय

बगड़ावतों के गुरू रूपनाथ ने सवाई भोज को दी थी। देवनारायण के पास 98000 पशु धन था। जब देवनारायण की गायें राण भिणाय का राणा घेर कर ले जाता तो देवनारायण गायों की रक्षार्थ राणा से युद्ध करते हैं और गायों को छुड़ाकर लाते थे। देवनारायण की सेना में ग्वाले अधिक थे। 1444 ग्वालों का होना बताया गया है, जिनका काम गायों को चराना और गायों की रक्षा करना था। देवनारायण ने अपने अनुयायियों को गायों की रक्षा का संदेश दिया।

देवनारायण का प्रमुख मन्दिर भीलवाड़ा जिले में आसीन्द कस्बे के निकट खारी नदी के तट पर महाराजा सवाई भोज में है। देवनारायण का एक प्रमुख देवालय निवाई तहसील के जोधपुरिया गाँव में वनस्थली से 9 कि.मी. दूरी पर है। सम्पूर्ण भारत में गुर्जर समाज का यह सर्वाधिक पौराणिक तीर्थ स्थल है। देवनारायण की पूजा भोपाओं द्वारा की जाती है। ये भोपा विभिन्न स्थानों पर जाकर लपेटे हुए कपड़े पर देवनारायण जी की चित्रित कथा (फड़) के माध्यम से देवनारायण की गाथा गा कर सुनाते हैं। देवनारायण की फड़ में 335 गीत हैं। जिनका लगभग 1200 पृष्ठों में संग्रह किया गया है एवं लगभग 15000 पंक्तियाँ हैं। ये गीत परम्परागत भोपाओं को कण्ठस्थ रहते हैं। देवनारायण की फड़ राजस्थान की फड़ों में सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सबसे बड़ी है।

संदर्भ

1. डॉ. राम पाण्डे, राजस्थान की संस्कृति का इतिहास, शोधक, बी-424, मालवीय नगर, जयपुर
2. डॉ. हुकुम नारायण जैन और डॉ. नारायण लाल माली, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा एवं इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
3. डॉ. जयसिंह नीरज एवं डॉ. भगवती लाल व्यास, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, प्रकाशक: राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
4. पाबू जी की फड़
5. गोगाजी की फड़
6. देवनारायण जी की फड़
7. तेजाजी की फड़

• • •

शोध निदेशक,
सभ्यता अध्ययन केन्द्र, दिल्ली
शोध प्रभारी, शोध संस्थान, प्रताप गौरव केन्द्र 'राष्ट्रीय तीर्थ', उदयपुर, राजस्थान

लोकसाहित्य और इतिहास

- डॉ. अरुण प्रकाश

काल की गति सरेखीय नहीं चक्रीय है। मनुष्य जिस दुनियावी समृद्धि की ओर सतत अग्रसर है, सभ्यता के क्रम में वह ऐसी ही समृद्धि के सर्वोच्चता से उसी क्रम में बीत भी हो रहा होता है। बीती समृद्धि की निकटता व उसके दोहराये जाने की आश्वस्ति उसकी स्मृति को बनाये रखती है। यही लोकसाहित्य का आधार है। विषय लोकसाहित्य में इतिहास ढूंढने का है, लेकिन लोकसाहित्य इतिहास से अभिन्न है ही नहीं।

इतिहास और लोकसाहित्य का अविनाभाव संबंध है। यह संबंध मंत्र और मूर्ति का है।लोकसाहित्य की सामयिकता व अंतस में उसकी स्वीकार्यता से हिस्ट्री की प्रविधि उसे संदेह से देखती है। लेकिन, इतिहास की मूल संकल्पना, "ऐसा ही हुआ" का समर्थन यहीं से मिलता है। आभ्यंतर के अभ्यास इससे अपना सहकार देखते हैं। यह एकदम ताजी बात दिखती है। पानी की प्राचीनता को जानते हुये भी हम ओस की ताजगी को बखानते हैं। उसकी पारदर्शिता को प्रशंसित करते हैं। लेकिन, ओस की ताजगी पानी की प्राचीनता को चुनौती नहीं हो सकती, यह हमारे लोक साहित्य ने जीया है।

हम लोकसाहित्य के माध्यम से ही भविष्य के संकल्पों को अतीत के प्रतिमानों से प्रमाणित करते हैं। क्योंकि, हमने यह देखा है कि पुष्प का अतीत और भविष्य दोनों बीज है। भारतीय समाज जीवन की पूर्णता उसी पिंड से करता है, जो उसका आरंभ था।

इतिहास ने लोकसाहित्य को प्रतिमान दिए हैं तो लोकसाहित्य ने इतिहास को देखने की दृष्टि। लोकसाहित्य ने ही हमें यह दृष्टि दी है कि इतिहास मुर्दों की कहानी नहीं, बीते की बयानी नहीं, जीवन की अनादिता और उसकी चक्रीय गति की ही घोषणा है।

इतिहास और लोक साहित्य का अविनाभाव संबंध है। यह संबंध मंत्र और मूर्ति का है। लोक साहित्य की सामयिकता व अंतस में उसकी स्वीकार्यता के कारण आधुनिक इतिहासलेखन की प्रविधि उसे संदेह से देखती है। लेकिन, इतिहास की मूल संकल्पना, "ऐसा ही हुआ" का समर्थन यहीं से मिलता है। आभ्यंतर के अभ्यास इससे अपना सहकार देखते हैं। यह एकदम ताजी बात दिखती है। पानी की प्राचीनता को जानते हुये भी हम ओस की ताजगी को बखानते हैं। उसकी पारदर्शिता को प्रशंसित करते हैं। लेकिन, ओस की ताजगी पानी की प्राचीनता को चुनौती नहीं हो सकती, यह हमारे लोक साहित्य ने जीया है।

वहीं, जब हम काल की गति को सरेखीय मानकर अतीत की पड़ताल करते हैं तो सामान्यतः हम अपने आग्रहों को ही रिवर्स मैकेनिज्म में चलाते हैं। वर्तमान को कसौटी को मानकर क्रमशः ह्रास से अतीत परखने का प्रयास करते हैं। शायद इसीलिए, हिस्ट्री की सूचनाएं बहुधा हमें चौकाती हैं। स्तब्ध करती हैं। हमारी कसौटी पर खरी होने के बावजूद वह अविश्वसनीय लगती हैं। एक स्वाभाविक द्वंद्व बना रहता है।

दुनिया में हिस्ट्री को दोहराने और उसे सीखने की चर्चा होती है लेकिन भारतीय समाज अतीत को भी आभ्यांतर में हमेशा रखता है। वह उसे सामयिक संशोधनों के साथ ऐसे दोहराता है जो उसकी स्वीकार्यता बदलते युग के साथ बनी रहे। कई बार अतीत के यथार्थ वर्तमान से इस कदर सायुज्य रच लेते हैं कि वह अतीत की बात लगते ही नहीं और वर्तमान चित्र की पूर्ववर्ती कल्पना लगने लगते हैं। इसीलिए बहुधा भारतीय इतिहास

और मिथक एक दूसरे पर भेद रहित आरोपित हो जाते हैं। लेकिन यह समस्या उस दृष्टिकोण की हो सकती है जो इस प्रविधि से परिचित नहीं और इसका स्पर्श उन्हें प्राप्त नहीं। जो इस प्रविध से परिचित हैं, वे तो जानते हैं

कि भारतीय समाज बीते को कैसे बटोर कर चलता है और उसे हर दिन नयापन देता जाता है। यहां एक बात ध्यान देने की है कि वह अतीत में घटी घटनाओं के सत्य में कोई परिवर्तन नहीं करता लेकिन उनके पर्याय व प्रतिमान को बदलता रहता है। महात्मा गांधी ने रामायण को आत्मा का इतिहास इसी क्रम में कहा। रामायण इतिहास तो है, लेकिन वर्तमान की विसंगतियों व विभ्रम का वह जैसा समाधान प्रस्तुत करता है, उससे युग का भेद पता नहीं चलता। हालांकि, यहां एक मौलिक चूक विद्वानों से होती रही है। वह यह कि हम अपनी चुनौतियों की प्राचीनता न खोजने के बजाय, इससे समाधान की अर्वाचीनता सिद्ध करने लग जाते हैं।

लोक साहित्य में इतिहास भौगोलिक रूप से अधिक व्यापक और सम्यक है। हिस्ट्री के पन्नों में इसका बेहद ताजा उद्धरण है। महमूद गजनवी द्वारा सोमनाथ मंदिर अपवित्र किए जाने के बाद उसके दरवाजे उखाड़ लिए जाने का कहीं कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता। उसके बावजूद गुजरात की भूमि से दूर-दूर तक संबंध न रखने वाले महाराज रणजीत सिंह ने शाह जमान को हराने के बाद जब संधि पत्र बनवाया तो उसमें उन दरवाजों को वापस करने का जिक्र है। रणजीत सिंह को यह इतिहास लोक साहित्य के माध्यम से ही मिला।

इस नजर से रामायण का काल क्रम गुप्तों के समय तक भी खिंच आता है। कई तो उसे तुलसी तक भी ले आते हैं। खैर, यह कोई चुनौती नहीं है। देखने वालों की एकांगी दृष्टि से समग्रता की स्थिति प्रभावित नहीं होती।

ईरान से आया व्यापारी सरमद जब इश्क हकीकी हुआ, पंथ छूटा, पथमुक्त हुआ। मुल्ला वर्ग को उसने चुनौती दी। नौबत सर कटने तक आ गई। औरंगजेब ने उसे मृत्यु की सजा दी। तो सरमद ने गाया।

देर अस्त कि अफसाना-ए -मन्सूर कुहन शुद अकनूं सरे नौ जलवा दिहम दार-ओ-रसन रा।।

मन्सूर का किस्सा पुराना पड़ गया है,
मैं अब उसे फिर ताजा कर रहा हूं।

दार-ओ-रसन (सूली चढ़ाने) के मजमून को फिर चमका रहा हूं। कट्टरता को चुनौती देने के प्रतिमान मंसूर और इसकी नियति सूली, को सरमद ने फिर से जीया। इससे एक अर्थों में सरमद का मरना इतिहास की बात हुई और दूसरे अर्थों में मंसूर की मौत बहुत नई। लोकसाहित्य के माध्यम से इतिहास की रवानी का यही भी एक उदाहरण है।

लोक साहित्य के माध्यम से अतीत के प्रतिमानों का वर्तमान में उपादेयता बनाए रखने की लंबी परंपरा रही। हिस्ट्री के पन्नों पर सीमित स्थान पाने वाले महराज विक्रमादित्य का इतिहास लोक साहित्य में हर व्यक्ति को अपना इतिहास लगता है। लोक जीवन ने उन्हें अतीत पुरुष की तरह नहीं बल्कि एक ऐसे पुरुष के रूप में अपनाया जिसका जीवन विषमताओं से बिताने का समय उदाहरण है। जीवन के प्रत्येक विभ्रम में अवध का लोकमानस 'विक्रमाजीत' के ही प्रतिमान दोहराता है।

अनन्य चिंतक महाराज भर्तृहरि का वैराग्य शतक जोगियों ने द्वारे-द्वारे गाया। शतकों के सत्य को ऐसे पर्याय बदलकर गाया गया कि आज भर्तृहरि का इतिहास सभी को अपना इतिहास मालूम पड़ता है। जब संस्कृत में रचे भर्तृहरि अवधी में द्वारे-द्वारे गाये गए और सारंगी की धुन पर उनका वैराग्य दोहराया गया। तो, अवधी और सारंगी से भर्तृहरि को नवीनता मिली लेकिन वैराग्य शतक की शाश्वतता ने अवधी और सारंगी को अनादि का स्पर्श दिया। यह लोकसाहित्य की परंपरा ने ही संभव कर दिखाया। लोकमानस इन इतिहास में कहीं भी बौद्धिक या भावनात्मक रूप से बंधे नहीं है बल्कि इसे कैसे सर्व स्वीकृत प्रतिमान के रूप में अपनाया गया है जो विपरीत और विषमता में मनुष्य को सतत कम करने के लिए प्रेरित करता है।

लोक साहित्य में इतिहास भौगोलिक रूप से अधिक व्यापक और सम्यक है। इतिहास के पन्नों में इसका बेहद ताजा उद्धरण है। महमूद गजनवी द्वारा सोमनाथ मंदिर अपवित्र किए जाने के बाद उसके दरवाजे उखाड़ लिए जाने का कहीं कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता। उसके बावजूद गुजरात की भूमि से दूर-दूर तक संबंध न रखने वाले महाराज रणजीत सिंह ने शाह जमान को हराने के बाद जब संधि पत्र बनवाया तो उसमें उन दरवाजों को वापस करने का जिक्र है। रणजीत सिंह को यह इतिहास लोक साहित्य के माध्यम से ही मिला। मनुष्य लोक से ही शिक्षित होता है। लोकसाहित्य इतिहास की घटनाओं को ही नहीं उसके शोधों, सन्धानों और प्राप्तियों को भी सामयिक पर्यायों से जोड़कर हमें उपलब्ध कराता आया है।

• • •

लेखक अनेक पुस्तकों के लेखक
एवं गंभीर विचारक हैं।

वार्ता साहित्य और इतिहास-लेखन का स्वरूप

– रजत शर्मा

इतिहास-लेखन की विस्तृत परंपरा भारत में मौजूद रही है, जिसे आधुनिक इतिहासकारों ने स्वीकृति प्रदान नहीं की। जबकि यह परंपरा हिंदी में भी विकसित होती है और अपना विशेष प्रभाव छोड़ती है। यह परंपरा **'वार्ता-साहित्य'** नाम से अभिहित की गई है। परन्तु इसके विशिष्ट स्वरूप के कारण इसे साहित्य-श्रेणी में स्थान दिया जाता है। जबकि कथ्य के स्तर पर वह ऐतिहासिक है। ऐतिहासिक होने के कारण वार्ता-साहित्य हिंदी साहित्येतिहास का स्रोत बनता है, परन्तु इतिहास-लेखन के रूप में उसका अध्ययन नहीं होता। इसका प्रमुख कारण उसका संश्लिष्ट स्वरूप है। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास करता है।

'वार्ता-साहित्य' हिंदी साहित्येतिहास परंपरा की महत्वपूर्ण कड़ी है। मध्यकालीन साहित्येतिहास का सामान्य परिचय इसके अभाव में मुश्किल है। अतः सामान्य दृष्टि वार्ता-साहित्य को इतिहास-सामग्री का महत्वपूर्ण स्रोत स्वीकारती है। साहित्यिक शैली में लिखित होने के कारण वार्ता-साहित्य हिंदी साहित्येतिहास की सीमा में आती है। यद्यपि इसकी सामग्री ऐतिहासिक है लेकिन अकादमिक अध्ययन के क्षेत्र में इतिहास विभाग इसे इतिहास-ग्रन्थ न मानकर साहित्यिक कृति की श्रेणी में ही स्थान देता है। जबकि मध्यकालीन कवियों द्वारा सृजित रचनाओं से इतर वार्ता-साहित्य का भिन्न स्वरूप तथा उसकी ऐतिहासिक विषयवस्तु इसे बहुमूल्य बनाती है। मुक्तक शैली का अनुसरण वार्ता-साहित्य में हुआ है। मुक्तक में होने का एक कारण उसकी विषयवस्तु है। वार्ता-साहित्य मूलतः अनेक चरित्रों के परिचयात्मक साहित्य को कहा गया है।

वार्ता-साहित्य भारतीय इतिहास-पुराण परंपरा का विकास है। इस ओर आधुनिक विद्वानों का ध्यान गया ही नही, क्योंकि उनकी दृष्टि भारतीय इतिहास की धारा को अस्वीकार करती आई है। आधुनिक इतिहास-चिंतन से इतर भारतीय इतिहास के भिन्न स्वरुप को समझने का उन्होंने प्रयास ही नहीं किया। यदि वह ऐसा करते तो उन्हें भारतीय इतिहास के पीछे आध्यात्मिक-सांस्कृतिक दृष्टि का विकास दिखता, वह भी संश्लिष्टता में, जिसकी खोज समकालीन चिंतक विश्लेषण के माध्यम से करते रहे।

डॉ.लालता प्रसाद दुबे विश्लेषणात्मक ग्रन्थ 'हिंदी भक्त-वार्ता साहित्य' के प्राक्कथन में वार्ता-साहित्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि ''मध्यकालीन भारतीय धर्म

साधना में भक्ति तथा प्रेम के सन्देश द्वारा नया प्राण फूँकने वाले संतों तथा महात्माओं का परिचय जिन प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त होता है उन्हें सुविधा के लिए 'भक्त-वार्ता साहित्य' नाम दिया गया है।''

उपर्युक्त कथन से एक बात स्पष्ट है कि वार्ता-साहित्य की विषयवस्तु परिचयात्मक रूप में ऐतिहासिक चरित्रों को सृजनकर्म के साथ प्रस्तुत करती है। इसका परिचयात्मक स्वरूप प्रत्येक चरित्र के स्वतंत्र वर्णन को प्रधानता देता है। यही कारण है कि वार्ताकार छंदों में मुक्तक शैली का अनुसरण करता है।

पद्य तथा गद्य दोनों रूपों में वार्ता-साहित्य लिखा गया है। परन्तु सामान्यतः वार्ता-साहित्य में पद्यात्मक रूप ही अधिक दिखाई देता है। इसके स्वरूप निर्माण में 'लोक' की भूमिका महत्वपूर्ण है। हिंदी साहित्य का मध्यकाल लोक बोलियों के उदय का भी समय है। सगुण-निर्गुण दोनों धाराएँ लोक को केन्द्र में रखकर आगे बढ़ती हैं। मध्यकालीन संप्रदाय लोक बोलियों में अपने मतों का प्रचार-प्रसार करते हैं। यह परंपरा मूलतः मौखिक रूप में गतिशील होती है। अतः जब इसे लिखित रूप (दूसरे शब्दों में कहा जाये तो कृति) रूप प्रदान किया जाता है, तो मौखिकता की प्रवृत्ति लिखित रूप में भी दिखाई देती है। वार्ता-साहित्य इसका सुदृढ़ उदाहरण प्रस्तुत करता है। नाभादास जिन भक्तों को विषयवस्तु के रूप में स्थान देते हैं उनका परिचय या तो पूर्व-पीढ़ियों से या फिर समाज से प्राप्त हुआ है। वार्ताकार तक भक्तों के चरित्र मौखिक परंपरा से ही आते हैं। दूसरी ओर वार्ता का प्रचार भी मौखिक परंपरा में होता है। अतः दोनों ही तरह से लोक की मौखिक परंपरा वार्ता-साहित्य के प्रारूप को निश्चित करती है।

भक्त-कवियों की यह परंपरा लिखित तथा मौखिक दोनों रूपों में लोक-प्रचलित हुई। लिखित रूप में वह साहित्य का विशिष्ट रूप बनता है तो मौखिक रूप में एक व्यवस्था को निर्मित करता है। मध्यकाल तथा वर्तमान में भी श्रीमद्भागवत सप्ताह जैसे आयोजन वार्ता-साहित्य को लेकर भी किये जाते हैं। वृंदावन में यह आयोजन नित्य रूप में द्रष्टव्य है। यह स्पष्ट होना आवश्यक है कि वार्ता-साहित्य केवल साहित्यिक रूप नहीं है अपितु वह सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था में रूपांतरित भी

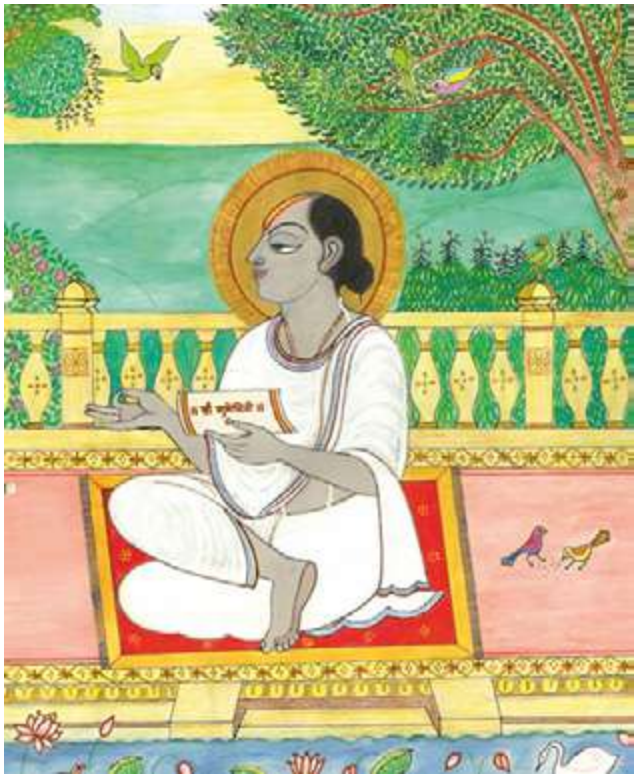

है। भक्तों को स्मरण रखने की यह सामाजिक व्यवस्था जनमानस में उन्हें संरक्षित करती है, इसीलिए वार्ता-साहित्य के अंश लोक में जाकर व्याख्यायित होते हैं। भक्त एवं संत लोक में जाकर व्याख्यायित वार्ताओं में स्थान पाते हैं तथा यह वार्ताएँ पुनः लोक में जाकर उन्हें अमर बनाती हैं। अतः लोक-प्रशस्ति प्राप्त करने की यह प्रक्रिया दो स्तरों पर समानांतर आगे बढ़ती है। इसीलिए काव्य में आंशिक वर्णन के साथ लोक द्वारा मौखिक व्याख्या इसकी पूरक है।

वार्ता-साहित्य का मूल कथ्य परिचय तथा उसका रूप काव्य-शैली है। मध्यकालीन पारिभाषिक शब्दावली में 'काव्य' के अंतर्गत गद्य एवं पद्य दोनों समाहित है, परन्तु प्रमुख रूप से वार्ता-साहित्य पद्यात्मक ही अधिक लिखा गया है। भक्तमाल तथा भक्तनामावलियों में पद्यात्मक रूप तथा पुष्टिमार्गीय वार्ताओं के अंतर्गत गद्यात्मक रूप का प्रयोग किया गया है। लालता प्रसाद दुबे वार्ता-साहित्य के विस्तार को देखते हुए रूप-आधारित विभाजन करते हैं। वह इसे पाँच रूपों में बाँटते हैं - भक्तमाल तथा भक्तनामावलियाँ, भक्तमालों की टीका-टिप्पणियाँ, परिचयियाँ, बीतक, पुष्टिमार्गी वार्ताएँ तथा उनकी टीकाएँ।

वार्ता-साहित्य का स्वरूप:- 'वार्ता-साहित्य' हिंदी में भारतीय इतिहास-लेखन परंपरा का विकास है। मध्यकाल के विशेष परिवेश तथा हिंदी लोकभाषा के विकास के साथ 'वार्ता-साहित्य' अपना विशिष्ट स्वरूप निर्मित करता है। वार्ता-साहित्य के संबंध में एक प्रश्न जरूर खड़ा होता है कि उसे 'साहित्यिक कोटि' का ग्रन्थ मानें या 'इतिहास कोटि' का? सामान्यतः यह प्रश्न वार्ता-साहित्य के स्वरूप से संबंधित है। यदि वार्ता-साहित्य के बाह्य स्वरूप का अध्ययन करें तो वह 'साहित्य कोटि' में स्थान पाता है, लेकिन वहीं उसके आंतरिक स्वरूप को दृष्टि में रखें तब वह 'इतिहास कोटि' में जगह बनाता है। आधुनिक दृष्टि आंतरिक स्वरूप के आधार पर बाह्य स्वरूप को स्थिर करने की माँग करती है। इतिहास के संबंध में भी यही दृष्टि लागू होती है। पश्चिम की वस्तुवादी दृष्टि इतिहास के बाह्य स्वरूप को निश्चित करते हुए इतिहास-लेखन को निश्चित तत्वों में आबद्ध करती है। देश-काल-वातावरण की यथावत्

पुननिर्मिति उसका अंतिम ध्येय बचता है। इस ध्येय की पूर्ति के लिए वह वस्तुगत तथ्यों के प्रमाणिकरण को महत्ता देती है। इन्हीं मानदण्डों पर वह किसी सामग्री को इतिहास की सीमा में स्वीकार या अस्वीकार करती है। वार्ता-साहित्य के संबंध में भी इसी दृष्टि का आग्रह उसे 'इतिहास कोटि' में आने से रोकता है।

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है कि 'वार्ता-साहित्य' का बाह्य स्वरूप इतिहास कोटि में स्थान नहीं पाता। अतः उसके स्वरूप का भिन्न दृष्टि से अध्ययन आवश्यक हो जाता है। मध्यकालीन हिंदी साहित्य के अंतर्गत 'धर्म' साहित्य के केन्द्र में स्थापित है। वार्ता-साहित्य का धार्मिक झुकाव भी इसके स्वरूप को इतिहास-विमुख करता है। 'इतिहास' वस्तुनिष्ठता की माँग करता है। जबकि धर्म-सापेक्ष-साहित्य में वस्तुनिष्ठता खण्डित होती है धार्मिकता का आवरण श्रद्धायुक्त वर्णन को प्रश्रय देता है। इसी कारण यथार्थ की वस्तुनिष्ठ अभिव्यक्ति प्रभावित होती है।

'वार्ता-साहित्य' का लोक-साहित्यिक स्वरूप समकालीन इतिहास-लेखन के प्रतिकूल प्रतीत होता है। इसी कारण 'वार्ता-साहित्य' को इतिहास का दर्जा प्राप्त नहीं है। बहरहाल 'इतिहास का संबंध अतीत से जोड़ा जाता है। इस भूमि पर वार्ता-साहित्य की विषयवस्तु भी अतीतात्मक रही है। समकालीन तथा पूर्व भक्तों के चरित्रों का परिचयात्मक विवरण वार्ता-साहित्य की विषयवस्तु के रूप में गृहीत है। वार्ता-साहित्य के मूल कथ्य को लालता प्रसाद दुबे के शब्दों में समझा जा सकता है:-

''मध्यकालीन धर्म साधना में भक्ति तथा प्रेम के संदेश द्वारा नया प्राण फूँकने वाले संतों तथा महात्माओं का परिचय जिन प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त होता है उन्हें सुविधा के लिए 'भक्त-वार्ता साहित्य' नाम दिया गया है।''

लालता प्रसाद दुबे वार्ता-साहित्य को मध्यकालीन धर्म-साधना में लीन भक्तों एवं कवियों का परिचयात्मक साहित्य मानते हैं। ऐसा कहते हुए वह वार्ता-साहित्य के विशिष्ट स्वरूप को मध्यकाल के धार्मिक वातावरण से आबद्ध करते हैं। यह कहना भी सत्य है, क्योंकि वार्ता-साहित्य में स्थान प्राप्त चरित्र 'भक्त' या 'भक्त-कवि' हैं, जिनकी प्रशस्ति लोक अथवा संप्रदायों में है। कई ग्रन्थ ऐसे भी प्राप्त होते हैं, जिनमें केवल संप्रदाय विशेष के भक्तों, संतों आदि का वर्णन हुआ है। इसका प्रबल उदाहरण पुष्टिमार्गीय वार्ताएँ हैं। अतः एक अर्थ में वार्ता-साहित्य संप्रदायों का इतिहास भी है।

वार्ता-साहित्य को इतिहास क्यों माने? यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। यह प्रश्न जितना सरल एवं जिज्ञासायुक्त है; इसका उत्तर उतना ही जटिल है। वार्ता-साहित्य परिवेशगत रूप से भारतीय चिंतन का विकास है। भारत की इतिहास संबंधी अवधारणा इसे प्रभावित करती है। अतः सर्वप्रथम समकालीन इतिहास की कसौटी से विमुख होना जरूरी है। महाभारत में उद्धृत इतिहास की परिभाषा अनुसार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के उपदेश से समन्वित एवं पूर्ववृत्त कथायुक्त को इतिहास कहते हैं।

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते।।

पुरूषार्थ चतुष्ट्य का कथन ही इतिहास का प्रयोजन माना गया है। पुरूषार्थ चतुष्ट्य का गहन अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट होगा कि इसके अंतर्गत मनुष्य के बाह्य कर्म तथा आंतरिक दृष्टि का समावेश हो जाता है। इसमें धर्म, अर्थ तथा काम को संयमित कर मोक्ष की प्राप्ति संभव बताई गई है। 'मोक्ष' भारतीय दृष्टिकोण का चरम लक्ष्य है। प्रत्येक क्रिया इसी ओर गतिमान होने के लिए निर्दिष्ट है। कहा जाये तो भारतीय वाङ्मय का आदिलक्ष्य भी इसी मोक्ष की प्राप्ति में है। इस मोक्ष की प्राप्ति प्रत्येक व्यक्ति द्वारा संभव है और मोक्ष का एकमात्र उपाय है - आध्यात्मिक उत्थान। भौतिक संसाधन मनुष्य के साधनमात्र है। परन्तु उसका लक्ष्य भौतिक जंजाल से विमुक्त हो आत्मिक उत्थान की दिशा में अग्रसरित होना है। अर्थात् इतिहास का लक्ष्य भी आत्मिक उत्थान ही है। यही कारण है भारतीय इतिहास में अतीत प्रगति करता हुआ न दिखकर स्थिर नजर आता है। रामायण तथा महाभारत इसके प्रबल उदाहरण हैं। ऐतिहासिक सूत्र को रचते हुए भी इतिहास मूल्य को स्थापित करने का प्रयास करता दिखता है। वार्ता-साहित्य का स्वरूप भी इसी को ग्रहण करता है। भक्त एवं भक्त कवियों का परिचयात्मक रूप क्रमबद्ध रूप से उनकी महिमा का गायन करता है। इस संबंध में रामचन्द्र शुक्ल का कथन द्रष्टव्य है -''इन चरित्रों में पूर्ण जीवनवृत्त नहीं है, केवल भक्ति की महिमासूचक बातें दी गई हैं। इनका उद्देश्य भक्तों के प्रति जनता में पूज्यबुद्धि का प्रचार जान पड़ता है।''

इतिहास-लेखन की विस्तृत परंपरा भारत में मौजूद रही है, जिसे आधुनिक इतिहासकारों ने स्वीकृति प्रदान नहीं की। जबकि यह परंपरा हिंदी में भी विकसित होती है और अपना विशेष प्रभाव छोड़ती है। यह परंपरा 'वार्ता-साहित्य' नाम से अभिहित की गई है। वार्ता-साहित्य केवल साहित्यिक रूप नहीं है अपितु वह सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था में रूपांतरित भी है। वार्ता-साहित्य का मूल कथ्य परिचय तथा उसका रूप काव्य-शैली है।

रामचन्द्र शुक्ल भी नाभादास कृत 'भक्तमाल' के बाह्य स्वरूप पर दृष्टिपात करते हैं ना कि उसकी आंतरिक संरचना को बताते हैं। वार्ता-साहित्य के संबंध में यही सत्य है कि आलोचकों एवं इतिहासकारों का ध्यान उसके बाह्य स्वरूप पर ही गया है बरक्स उसकी आंतरिक संरचना के।

'वार्ता-साहित्य' का मूल चरित्र शाश्वतमय होने में है, बरक्स क्षण में आबद्ध होने के। साहित्यिक शाश्वतता (भारतीय वाङ्मय के मूल कथ्य के संबंध में) भारत के आध्यात्मिक उत्थान की दृष्टि का क्रमिक रूपांतरण है। कहा जाये तो यह उस लक्ष्य प्राप्ति का साधन है। इतिहास वह माध्यम है जिसका अनुसरण कर व्यक्ति अथवा जीव उत्थान की दिशा में अग्रसर होता है। तभी तो इतिहास पुरूषार्थ चतुष्ट्य का उपदेशात्मक वर्णन करता है। यह उपदेशात्मकता सद्मार्ग में प्रवृत्त करने के उद्देश्य का परिणाम है। इस कारण इतिहासकार आदर्श स्थितियों, घटनाओं, चरित्रों की खोज अतीत में करता है। यह आध्यात्मिक उत्थान भारतीय वाङ्मय की मंगल कामना है, जो कि वार्ता-साहित्य का भी लक्ष्य है। इसीलिए भक्तमाल के मंगलाचरण में नाभादास हरिजनों के यशगान को मंगलदायक बताते हैं।

मंगल आदि बिचारि रहि बस्तु
न और अनूप।
हरिजन को जस गावते हरिजन
मंगलरुप।। 2।।

नाभादास के उपर्युक्त दोहे से वार्ता-साहित्य का प्रयोजन स्पष्ट है। इतिहास का प्रयोजन लोकमंगल है। यह लोकमंगल भक्तों के यशगान द्वारा संभव है। आदर्श चरित्रों का आख्यान लोकमंगलदायक है। यह प्रयोजन वार्ता-साहित्य का ही नहीं इतिहास-पुराण परंपरा का भी है, जिसका अनुकरण नाभादास ने किया है। नाभादास के शब्दों में -

संतन निरनै कियो मथि श्रुति पुरान
इतिहास।
भजिबे को दोई सुघर कै हरि कै
हरिदास।। 3।।

ऐसा कहते हुए वह शास्त्र तथा लोक के सह-अस्तित्व को भी रेखांकित करते हैं। बल्कि भक्तमाल के निर्माण को इतिहास-पुराण परंपरा की सापेक्षता में प्रमाणित करते हैं। संप्रदाय की स्थापना के लिए भी वेदों से जोड़कर अपने मत को रखना मध्यकाल की प्रमुख प्रवृत्ति थी। बहरहाल नाभादास द्वारा हरिजन का यशगान इतिहास-पुराण परंपरा का हिंदी में विकास है।

इतिहास-पुराण परंपरा के क्रमिक विकास की पुष्टि वार्ता-साहित्य के चरित्रों की तुलना में भी नजर आती है। नाभादास भक्तमाल के पूर्वार्द्ध में पुराणकालीन ऋषियों, देवों, भक्तों आदि का स्मरण करते हैं तथा मध्यकालीन भक्तों की तुलना पुराणकालीन पात्रों से करते हैं। संत नामदेव का वर्णन करते हुए नाभादास उनकी तुलना त्रेतायुगीन भक्त प्रह्लाद से करते हैं -

पँडुरनाथ कृत अनुग ज्यों छानि स्वकर
छइ छास की।
नाम देव प्रतिग्या निर्बही (ज्यों) त्रेता
नरहरिदास की।। 3।।

इस प्रकार पुराणकालीन पात्र एवं चरित्र नाभादास के समक्ष दृष्टिगत उदाहरण बनकर उपस्थित होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पुराण-इतिहास के पात्र भक्ति एवं उसके भिन्न-भिन्न रूपों के उदाहरण के रूप में नाभादास के समक्ष है, जिसका आरोप वह भक्तमाल रचते हुए करते हैं। उनकी दृष्टि का निर्माण इतिहास-पुराण के माध्यम से होता है।

समकालीन चिंतन इतिहास-लेखन में इतिहासकार की दृष्टि को महत्वपूर्ण मानता है। हेरोडोटस को प्रथम इतिहासकार का दर्जा प्राप्त है। हेरोडोटस इतिहास की भूमिका में इतिहासकार की आलोचनात्मक दृष्टि को इतिहास का निर्धारक तत्व मानते हैं। जबकि भारतीय इतिहास-लेखन में इतिहासकार की भूमिका परिवर्तित हो जाती है। इस परिवर्तन का कारण इतिहास का मूलभूत स्वरूप है। पाश्चात्य दृष्टि यथार्थवाद का आग्रह रखती है। यथार्थ का आग्रह सही-गलत की गुंजाइश भी रखता है। इसी कारण आलोचनात्मक दृष्टि की सहज उपस्थिति समकालीन इतिहास में संभव है। भारतीय इतिहास मूल्यों की आदर्शवादी व्यवस्था निर्मित करता है। इस आदर्शवादी व्यवस्था में इतिहासकार की भूमिका कमतर होती है। परन्तु इस स्थिति में भी रचनाकार अपनी उपस्थिति दर्ज करता है। नाभादास भक्त एवं कवि की उत्कृष्टता के संबंध में कथन करते दिखते हैं। भक्त एवं कवि के संबंध में नाभादास की मूल्यांकनपरक दृष्टि उपमादि तुलनात्मक कथन में दिखती है। भक्त हरिव्यास का वर्णन करते हुए वह लिखते हैं -

बैरागिन के बृंद रहत सँग स्याम सनेही।
ज्यों जोगेश्वर मध्य मनो सोभित
बैदेही।।77।।

भक्त दिवाकर के संबंध में भी उनका कथन मूल्यांकन के उपरांत निष्कर्ष देता है:-

बानी 'भोलाराम' सुहृद सबहिन
पर छाया।
भक्त-चरण-रज जाँचि, बिसद राघौ गुण
गायो।।78।।

वार्ता-साहित्य का मूल चरित्र शाश्वतमय होने में है, बरक्स क्षण में आबद्ध होने के। साहित्यिक शाश्वतता (भारतीय वाङ्मय के मूल कथ्य के संबंध में) भारत के आध्यात्मिक उत्थान की दृष्टि का क्रमिक रूपांतरण है। कहा जाये तो यह उस लक्ष्य प्राप्ति का साधन है। इतिहास वह माध्यम है जिसका अनुसरण कर व्यक्ति अथवा जीव उत्थान की दिशा में अग्रसर होता है। तभी तो इतिहास पुरुषार्थ चतुष्ट्य का उपदेशात्मक वर्णन करता है। यह उपदेशात्मकता सद्मार्ग में प्रवृत्त करने के उद्देश्य का परिणाम है। इस कारण इतिहासकार आदर्श स्थितियों, घटनाओं, चरित्रों की खोज अतीत में करता है।

उपर्युक्त पद्यांश लेखक की सहज उपस्थिति को दिखाता है। यह उपस्थिति या भूमिका आलोचनात्मक मूल्यांकन की कसौटी पर नहीं कसती। परन्तु यह स्मरण रखना होगा कि लेखक की उपस्थिति वार्ता-साहित्य का सामान्य गुण नहीं है।

इतिहासकार (लेखक) की आलोचनात्मक उपस्थिति भारतीय वाङ्मय के लेखकीय परिवेश में भिन्न दिखाई देती है। इसका एक कारण 'इतिहासकार' की परिभाषा में भी दृष्टिगोचर होता है। विष्णुपुराण का श्लोक इतिहास के स्वरूप के साथ-साथ इतिहासकार को समझने में सहायक है।

आर्ष्यादि बहुव्याख्यानं
देवर्षिचरिताश्रयम्।
इतिहासमिति प्रोक्तं
भविष्याद्भुतधर्मयुक्त।।

इस श्लोक में आर्ष आदि को इतिहासकार का दर्जा दिया गया है। आर्ष शब्द का प्रयोग 'ऋषि-मुनि' के लिए किया जाता है। ऋषि-मुनि आदि विद्वत वर्ग भारतीय वाङ्मय में सम्मान पाते रहे हैं। परन्तु उनका विषय-विशेष के रूप में विभाजन नहीं किया गया। दुर्गाचार्य की निरुक्ति है –

'**ऋषिर्दर्शनात्।**' (नि. 2/11)

इस निरुक्ति में 'ऋषि' का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है - दर्शन करने वाला, तत्वों की साक्षात् अपरोक्ष अनुभूति रखने वाला विशिष्ट पुरूष। सरल शब्दों में कहा जाये तो ऋषि को ज्ञानद्रष्टा माना गया है। जो कि साधनागत तप के माध्यम से ज्ञान का दर्शन करता है। परन्तु केवल इतिहास-विषय-विशेष के रूप में ऋषि की भूमिका अदृष्ट है। वहीं मुनि को तीव्र तपश्चरण के साथ जोड़ा जाता है। गीता में मुनि की व्याख्या कुछ इस प्रकार की है -

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागमयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।

'दुखों में उद्विग्न न होने वाला, सुखों में स्पृहा से विरहित राग, भय तथा क्रोध से उन्मुक्त होने वाला तथा स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति 'मुनि' कहलाता है।' अतः स्पष्ट है कि भारतीय इतिहास-लेखक कोई इतिहासकार न होकर साधक है। वह साधना में तल्लीन रहने वाला, ब्रह्मलीन आकांक्षी संयासी थे। अतः स्पष्ट है कि 'इतिहासकार' जैसे किसी परिभाषित शब्द का निदर्शन संस्कृत साहित्य में नहीं होता। बल्कि ऋषि आदि विद्वत वर्ग पर इतिहास का लेखन स्वीकार किया गया है। संस्कृत में ऋषियों को शास्त्र ज्ञाता का दर्जा प्राप्त है, परन्तु उनके संबंध में धार्मिक दृष्टि का आवरण भी स्वीकार किया जाता है। मध्यकाल में लेखक मूलतः रचनाकार है। उदाहरण के लिए नाभादास। नाभादास मूलतः भक्त एवं कवि हैं। परन्तु उनको इतिहासकार जैसी विशिष्ट उपाधि देना सरासर गलत होगा। यही दृष्टि मध्यकाल के सभी लेखक अथवा रचनाकार के संबंध में लागू होती है। वाल्मीकि एवं महर्षि व्यास दोनों मूलतः कवि हैं परन्तु रामायण और महाभारत महाकाव्य के अतिरिक्त इतिहास भी है। यही भ्रम की स्थिति मध्यकाल में रही है। बल्कि मध्यकाल में 'लेखक' शास्त्रज्ञ न होकर कवि एवं भक्त है। वार्ताकार इसी कोटि के अंतर्गत स्थान पाते हैं। अतः स्पष्ट है कि 'इतिहासकार' जैसे परिभाषित शब्द एवं भूमिका का निदर्शन भारतीय इतिहास तथा वार्ता-साहित्य में नहीं होता, जिसका स्पष्ट संकेत समकालीन इतिहास के लिए आवश्यक माना गया है। यह कारण भी है कि वार्ता-साहित्य का स्वरूप भिन्न दिखाई देता है।

'आर्ष' वह विद्वत वर्ग था, जो कि इतिहास की आख्यात्मक रचना करते थे। ऋषि-मुनि इसी विद्वत वर्ग में सम्मिलित हैं। मूलतः ऋषि एवं मुनि विचारों की दो धाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह धाराएँ क्रमशः वेदधारा तथा पुराणधारा थी। इनके अंतर को बताते हुए बलदेव उपाध्याय लिखते हैं -

''वेदधारा तो आरम्भ से ही धार्मिक है तथा यज्ञों से विशिष्ट देवता को उच्छिष्ट कर हवित्यार्ग की विधि को वह महत्व देती है। पुराणधारा का लक्ष्य लोकवृत्त का अनुशीलन तथा समीक्षण कर विपुल विवरण देना है।''

अतः स्पष्ट है कि ऋषि तथा मुनि की द्विविध धारा प्रचलित थी। इसका प्रमाण मार्कण्डेय पुराण के कथन से हो जाता है। मार्कण्डेय पुराण की सृष्टि को प्राक्कालीन तथा वेद की सृष्टि को उत्तरकालीन मानते हैं। इससे एक बात तो स्पष्ट है कि इतिहास का संबंध लोक से जोड़ा जाता था। यहाँ लोक शब्द इहलोक के संबंध में प्रयुक्त है, अर्थात् जो भी दृष्ट जगत है वह सभी लोकांतर्गत स्वीकार किये गये हैं। यही कारण है कि राजवंश, देव एवं ऋषियों के चरित, भूगोल, सृष्टि उद्भव एवं प्रलय आदि इतिहास-पुराण के लक्षण में स्थान पाते हैं। इससे यह तो स्पष्ट है कि समकालीन लोक की अवधारणा भारतीय वाङ्मय के संदर्भ में अव्याख्येय है। लोक और शास्त्र का समकालीन द्वंद्व यथावत् मध्यकाल पर लागू नहीं किया जा सकता। ऋग्वेद में 'लोक' शब्द 'जन' के लिए प्रयोग किया गया है।

य इमे रोदसी उभे; अहमिन्द्रमतुष्टवम्।
विश्वामित्रस्य रक्षति; ब्रह्मेदं भारतं जनम्।।

वैदिक ऋषि कहते हैं कि 'विश्वामित्र के द्वारा उच्चरित यह ब्रह्म या मंत्र भारत 'जन' की रक्षा करता है। ऋग्वेद के पुरूष सुक्त में 'लोक' शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में हुआ है।

'नाभ्या आसीदन्तरिक्षं
शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिः दिशः श्रोत्रात्,
तथा लोकानकल्पयत्।।''

महाभाष्यकार पतंजलि भी जनसाधारण के अर्थ में 'लोक' शब्द का व्यवहार करते हैं।

''अभ्यन्तरोंहं लोके न त्वहं लोकः।''

महर्षि व्यास महाभारत की विशेषताओं पर चर्चा करते हुए महाभारत को लोक की अज्ञानता को नाश करने **वाला बताते हैं।**

''अज्ञान तिमिरान्धस्य;
लोकस्य तु विचेष्टतः।
ज्ञानांजन शलाकाभिः
नेत्रोन्मीलन कारकम्।।''

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि संस्कृत लोक शब्द का प्रयोग 'जन' के लिए हुआ है।

इसका कोई अभिप्राय देशज अथवा क्षेत्रीय, पिछड़ी जनता के अर्थ में नहीं हुआ है। परन्तु लोक की विशेषता 'मौखिकता' का प्रभाव जरूर इतिहास को वैशिष्ट्य प्रदान करता है। शास्त्र एवं लोक के विभाजन में आधुनिक दृष्टि लिखित तथा मौखिक को आधार बनाती है। परन्तु शास्त्र-लोक का विभाजन भारतीय वाङ्मय में भिन्न रूप से हुआ है। कालांतर में यह विभाजन अवश्य भाषागत हो गया है। तब संस्कृत को शास्त्रीय तथा अन्य देशज बोलियों को लोकभाषा का दर्जा प्राप्त होता है।

बहरहाल लोकभाषा का सीधा संपर्क आमजनता से माना गया। इसी कारण शास्त्रीय चिंतन संस्कृत में ही रहा तथा उसका लोक व्यावहारिक रूप आम बोलियों में लिखा गया। पुष्टिमार्गीय वार्ताएँ मूलतः संप्रदाय का इतिहास प्रस्तुत करते हैं। परन्तु उसी के साथ-साथ कुछ शास्त्रीय जिज्ञासाओं का प्रश्नात्मक उल्लेख उसमें स्थान पाता है। इन जिज्ञासाओं का शमन वल्लभाचार्य के उपदेशों द्वारा स्वीकार किया गया है। अतः यह वार्ताएँ शास्त्रीय चिंतन का रूप भले ही न ले सके। परन्तु उनके शमन का मार्ग जरूर लोक के समक्ष छोड़ जाती हैं। वहीं भक्ति का कोई सैद्धान्तिक विवेचन इनमें नहीं है परन्तु उसकी गहनता के प्रबल उदाहरण वार्ता-साहित्य जरूर प्रस्तुत करता है। सरल शब्दों में कहा जाये तो वार्ता-साहित्य की लोक-प्रवृत्ति उसे सैद्धांतिक चिंतन को व्यवहार-पक्षीय व्याख्याकर्ता जरूर बना देती है।

लोक का प्रभाव वार्ता-साहित्य को वैशिष्ट्य प्रदान करता है। इसका एक कारण वार्ताकार की दृष्टि भी है, जो लोक द्वारा नियंत्रित होती है। वार्ताकार समकालीन तथा अतीत के ऐतिहासिक चरित्रों को साहित्य में स्थान भले ही देता है। परन्तु उन चरित्रों के चयन में लोक का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वार्ताकार उन भक्तों एवं कवियों का चुनाव करता है जो कि लोक में अपना विशेष स्थान बना चुके हैं और प्रशस्ति प्राप्त हैं। ऐसा करते हुए वह लोक-प्रशस्ति को कसौटी के रूप में महत्ता देते हैं जिस पर भक्तों एवं कवियों का साहित्य और चरित्र अपने को प्रमाणित करता है। अतः समकालीन इतिहास प्रमाण-अप्रमाण का निर्धारण, जो इतिहासकार पर छोड़ता है, वह कार्य मध्यकालीन हिंदी इतिहास-लेखन में लोक करता है। लेकिन यह भी समझना आवश्यक है कि यह लोक प्रशस्ति वर्तमान के अनुरूप सहज एवं सरल नहीं थी। भारतीय समाज ग्राम व्यवस्था में रहता था। दूरस्थ क्षेत्रों से संपर्क के साधन सीमित थे। ऊपर से यह भक्त और कवि कोई राजा अथवा अधिकारी नहीं थे। इनका संपर्क भले ही सत्ता से रहा परन्तु उसका आधार भी लोक-प्रशस्ति ही था। उनकी प्रशस्ति भक्त के रूप में थी। यही पैमाना वार्ता-साहित्य की आधारभूत दृष्टि बनता है।

वार्ता-साहित्य का स्वरूप:- 'वार्ता-साहित्य' हिंदी में भारतीय इतिहास-लेखन परंपरा का विकास है। मध्यकाल के विशेष परिवेश तथा हिंदी लोकभाषा के विकास के साथ 'वार्ता-साहित्य' अपना विशिष्ट स्वरूप निर्मित करता है।

'कार्य-कारण-संबंध' को लेकर भी समकालीन इतिहास में गहन चिंतन हुआ है। इतिहास में अतीत की विकासात्मकता के पीछे इस सिद्धांत की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह सिद्धांत अतीत के यथार्थपूर्ण निर्माण की सहज परिणति है। स्थितियों में सुधार या ह्रास की दिशा एवं गति को इसी सिद्धांत के माध्यम द्वारा व्याख्यायित किया जाता है। वहीं 'कार्य-कारण-संबंध' विभिन्न स्थितियों एवं घटनाओं के मध्य जुड़ाव भी निर्मित करता है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि भारतीय इतिहास आदर्श की स्थापना करता है। इन आदर्शों के माध्यम से वह एक सांस्कृतिक मूल्य व्यवस्था की निर्मिति करता है। अतः मूल्यों की आदर्श व्यवस्था उद्भव एवं पतन से कोसों दूर हो जाती है। स्थितियों में सुधार तथा ह्रास की संभावनाएँ पूर्णतः समाप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में घटनाओं का विकास तो होता है परन्तु स्थितियाँ यथावत् बनी रहती है। अपरिवर्तनीयता के कारण 'कार्य-कारण-संबंध' की खोज भारतीय इतिहास के प्रतिकूल पड़ती है। वार्ता-साहित्य में भी ऐतिहासिक चरित्रों को लेकर लेखक की दृष्टि स्थिर है। उनका चरित्र उच्च लक्ष्य तक नहीं जाता। बल्कि वह उस उच्चता पर पहले ही विराजमान हैं।

अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि वार्ता-साहित्य भारतीय इतिहास-पुराण परंपरा का विकास है। जिस ओर विद्वानों का ध्यान गया ही नही, क्योंकि उनकी दृष्टि भारतीय इतिहास की धारा को अस्वीकार करती आई है। आधुनिक इतिहास-चिंतन से इतर भारतीय इतिहास के भिन्न स्वरूप को समझने का उन्होंने प्रयास ही नहीं किया। यदि वह ऐसा करते तो उन्हें भारतीय इतिहास के पीछे आध्यात्मिक-सांस्कृतिक दृष्टि का विकास दिखता, वह भी संश्लिष्टता में, जिसकी खोज समकालीन चिंतक विश्लेषण के माध्यम से करते रहे।

निष्कर्षतः कहा जाये तो वार्ता-साहित्य का ऐतिहासिक स्वरूप समकालीन इतिहास-चिंतन की कसौटियों पर अव्याख्यायित है। इसके सूत्र भारतीय वाङ्मय एवं दर्शन में मौजूद हैं, जोकि संश्लिष्टता में अतीत का आदर्शात्मक निरूपण करते हैं। वार्ता-साहित्य का आदर्शात्मक स्वरूप, दार्शनिक प्रयोजन, आध्यात्मिक लक्ष्य आदि वस्तुनिष्ठ इतिहास-लेखन के विपरीत ठहरता है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि भारतीय इतिहास के अस्तित्व को ही अस्वीकार किया जाये। बल्कि वार्ता-साहित्य की स्वरूपगत पहचान ही इतिहास की खोज के लिए आवश्यक है।

• • •

लेखक लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, दिल्ली में सहायक प्राध्यापक हैं।

राष्ट्र की चिति है हमारा लोक साहित्य

– सोमदत्त शर्मा

डा.पांडुरंगराव लिखते हैं – इस श्लोक में पहला नाम है 'चिति' चिति, चित्, चित्त तीनों एक दूसरे से मिलते – जुलते शब्द हैं। जिनमें चेतना की भावना समान रूप से सम्मिलित है। चिति, चित और चित्त और चेतना सबकी व्युत्पत्ति 'चि' धातु से होती है। जिसका मतलब है – चुनना, सार ग्रहण करना, सोचना, मनन करना आदि आदि। संक्षेप में निष्क्रियता से सक्रियता, निश्चलता से संचलता और जड़ से चेतन का आविष्कार ही 'चिति' है। अनिश्चय से निश्चय का अलोक दिखाने वाली आंतरिक ज्योति ही 'चिति' है।

'लोक साहित्य' और 'चिति' के अंतर्संबंधो को समझने से पहले 'चिति' को समझ लेना आवश्यक है। 'चिति 'मूलत: संस्कृत शब्द है। संस्कृत वाङ्मय में 'चिति' शब्द का अनेक स्थानों पर प्रयोग हुआ है। 'देवी भागवत पुराण' में कहा गया है –

चितिश्चैतन्य भावाद्वा चेतना वा चिति: स्मृता।
महान व्याप्तस्थितिता सर्व्वं महा वा
प्रकृतिर्म्मता॥

'शब्द कल्पद्रुमें इसी संदर्भ से 'चिति' शब्द के अर्थ चिंता, चिता और चेतना बताये गये हैं

प्रख्यात हिंदी आलोचक डा. कृष्णदत्त पालीवाल ने अपने एक लेख 'लोक से बंधे हैं कलाओं के मिथक' में 'चिति' को 'सायिकी' (psyche) यानि 'मानस' के अर्थ में प्रयुक्त किया है। वह लिखते हैं " सुदीर्घ मानव इतिहास में कलायें दो शक्तिशाली इंद्रियों की ताकत पर केंद्रित रही है – कान और नेत्र। इसलिये 'चिति'(सायिकी) और चेतना (कनशसनेस) ने जुडकर कलाओं को अमोघता का वरदान दिया है।" (उत्तर आधुनिकता की ओर, पृष्ठ 217)

संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान डा. इलिपावुलूरि पांडुरंगराव ने ब्रह्मांड्पुराण के 'अगस्त्य – हयग्रीव' संवाद में आये 'श्रीललिता सहस्रनाम' के श्लोकों की 'श्री सहस्रिका' नामक ग्रंथ में विस्तृत विवेचना की है। इसमें 'श्रीललिता सहस्रनाम' के एक श्लोक का उल्लेख है-

चितिस्तत्पद लक्ष्यार्था चिदेक रस रूपिणी।
स्वात्मानंद लवीभूत ब्रहमाध्यानंद संतति:॥

डा.पांडुरंगराव लिखते हैं –" इस श्लोक में पहला नाम है 'चिति' चिति, चित्, चित्त तीनों एक दूसरे से मिलते – जुलते शब्द हैं। जिनमें चेतना की भावना समान रूप से सम्मिलित है। चिति, चित और चित्त और चेतना सबकी व्युत्पत्ति 'चि' धातु से होती है। जिसका मतलब है – चुनना, सार ग्रहण करना, सोचना, मनन करना आदि आदि। संक्षेप में निष्क्रियता से सक्रियता, निश्चलता से संचलता और जड़ से चेतन का आविष्कार ही 'चिति' है। अनिश्चय से निश्चय का अलोक दिखाने वाली आंतरिक ज्योति ही 'चिति' है।" (श्री सहस्रिका, पृष्ठ 170-171)

उक्त संदर्भों से स्पष्ट है कि, 'चिति' भौतिक या स्थूल चेतना से भिन्न स्तर की कोई चीज है। जो निरंतर चिंतन - मनन, के परिणाम स्वरूप विकसित होती है। चेतना की इस विकास यात्रा में असंख्य जीवनानुभवों और अगणित जीवनानुसंधानों का सम्पुट होता है। अनुभव निरंतर अनुसंधान को प्रेरित करते हैं। इन अनुसंधानों से प्राप्त परिणामों को फिर जीवन की वास्तविक प्रयोगशाला में परीक्षण के लिए छोड दिया जाता है। इस प्रकार वृहत्तर जीवन के लिये उपयोगी सिद्ध होने पर ही उन परिणामों को समाज द्वारा व्यापक स्तर पर स्वीकार कर लिया जाता है।

ये परिणाम जीवन के लिये मंगलकारी होते हैं अत: हमरी चेतना का हिस्सा बन जाते हैं। सम्भवत: यही विकसित और समृद्ध चेतना ही 'चिति' है। दूसरे शब्दों में किसी भी समाज की उच्चतम आत्मिक उप्लब्धियों में उसकी आस्था और विश्वास को उस समाज की 'चिति' कह सकते हैं। सभ्यता के विकासक्रम में हम बहुत कुछ ज्ञान हासिल करते हैं। कुछ चीजें समय के साथ बदलती जाती हैं। उनमें ह्म निरंतर संशोधन करते जाते हैं। एक समय आता है जब सुधार की प्रक्रिया में विराम लग जाता है और मान लिया जाता है कि अब और सुधार की आवश्यकता नहीं है। जो हासिल कर लिया गया है वह समाज की उच्चतम उपलब्धि है और समाज जीवन के लिये सर्वतोभावेन उपयोगी है तब उसे समाज अपने दैनंदिन जीवन का हिस्सा बना लेता है। एक समाज के तौर पर हमारा विश्वास और आस्थायें हमारे रहन सहन, खान – पान, तीज – त्योहार, शादी – व्याह, और रीति – रिवाज आदि शुभ अवसरों पर प्रकट होते हैं। उसमें थोडी सी भी चूक समूचे समाज को विचलित और उद्वेलित कर जाती है।छोटे से छोटा आघात हमारी बर्दाश्त के बाहर हो जाता है। हमें अपराधबोध से भर देता है। उससे उबरने के लिये समूचा समाज भिन्न भिन्न प्रकार से प्रायश्चित्त करता है। क्योकि एक समाज के तौर पर हमें लगता है कि ऐसा न करके हम उस मनीषा का अपमान करते हैं जिसके कारण हमें वह सब हासिल हुआ है। इसी भाव को व्यक्त करने के लिये संस्कृत में जो शब्द है उसी को 'चिति' के रूप में अभिहित किया जाता है। चिति के निर्माण और विकास में न जाने कितनी पीढियों के अनुभव लगते हैं। कितनी शताब्दियों का समय लगता है। हम उसे व्यर्थ नहीं जाने देना चाहते।ये हमारी चेतना का हिस्सा ही नहीं बन जाते बल्कि चेतना का ही रूप ले लेते हैं। इसलिये चिति को 'चेतना' के अर्थ में ही लिया जाता है। 'शब्द कल्पद्रुम' और 'श्री ललिता सहस्नाम' में चेतना के लिये सम्भवत: इसीलिये 'चिति' शब्द का प्रयोग किया गया है। साहित्य और कला के तमाम रूपों में इसी 'चिति 'की पुनरावृत्ति होती है। नृत्य- संगीत इसी को नाचते और गाते हैं। शास्त्रीय और लोक कलायें इसी भाव को व्यक्त करती हैं। रूपंकर कलाएं इसी का रूपांकन और मंचन करती हैं। चित्रकला में बार बार इसी को रचा जाता है।चिति हमारे अस्तित्व का हिस्सा ही नहीं हमारे अस्तित्व का पर्याय बन जाती है। पंडित दीन दयाल उपाध्याय जब इस शब्द में सामुदायिक चेतना का भाव देखते हैं तो इसका और भी अर्थ विस्तार हो जाता है।

'चिति' या 'सामूहिक चेतना' समाज विशेष की सृष्टि के विभिन्न घटक तत्वों के प्रति उसकी सजगता और संवेदनशीलता के स्तर को उद्घाटित करती है। भारतीय समाज, खास कर हिंदू समाज, की सामूहिक चेतना में सजगता और सम्वेदनशीलता का फैलाव सृष्टि के कण कण तक दिखाई देता है क्योंकि भगवान ने स्वयं कहा है कि वे सृष्टि के कण कण में इस तरह पिरोये हुए हैं जैसे माला की मणियों में सूत्र पिरोया रहता है। भारत का लोक समाज गीता के इस कथन में विश्वास करता है। हम जानते हैं कि लोक साहित्य लोक द्वारा रचा जाता है और उसमें लोक की सामूहिक चेतना को ही अभिव्यक्ति मिलती है।

किसी भी लोक समाज की 'चिति' के निर्माण में उस समाज द्वारा विकसित शास्त्रों और महापुरुषों का हाथ होता है। भारत में वेद, उपनिषद, पुराण, गीता, भागवत, ब्रह्म सूत्र, पातंजलि योगशास्त्र जैसे शास्त्रीय ग्रंथों तथा राम, कृष्ण, बुद्ध महावीर, तुलसी, सूर, मीरा, संत तुकाराम, नानक, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद और तिलक जैसे अनेकानेक महापुरुषों का योगदान रहा है। वेद, उपनिषद, पुराण जैसे शास्त्रीय ग्रंथों ने जीवन का वास्तविक लक्ष्य- आनंद प्राप्ति या ईश्वर प्राप्ति - तय किया और उस लक्ष्य तक पहुंचने के लिये ज्ञान, भक्ति, और योग जैसे रास्ते बताये, मार्ग की बाधाओं और उंनसे निजात पाने के उपाय बताये तो महापुरुषों ने उन रास्तों पर चलकर, लक्ष्य तक पहुंच कर दिखाया और समाज में एक विश्वास पैदा किया। ये निष्कर्ष सर्वमंगलकारी लगे तो समाज ने भी उन्हें स्वीकार किया और विविध प्रकार से उनका अनुपालन भी किया। लोक साहित्य, लोक संगीत, लोक कलाओं के विविध रूपों, तथा लोक रीतियों और लोक पर्वों, तीज – त्योहार, रहन -सहन, खान पान सब में उनकी झलक देखी जा सकती है।प्रवृत्यात्मक साहित्य और कलारूप भी उसकी उपेक्षा करने का साहस नहीं जुटा पाते और इसी से उस समाज की अलग पहचान बनती है। नूतन प्रयोग के नाम पर अगर कभी रचनाओं और कलारूपों में चिति भिन्नता प्रकट होती है तो वह काल के गर्त में समा जाती है या फिर उन्हें समाज की तीखी प्रतिक्रिया का सामना करना पडता है। विश्वप्रसिद्ध चित्रकार एम. एफ . हुसैन द्वारा बनाये गये देवी दुर्गा के 'न्यूड' चित्रों के प्रति हिंदू समाज की तीखी प्रतिक्रिया या फ्रांस की पत्रिका में छपे मुहम्मद साहब के कार्टून के प्रति मुसलिम समाज की तीखी प्रतिक्रिया इसका उदाहरण हैं। इससे पता चलता है कि 'चिति' का स्वरूप सामूहिकता में प्रतिफलित होता है। और इसी लिये सामूहिक स्वीकृति या प्रतिकार सामने आता है। ऊपर बताया गया है कि वेद, उपनिषद, पुराण, गीता, भागवत, रामायण, पातंजलि योग दर्शन, और ब्रहम सूत्र जैसे ग्रंथों, महान ऋषियों – मुनियों, और कालानुक्रम में अवतीर्ण हुए महापुरुषों के आचार – विचारों ने भारतीय चिति के निर्माण में महती भूमिका निभाई है। परमतत्व की खोज और उसको पाने के रास्तों की पहचान तथा वहाँ तक पहुंचना चिति के कारण ही सम्भव होता है।

गीता में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने दूसरे अध्याय में कहा है -

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत:।

उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभि: ॥
(गीता 2/16)

इस श्लोक में यही बताया है कि किसी सत्ता (ब्रह्म, जीव और माया) का कभी अभाव नहीं हो सकता। यानि जीव, ब्रह्म और माया तीनों सनातन हैं। वेद कहता है कि ईश्वर एक है। जीव उसी का अंश है। दोनों सनातन हैं। जीव याने आत्मा केवल शरीर बदलती है। 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी 'कहकर तुलसी दास जी ने भी 'रामचरितमानस' में इसी सत्य को उदघाटित किया है। भारतीय लोक समाज के प्राय: सभी घटक इसमें विश्वास करते हैं। उत्तर प्रदेश के मेरठ और बागपत के बीच का इलाका कौरव प्रदेश कहलाता है। इस क्षेत्र की लोक बोली को 'कौरवी' कहते हैं।कौरवी में गाये जाने वाला प्रश्नोत्तर शैली का एक लोक गीत है –

प्रश्न –

ऐ जी, कौन जगत में एक है ?
बीरा कौन जगत में दोय?
कौन जगत में जागता ?
ऐ जी, कौन पड्या रहि सोय ?

उत्तर –

ऐ जी, राम जगत में एक है।
चंदा – सूरज दोय।
पाप जगत एन जागता।
धर्म पड्या रहि सोय।

इस लोक गीत की चर्चा लोक साहित्य की मर्मज्ञ डाक्टर शांति जैन ने अपनी पुस्तक 'लोक गीतों के संदर्भ और आयाम' में की है। प्रश्नोत्तर शैली में गाया जाने वाला यह गीत 'पल्हाये' गीत के नाम से जाना जाता है। डाक्टर जैन इस गीत के बारे में लिखती हैं –" यहाँ के (कुरु भूमि के) लोक साहित्य में कुछ ऐसे उद्धरण हैं जिनसे वैदिक काल के लोक मानस की समानता हो सकती है।" (लोक गीतों के संदर्भ और आयाम, डाक्टर शांति जैन, पृष्ठ 23)

वस्तुत: लोक की समानता उस सत्य के साथ जुडी है जिसे - 'एकोहं द्वितियोनास्ति' या 'एकमेवाद्वितियोहं' जैसे महावाक्यों द्वारा व्यक्त किया गया है। ईश्वर एक है और वही कण कण में व्याप्त है।

आत्मा के बारे में श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं –

नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावक:।
न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुत:॥
(गीता, 2/23)

चिति के निर्माण और विकास में न जाने कितनी पीढियों के अनुभव लगते हैं। कितनी शताब्दियों का समय लगता है। हम उसे व्यर्थ नहीं जाने देना चाहते ।ये हमारी चेतना का हिस्सा ही नहीं बन जाते बल्कि चेतना का ही रुप ले लेते हैं। इसलिये चिति को 'चेतना' के अर्थ में ही लिया जाता है। 'शब्द कल्पद्रुम' और 'श्री ललिता सहस्त्नाम' में चेतना के लिये सम्भवत: इसीलिये 'चिति' शब्द का प्रयोग किया गया है। साहित्य और कला के तमाम रुपों में इसी 'चिति 'की पुनरावृत्ति होती है। नृत्य- संगीत इसी को नाचते और गाते हैं। शास्त्रीय और लोक कलायें इसी भाव को व्यक्त करती हैं। रुपंकर कलाएं इसी का रुपांकन और मंचन करती हैं। चित्रकला में बार बार इसी को रचा जाता है।चिति हमारे अस्तित्व का हिस्सा ही नहीं हमारे अस्तित्व का पर्याय बन जाती है। पंडित दीन दयाल उपाध्याय जब इस शब्द में सामुदायिक चेतना का भाव देखते हैं तो इसका और भी अर्थ विस्तार हो जाता है।

यानि आत्मा को न तो शस्त्र से काटा जा सकता है। न उसे अग्नि जला सकती है। और नहीं वायु उसे सुखा सकती है। श्रीकृष्ण का यह कथन जीव की सनातनता, अविनश्वरता और उसकी अमरता की ओर संकेत करता है। राजस्थान के 'लावणी' गीतों में शरीर की नश्वरता का बखान देखिये –

जिस दम में दम आदम को निकल जावे है
कंचन काया फिर कौन काम आवे है ॥

(लावणी, रंगत वशीकरण,, लोक गीतों के संदर्भ और आयाम, डाक्टर शंति जैन)

आत्मा की अमरता के अनेक उदाहरण पूर्वी उत्तर प्रदेश में गाये जाने वाले निर्गुण गीतों में देखने को मिल जाते हैं।एक भोजपुरी लोक गीत की ये पंक्तियाँ देखिये –

सुगना निकल गइल पिंजरा से।
खाली परल रहल तस्वीर ॥

यहाँ सुगना पक्षी आत्मा का प्रतीक है। जो शरीर से निकल कर जाता है। और पुन: नये शरीर में प्रवेश करता है।

माया तीसरा सनातन तत्व है जो भगवान और आत्मा की तरह अनादि है। यह यद्यपि जड है लेकिन अत्यंत प्रभावी है। इस से पार पाना बडे बडे संत, महात्मा और ज्ञानियों के लिये भी दुष्कर है तब साधारण मनुष्य की क्या बिसात है। एक निर्गुण गीत की दो पंक्तियां देखिये –

काया की कश्ती बनी रे माया की दुनियार।
उठा भंवर गुंजार कै रे नैया घेरी आय ॥

ईश्वर और जीव के बीच में यही माया आकर खडी हो जाती है इसलिये जीवात्मा अपने अंशी से नहीं मिल पाती। अपने अंशी से मिलना ही तो आत्मा का परम उद्देश्य है।

इस प्रकार भारतीय मनीषा ने सहस्राब्दियों के अनुभवों और जीवनानुसंधानों के परिणामस्वरूप पहले यह सत्य खोजा कि ईश्वर है। वह एक है। जीवात्मा उसी का अंश है। वह अपने कर्म फल के भोग के लिये शरीर धारण करती है। जीवात्मा का परम लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है। जिसे प्राप्त करने में माया सबसे बडी बाधा है। ईश्वर की कृपा से ही उससे पार पाया जा सकता है लेकिन इसके लिये गुरु की आवश्यकता होती है। 'बलिहारि गुरु आपने गोविंद दियो बताय 'कहकर कबीर ने यही संकेत किया है।

लोक जीवन में आषाढी पूर्णिमा को

गुरु पूर्णिमा कहा जाता है। मान्यता है कि इसी दिन से व्यास जी ने श्रीमद्भागवत की रचना आरम्भ की थी। इस कारण इसे व्यास पूर्णिमा भी कहा जाता है। लोक में भी गुरु के महत्व को स्वीकारने वाले लोक गीतों की भरमार है। ऐसे ही एक निमाडी लोक गीत की चर्चा डाक्टर सुमन चौरे ने अपनी पुस्तक 'निमाण का सांस्कृतिक लोक' में की है –

तिल बिन होम नं जौ बिन ग्यारी
संग बिन तिरथ नी होय भोला संघवी
झिर बिन कुंआ न जल बिन झारी
गुरु बिन गति नी होय भोला संघवी
गुरु मख द ओ किरपा को दान

गीत में कहा गया है कि हे भोले मनुष्य जिस तरह तिल के बिना होम और जौ के बिना तर्पण संभव नहीं होता, वैसे ही सहयात्री के बिना तीर्थ भी सम्भव नहीं है। जैसे बिना स्रोत के कुंआ और बिना जल की झारी का कोई महत्व नहीं है ऐसे ही गुरु के बिना मनुष्य का जीवन निरर्थक रहता है। (निमाड का संस्कृतिक लोक, डाक्टर सुमन चौरे, पृष्ठ 314)

ऐसे ही एक और निमाडी लोक गीत में गुरु से प्रार्थना की गयी है कि, " हे गुरुवर! मेरी एक अरज सुन लीजिये। मेरा पुनर्जन्म न हो। यदि हो तो आप ही गुरु रूप में पुन: प्राप्त हों। मेरा जीवन तो मिट्टी का ढेला भर है। गुरु जी आप मेरे लिये कुम्हार बन जाना और कुम्हार बनकर मिट्टी से मेरी गागर गढ देना। उस गागर में शीतल जल भरना जो मन को शीतल करे। मेरा जीवन तो लकडी का एक टुकडा है। गुरु जी! आप सुतार बन कर इससे मेरी नाव बना देना। आप पतवार लेकर मुझे भव सागर से पार उतार देना। मेरा जीवन तो कागज का एक टुकडा है। हे गुरु जी! आप ब्रह्मा बन जाना और ब्रह्मा बनकर मेरे भाग्य की रचना करना। आप ही गुरु बनो, मेरे भाग्य में ऐसा लिखना। यही मेरी अरज है कि मैं फिर से जन्म न लूं, यदि जन्म हो तो गुरु के रूप में आप फिर मुझे मिलना।"

गुरु जी म्हारी एक अरज सुणी लीजो
गुरु जी म्हारो फेर जलम नी होय
फेर जलम नी होय
गुरु जी म्हारा कदी जलम नी होय
यो जीवन माटी को ढेलो
तुम कुम्हार बण जो, बण कुम्हार म्हारी गागर घड जो
घड गागर जेम जल भरी दीजो
शीतल जल मन कर जो
गुरु जी म्हारि एक अरज सुणी लीजो .....

इसी तरह यह गीत आगे चलता है। (निमाड़ी का सांस्कृतिक लोक, डाक्टर सुमन चौरे, पृष्ठ 317)

भारतीय मनीषा ने सहस्राब्दियों के अनुभवों और जीवनानुसंधानों के परिणामस्वरुप पहले यह सत्य खोजा कि ईश्वर है। वह एक है। जीवात्मा उसी का अंश है। वह अपने कर्म फल के भोग के लिये शरीर धारण करती है। जीवात्मा का परम लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है। जिसे प्राप्त करने में माया सबसे बडी बाधा है। ईश्वर की कृपा से ही उससे पार पाया जा सकता है लेकिन इसके लिये गुरु की आवश्यकता होती है। 'बलिहारि गुरु आपने गोविंद दियो बताय 'कहकर कबीर ने यही संकेत किया है। लोक जीवन में आषाढी पूर्णिमा को गुरु पूर्णिमा कहा जाता है। मान्यता है कि इसी दिन से व्यास जी ने श्रीमद्भागवत की रचना आरम्भ की थी। इस कारण इसे व्यास पूर्णिमा भी कहा जाता है। लोक में भी गुरु के महत्व को स्वीकारने वाले लोक गीतों की भरमार है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि, वेदों, उपनिषदों, पुराणों, गीता, भागवत, रामायण आदि ग्रंथों के इसी ज्ञान को लोक अपनी तरह से ग्रहण करता है। अपने जीवन व्यवहार, रीति रिवाज, तीज त्योहार आदि में इन अवस्थापनाओं को दोहराता है। आने वाली संततियों को अपने नये अनुभवों और अनुसंधानों के निष्कर्ष के साथ सौंपता है। लेकिन मूल अवधारणाओं में कोई फर्क नहीं आता।

डाकटर कृष्णदत्त पालीवाल का यह कथन महत्वपूर्ण है जिसमें वे संस्कृत काव्य शास्त्र का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए कहते हैं –

"भारत में ऐसा कोई साहित्य और शास्त्र नहीं है जिसमें धर्म – दर्शन – अध्यात्म -, इतिहास, प्रकृति – लय – चेतना सभी कुछ एकाकार रूप में मौजूद न हो। आप एक को दूसरे से अलग नहीं कर सकते। अखंडता – समग्रता में ग्रहण भारतीय चिन्तन का मूल है। " (उत्तर आधुनिकतावाद की ओर नामक पुस्तक में संग्रहीत लेख - भारतीय काव्य शास्त्र और पश्चिमीकरण की चुनौती, पृष्ठ 206-7)

डाक्टर पलीवाल का यह कथन जितना काव्यशास्त्र के बारे में सच है उतना ही लोकसाहित्य और प्रवृत्यात्मक साहित्य तथा लोककलाओं के बारे में भी सच है। वस्तुत: इस कथन के माध्यम से उन्होने एक प्रकार से उन तत्वों की ओर इशारा किया है जिनसे भारतीय समाज की चिति या मूल चेतना का निर्माण हुआ है। जीवन को समग्रता में देखना इसका अपना वैशिष्ट्य है }

श्रीकृष्ण गीता के सातवें अध्याय में कहते हैं कि, "मैं सभी भूतों में इस तरह पिरोया हुआ हूँ जिस तरह मणियां एक सूत्र में पिरोई रहती हैं"- तो वे जीवन की समग्रता की ओर ही इशारा करते हुए दिखायी देते हैं -

मत्त: परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोक्तं सूत्रे मणिगणा इव॥
(गीता 7/7)

डा.वासुदेव शरण अग्रवाल का एक प्रसिद्ध लेख है – 'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव'। जिसमें वे अपनी तरह से जीवन के एकत्व की व्याख्या करते हैं। वे लिखते हैं –

"मूर्त रूपों की समष्टि ही जगत है। प्रजापति के दो रूप कहे गये हैं – मूर्त और

अमूर्त। अमूर्त का मूर्त में आना ही सृजन कार्य है, जो सृष्टि के आदि से चल रहा है। नाना रूप देश और काल में उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न हो चुके हैं, उत्पन्न हो रहे हैं एवं भविष्य में भी यही क्रम चलता रहेगा। ये जितने रूप हैं सब जिस स्रोत से प्रकट हुए हैं वह प्रतिरूप हैं। ये प्रत्येक रूप जिसकी अनुकृति हैं वह मूल रूप स्वयं अमूर्त रूप होते हुए भी सब रूपों की समष्टि है। ये नकल हैं ; वह जो असल है वह प्रतिरूप है। वह प्रतिरूप ही रूप - रूप में परिणत हो गया है। वह प्रतिरूप मूल प्रतिबिम्ब है जिसकी छाया से सब रूप बने हैं।

"वह प्रतिरूप एक है। उसमें नाना भाव नहीं। वह किसी एक रूप में तदाकार नहीं होता ; क्यों कि सभी रूपों के साथ उसका तादात्म्य है। वह मूल प्रतिरूप अमिट है। देश और काल से वंचित नहीं होता। नकल बनती है और बिगडती है। उस मूल या असल का सत्य रूप कभी परिवर्तित नहीं होता। असल एक होता है। उसकी नकल या नमूने अनेक हो सकते हैं। प्रतिरूप एक था, रूप अनेक हैं। प्रतिरूप अमृत था, रूप मर्त्य है। प्रतिरूप अपरिवर्तशील था रूप परिवर्तन है। उस एक रूप में सब रूपों का अंतर्भाव है।" (रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव - वासुदेव शरण अग्रवाल रचना - संचयन (हिंदी खंड), चयन एवं सम्पादन - कपिला वात्स्यायन, पृष्ठ 54)

चैतन्य का सर्वत्र वास तथा जीवन को समग्रता में देखने के कारण समष्टि के प्रति हमारा नज़रिया भोग से हट्कर सहयोग की ओर चला जाता है। भारत में पेड- पौधों, पशु पक्षी, नदी – पर्वत, कुंआ – बावडी, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, अग्नि के प्रति लोक में आदर का भाव इसी कारण से विकसित हुआ। लोक विश्वासों के कारण ही, लोक में, तुलसी जैसे छोटे से पौधे को हरि की पटरानी का दर्जा देकर – "तुलसी महारानी नमो नमो ... हर की पटरानी नमो नमो" जैसे प्रर्थनामय लोक गीत गाये गये। 'वटसावित्री' जैसे व्रत और उसमें बट वृक्ष की पूजा का विधान किया गया। लोक साहित्य की मर्मज्ञ डा. शांति जैन लिखती हैं –

"वट वृक्ष की पूजा लोक में बहुत प्रचलित है। कहा जाता है वट के मूल में ब्रह्मा, मध्य में विष्णु अग्र भाग में शिव और समग्र में सावित्री है। देवी सावित्री की स्तुति तो वेदों में भी गायी गयी है। इन की पूजा पहले ब्रह्मा जी ने की, फिर देवताओं ने, तदनंतर राजा अश्वपति ने। बाद में सभी वर्णों के लोग इनकी उपासना करने लगे।बट के सम्पूर्ण भाग में सावित्री देवी का अस्तित्व मानकर स्त्रियां बट वृक्ष को जल से सींचती हैं। फल फूल और अक्षत से पूजती हैं। तथा इस में सूत लपेटती हुई प्रदक्षिणा करती हैं। जहां वट वृक्ष की सुविधा नहीं होती वैसी जगहों पर घर की दीवार पर हल्दी और चंदन से वट वृक्ष बनाकर तीन दिन तक उसका पूजन होता है। " (लोक गीतों के संदर्भ और आयाम, डा. शांति जैन, पृष्ठ 335)

इसी तरह लोक में आम, पीपल, केला, नीम आदि अनेक पेड- पौधों की पूजा भिन्न भिन्न अवसरों पर करने का विधान लोक में प्रचलित रहा है। यहां लोक से मतलब भारतीय समाज रूपी लोक से है। जहां बच्चे के जन्म के बाद कुंआ पूजन उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड तथा हरियाणा जैसे कई प्रदेशों में प्रचलित रहा है।

किसी भी समाज की उच्चतम आत्मिक उपलब्धियों में उसकी आस्था और विश्वास को उस समाज की 'चिति' कह सकते हैं। सभ्यता के विकासक्रम में हम बहुत कुछ ज्ञान हासिल करते हैं। कुछ चीजें समय के साथ बदलती जाती हैं। उनमें ह्म निरंतर संशोधन करते जाते हैं। एक समय आता है जब सुधार की प्रक्रिया में विराम लग जाता है और मान लिया जाता है कि अब और सुधार की आवश्यकता नहीं है। जो हासिल कर लिया गया है वह समाज की उच्चतम उपलब्धि है और समाज जीवन के लिये सर्वतोभावेन उपयोगी है तब उसे समाज अपने दैनंदिन जीवन का हिस्सा बना लेता है।

वैशाख मास में शुक्ल पक्ष की तृतिया को अक्षय तृतिया के नाम से जानते हैं। लोक समाज में इसे अखतीज या अखातीज कहा जाता है। इस दिन घट, कुल्हड सीरा - फुलका से पूजे जाते हैं। राजस्थान में गेहूं, चना, तिल जौ, बाजरी, मूंग, और चावल की पूजा करके वर्षा की कामना की जाती है। भारत में, इसी

तरह, सृष्टि के विभिन्न घटक तत्वों के प्रति भिन्न भिन्न तरीके से अपना पूज्य भाव प्रदर्शित किया जाता है। यहां गंगा माता है। हिमालय देवता है। पवन और अग्नि भी देव हैं। समग्र दृष्टि का यही परिणाम रहा है कि शुभ अवसरों पर गाये जाने वाले लोक गीतों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गौरी, गणेश, से लेकर सूर्य – चंद्र, पृथवी, गाय, गंगा, स्थानीय देवी-देवता, तक सबको यहां तक कि अऊत (पितृ) को भी आमंत्रित किया जाता है। ब्रज भाषा का एक लोक गीत है – नौबत। जिसे पुत्र जन्म, विवाह या किसी भी शुभ अवसर पर मथुरा, अलीगढ और आस पास के ब्रज क्षेत्र में गाया जाता है और शुभ अवसरों पर उनके दरबार में भी ऐसे ही खुशी की नौबत बजने की कल्पना की जाती है जैसे हमारे घरों में बजती है। –

फूल रई ऐ फुलवार नौबत बाज रई ऐ।
धरती मैया के दरबार नौबत बाज रई ऐ।
बिरमा, बिष्नू के दरबार नौबत बज रई ऐ ॥

बिहार में शादी के समय 'पितर नेवतन' के गीत होते हैं। इन में अपने पितरों को निमंत्रण दिया जाता है। डा. शांति जैन ने अपनी पुस्तक में इस पूरी प्रक्रिया का वर्णन किया है। वे लिखती हैं –

"विवाह संस्कार की इस विधि में बारात के दिन बहुत सवेरे चुपचाप दरवाजे से मिट्टी कोढी जाती है। वह मिट्टि देवता के पास रखी जाती है। फिर अरवा चावल धोकर देवता के पास सिल रखी जाती है। उस पर सभी देवताओं के नाम से चावल रखा जाता है। अग्नि, सांप, बिच्छु, आदि सभी जीव – जन्तुओं के नाम का चावल रखा जाता है। फिर एक सुपारी लेकर बारी बारी से नाम लेकर एक चावल से दूसरे पर रखते हुए न्योता दिया जाता है। उस चावल को किसी बरतन में हटा दिया जाता है। अपने घर के पितरों को उसी विधि से न्योंता जाता है। फिर एक एक करके औरतें उस चावल को धीरे धीरे पीसती हैं। पिसे हुए चावल को एक मिट्टी के बरतन में उठाकर बंद कर दिया जाता है। औरतों को फिर कचवनी (कच्चे चावल की गोली) और चने की दाल आंचल में दी जाती है। यज्ञ में कहीं कहीं पान सुपारी भेज कर देवताओं को और कुल देवताओं को निमंत्रित करने की प्रथा है –

पांचहि पनवा के कोंपड सरगे जे बाडे
बरहम बाबा उनहुं के नेवतब हे
उनहिं सरीखे कवन देइ, उनहुं के नेवतब हे

(यानि जो स्वर्ग में विराजते हैं ऐसे ब्रह्म देव को पान की पांच कोपलें भेज कर निमंत्रित करूंगी। उनके सरीखे और भी जो देवता स्वर्ग में होंगे उन्हें भी न्यौता भेजूंगी।)

डा. जैन ने एक गीत का उल्लेख किया है जिसमें एक हज्जाम को सोने की सुपारी देकर चारों धाम के देवताओं को न्योता भेजने का उल्लेख है। इस गीत में गया के गदाधर भगवान को, वीर हनुमान को, गंगा मैया को, श्री जगन्नाथ जी को, धरती के शेषनाग को न्योतने के लिये कहा गया है। इतना ही नहीं तो इस निमंत्रण को पाकर सभी देवता यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये आते भी हैं –

वेदों, उपनिषदों, पुराणों, गीता, भागवत, रामायण आदि ग्रंथों के इसी ज्ञान को लोक अपनी तरह से ग्रहण करता है। अपने जीवन व्यवहार, रीति रिवाज, तीज त्योहार आदि में इन अवस्थापनाओं को दोहराता है। आने वाली संततियों को अपने नये अनुभवों और अनुसंधानों के निष्कर्ष के साथ सौंपता है।

लेहु हजाम सुबरन कसैरिया नेवतियो
लख चारो धाम हे
गया से नेवतहि गजाधर नेवतहि
नेवतिह वीर हनुमान हे |
गंगा में नेवतिह गंगा मैया नेवतिह
नेवतिह सिरी जगन्नाथ हे।
धरती से नेवतहि सेसरनाथ हे।
गया से अयलन गजाधर अयलन
अयलन सिरी जगरनाथ हे।
गंगा से गंगा मैया अयलन
अयलन वीर हनुमान हे
धरती से अयलन सेसरनाथ हे।

निमाड क्षेत्र में निमंत्रण देने को 'रुखडी न्यौतना' कहते हैं। ऐसे ही एक गीत में, स्वर्ग में विराज रहे पूर्वजों को निमंत्रित करने के लिये गिद्धनी को भेजने का जिक्र मिलता है –

सरग भवंती हो गिरधरणी
एक संदेशों लइ जाव
सरग का मोठा जी दाजी सी यौं कयजे
तुम घर नातणी को याव

(हे स्वर्ग तक विचरण करने वाली गिद्धनी तुम हमारा एक संदेश लेकर जाओ। वहाँ स्वर्ग में हमारे मोठा आजा रहते हैं, उन्हें यह संदेशा देना कि तुम्हारे घर नातिन का विवाह है।)

और पूर्वज उत्तर में अपने न आने की विवशता बतलाते हुए कहते हैं –

जेम सर ओम सार जो
हमरो ते आवणो नी होय

यानी तुम्हारा कार्य जिस विधि हो उस विधि से निबटा लेना। हमारा आना नहीं हो पाएगा।

वस्तुत: 'चिति' या 'सामूहिक चेतना' समाज विशेष की सृष्टि के विभिन्न घटक तत्वों के प्रति उसकी सजगता और संवेदनशीलता के स्तर को उद्घाटित करती है। भारतीय समाज, खास कर हिंदू समाज, की सामूहिक चेतना में सजगता और सम्वेदनशीलता का फैलाव सृष्टि के कण कण तक दिखाई देता है क्योंकि भगवान ने स्वयं कहा है कि वे सृष्टि के कण कण में इस तरह पिरोये हुए हैं जैसे माला की मणियों में सूत्र पिरोया रहता है। भारत का लोक समाज गीता के इस कथन में विश्वास करता है। हम जानते हैं कि लोक साहित्य लोक द्वारा रचा जाता है और उसमें लोक की सामूहिक चेतना को ही अभिव्यक्ति मिलती है। यही उसका वैशिष्ट्य है।

• • •

लेखक पूर्व उपनिदेशक, आकाशवाणी रहे हैं।

लोक-साहित्य के द्वारा लोक-शिक्षण

– डॉ. रमेश तिवारी

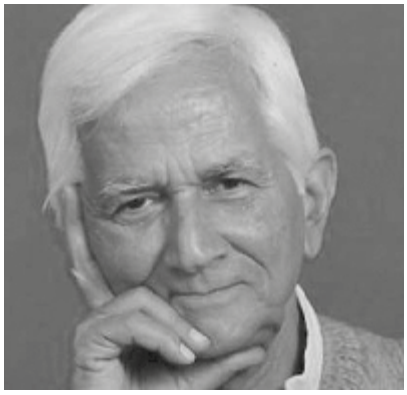

भारत जैसे विशाल देश में जहाँ तीन कोस पर पानी और बानी बदलने का जिक्र अक्सर सुना-पढ़ा जाता है, लोक की स्थानीयता वृहद् परिप्रेक्ष्य में कभी-कभार चुनौती भी पेश करती है। बावजूद इसके जो लोक की जुबान पर कहा-सुना जाता है, हूबहू वही लोक-साहित्य में पिरोया जाता है। यह सर्वविदित है कि कहानी मनुष्य के संवाद की एक प्राचीन विधा है।

लोक का साहित्य ही लोक-साहित्य है। यह इस अर्थ में विशेष है कि इसकी बुनावट में शास्त्रीय पद्धतियों के मुकाबले लोक जीवन की सोंधी सुगंध का समावेश होता है। सहजता, स्वाभाविकता, सरसता इसकी कसौटी है। हालाँकि भारत जैसे विशाल देश में जहाँ तीन कोस पर पानी और बानी बदलने का जिक्र अक्सर सुना-पढ़ा जाता है, लोक की स्थानीयता वृहद् परिप्रेक्ष्य में कभी-कभार चुनौती भी पेश करती है। बावजूद इसके जो लोक की जुबान पर कहा-सुना जाता है, हूबहू वही लोक-साहित्य में पिरोया जाता है। यह सर्वविदित है कि कहानी मनुष्य के संवाद की एक प्राचीन विधा है। इसलिए लोक-साहित्य में कहानी विधा की मौजूदगी दिखाई देती है। आज चूँकि छपाई की सुविधा हमारे समाज में सहज उपलब्ध है, इसलिए लोक कथाएँ भी साहित्यकारों द्वारा लिपिबद्ध कर प्रस्तुत करने की सुविधा है। इस संदर्भ में मार्कंडेय की कहानियों का अध्ययन प्रासंगिक है।

मार्कंडेय आधुनिक साहित्य के विचार-दृष्टिसंपन्न कहानीकार हैं। इनकी कहानियों में लोक-जीवन अपने वास्तविक रूप में दिखाई पड़ता है। कहानियों का अध्ययन करते हुए मैं संदर्भ के रूप में दो कहानियों 'गुलरा के बाबा' और 'हंसा जाई अकेला' का उल्लेख विशेष रूप से कर रहा हूँ। इसके पूर्व यदि उनके समय पर विचार करें तो हम देखते हैं कि मार्कंडेय के रचना-समय एवं साहित्यिक प्रचलन का बहुवचन पत्रिका के अंक-24 में बखूबी उल्लेख किया गया है, "पिछली शताब्दी के छठे दशक में, जब तथाकथित नयी कहानी अनुभववाद को प्रश्रय देते हुए 'भोगे हुए यथार्थ'में रमी हुई थी तब मार्कंडेय जैसे कुछ ही रचनाकार थे, जो समाज के श्रमजीवी तबके, खासकर गाँव-देहात के लोगों के जीवन के दुःख-सुख और उनके संघर्षों की गाथा लिख रहे थे। गाँव को अपनी कहानियों में जिन्दा रखना मानो उनकी रचनाधर्मिता का संकल्प था।"[1] मार्कंडेय के समय को परिभाषित करते हुए डॉ. खगेन्द्र ठाकुर ने भी लिखा है, "मार्कण्डेय उस युग में हुए जब देश आजाद तो हो गया था, जमींदारी उन्मूलन भी हो गया था लेकिन समाज का ढाँचा तो नहीं बदला। मार्कंडेय समाज को तो पहचान ही रहे थे, इसलिए उसकी असंगतियों को अपनी रचना में जगह देने की कोशिश कर रहे थे।"[2]

गुलरा के बाबा मार्कंडेय की पहली बहुचर्चित कहानी है। गाँव का एक बूढ़ा व्यक्ति बगीचे व अपने सरपत की रखवाली करता है। उसके शारीरिक सौष्ठव और पुरुषार्थी अतीत की कथा है 'गुलरा के बाबा'। बाबा की शारीरिक देहयष्टि का वर्णन चित्रात्मक है। "पूरे पचहथे जवान, भींट ऐसी छाती और हाथी की सूंड जैसे हाथ, बड़ी-बड़ी तेज ऑखें; लोग हनुमान कहते थे बाबा को, हनुमान!मेले-ठेले में अपने पिता गंजन सिंह के लिए रास्ता बनाने का काम बाबा ही करते थे। बड़ी-बड़ी भीड़ को पानी की काई की तरह इधर-उधर कर देना उनके लिए कोई विशेष बात न थी। बखरी में खाने घुसते समय बिटियों-पतोहुओं को जता देना तो जरूरी होता था न! बाबा दालान ही में से खाँसते और सारी बखरियों के कुत्ते मारे डर के भाग कर बाहर हो जाते। "[3] यहाँ 'मेले-ठेले' प्रयोग शास्त्रीय दृष्टि से उचित हो न हो, लोकभाषा में पूरी तरह प्रचलित है। बाबा कहानी के आरंभ में पहलवान चैतू को सरपत काटने से मना करते हैं।

चैतू पहलवान ने बनारस के मशहूर झग्गा पहलवान को दो मिनट में पटकनी दे दी थी। संभवतः इसीलिए उसे अपनी ताकत का गुमान है। बाबा इसे समझते हुए चैतू को चुनौती देते हैं–"अपने दो-एक संगी-साथियों और बूढ़-पुरनियों को भी बुलाए आना–यहीं; यदि तुम मेरा गत्ता टेढ़ा कर दोगे, तो मैं कभी जबान नहीं खोलूँगा और यदि नहीं, तो तुम कल से यहाँ दिखाई न पड़ना!"[4] इन वाक्यों में लोक की सोंधी खुशबू है। चैतू को भी अपनी

पहलवानी का गुमान है। वह अगले दिन अपने लोगों और तमाशाइयों के साथ बाबा को बुजुर्ग और कमजोर जानकर परास्त करने आता है। बाबा पुराने खिलाड़ी थे। चैतू को परास्त करते उन्हें देर नहीं लगती। यही बाबा जब कहानी में आगे भाई देवी सिंह से सुनते हैं कि चैतुआ की टांग टूट गयी तो रात के अँधेरे में दवा-दारू के साथ पैदल जाते हैं चैतू के घर। बाबा हड्डियाँ बिठाने के माहिर थे। जाकर हड्डियाँ बिठाते हैं। चैतू की माँ, बीवी और स्वयं चैतू बाबा की सदाशयता देखकर रो पड़ते हैं। बाबा चैतू को दिलासा देते हैं। बखरी का ओसार और छप्पर की हालत देखकर अगली सुबह पचीस मजदूरों को लगाकर सरपत की कटाई कराते नजर आते हैं। बखरी, ओसार, छप्पर आदि से ही लोक-साहित्य जन्म लेता है। जब सुखई पूछता है, "क्या होगी सरपत बाबा?" तो बाबा जवाब देते हैं "चैतुआ की छान्ह टूट गयी है रे!"[5] बिना लोक का हिस्सा बने आप साहित्य में छान्ह का समावेश नहीं कर सकते। इस कहानी के द्वारा मार्कंडेय ने ग्रामीण लोक जीवन की सहज-सरल-सरस और संघर्षरत जिंदगी के जीवन मूल्यों को दिखाने की कोशिश की है।

ये वही गुलरा के बाबा हैं जिनके शारीरिक सौंदर्य पर मोहित और वासना से युक्त चमेली भी उनके पौरुष को जीत नहीं पाती। वह अपने रूप-लावण्य का इस्तेमाल और प्रदर्शन कर बाबा को परास्त करने की बहुत कोशिश करती है किन्तु पराजित होती है। कहानीकार बाबा की चारित्रिक दृढ़ता का संकेत देते हुए कहता है "उनके तीसरा नेत्र नहीं था वरना शंकर की तरह आज काम को जला देने की ठान लेते, पर चमेलिया स्त्री थी, स्त्री पर हाथ उठाना? यह बाबा से नहीं हो सकता था। "[6] बाबा चमेली की इस कामलोलुपता को देखकर बस इतना ही कहते हैं "जा चमेलिया तेरी आँखों का दोष मिट जाएगा। "[7] और चमेलिया उसी साल अंधी हो जाती है।

सवाल यह नहीं है कि यह सत्यकथा है या नहीं। सवाल यह है कि यथार्थ और कल्पना के समावेश से रचित यह कहानी लोक को, पाठक को सकारात्मक दिशा देती है या नहीं? मार्कंडेय ग्रामीण सामाजिक जीवन की रसमयता में पाठकों को आकंठ डूब जाने के लिए उपयुक्त माहौल बनाते हैं। इस कहानी में भी ऐसे क्षण मिलते हैं जब फागुन के चित्रण और फागुन के प्रभाव से बच्चे, बूढ़े जवान पर उसकी प्रतिक्रिया बड़ी ही सरस ढंग से दिखाई जाती है। "फागुन के दूसरे पखवारे के थोड़े ही दिन बाकी थे – दिन को सुनहली धूप, शाम को अबीरी आकाश और रात को रुपहली, टहकी चाँदनी – खलिहान जौ-गेहूँ के डांठ से खचाखच भरे हुए। हवा भी चिबोला करती है न!बकरीदिया ठाकुर के घर से नह काटकर लौट रही थी–फगुनहट का झोंका आया और आँचल उड़ाकर चला गया–शर्मा गयी बकरीदा!इसमें क्या बात है जी, फागुन में बाबा देवर लागें!"[8] इस प्रकार की प्रस्तुतियों से ऐसा लगता है जैसे हमारी आँखों के सामने एक चलचित्र-सा चल रहा है।

सवाल यह नहीं है कि यह सत्यकथा है या नहीं। सवाल यह है कि यथार्थ और कल्पना के समावेश से रचित यह कहानी लोक को, पाठक को सकारात्मक दिशा देती है या नहीं? मार्कंडेय ग्रामीण सामाजिक जीवन की रसमयता में पाठकों को आकंठ डूब जाने के लिए उपयुक्त माहौल बनाते हैं। इस कहानी में भी ऐसे क्षण मिलते हैं जब फागुन के चित्रण और फागुन के प्रभाव से बच्चे, बूढ़े जवान पर उसकी प्रतिक्रिया बड़ी ही सरस ढंग से दिखाई जाती है।

दूसरी कहानी 'हंसा जाई अकेला' के प्रकाशन की दृष्टि से बहुवचन अंक-24 में प्रकाशित यह पंक्ति उल्लेखनीय है। "'हंसा जाई अकेला''कहानी'पत्रिका के जनवरी, 1956 के नववर्षांक में प्रकाशित हुई थी। "[9] इस कहानी में गाँव का जीवन है, सहजता है, सरलता है, अक्खड़ता है, राग-अनुराग है। हंसा कथानायक है। हंसा नामक पात्र के इर्द-गिर्द ही पूरी कथा बुनी गयी है। "हंसा जाई अकेला, ई देहिया ना रही। / मल ले, धो ले, नहा ले, खा ले/ करना हो सो कर ले, / ई देहिया..."[10] जीवन की क्षणभंगुरता जो कभी ज्ञानमार्गी साहित्यकारों के रचना-सृजन का केंद्रीय भाव रहा है और भारतीय लोक में बहुत गहरे बैठ गया है, हंसा के इस गीत का मूल भाव है। रचनाकार ने इसी जीवन-दर्शन पर आधारित चरित्र है हंसा। स्वभाव से अलमस्त और फक्कड़। गाँव में रतौंधी आम बीमारी है। हंसा दादा भी रतौंधी से ग्रस्त हैं। रास्ते में ठोकर लगी तो जो सामने था उसे पकड़ लिए फिर स्पर्श से यह अहसास हुआ कि जिसको पकड़े वो तो स्त्री है, मेहरारू है। इतने में उस स्त्री के घर के बूढ़े की लाठी पड़ी तो सब छोड़-छाड़ कर जान बचाके भाग लिए हंसा और उनके साथी।

अब जब वहाँ से सही-सलामत बच आए हैं तो सब दादा से बातें करते हुए मजे ले रहे हैं, हँसी-ठट्ठा कर रहे हैं। मगनू कहता है "सरऊ, सांड हो रहे हो, अब मरद-मेहरारू में भी तुम्हें भेद नहीं दिखाई पड़ता?"हंसा जवाब देता है "नाहीं, भाय, जब ठोकर खाकर गिरने को हुए न, मैंने सहारे के लिए उसे पकड़ लिया। फिर जो मालूम हुआ, तो हकबका गया। तभी बुढ़वा ने एक लाठी जमा दी। खैर कहो निकल भागा। "[11] इस भागमभाग में हंसा के पैरों में झरबेरी के काँटे चुभ गए हैं, उसकी किसी को चिंता नहीं है। मगनू अलग ही मजे ले रहा है वह कहता है "चलो मेहरारू तो छू लिया, ससुरे की किस्मत में लिखी तो है नहीं। "[12] यानी यह वह समाज है जहाँ औरत का स्पर्श भी एक महत्वपूर्ण घटना की तरह देखा जाता है। इसके बरक्स आप महानगरीय भागमभाग की जिंदगी देखें तो पता चलेगा कि यहाँ क्या स्त्री, क्या पुरुष, सब अपने गंतव्य की ओर भागे जा रहे हैं। और इस धक्कामुक्की को ऐसी सामाजिक स्वीकृति मिल गयी है कि कोई

पलटकर देखता भी नहीं है। गाँव में सहजता भरा जीवन है, महानगर में व्यस्तता भरा।

हंसा के शारीरिक सौष्ठव का चित्रण करते हुए लेखक लिखता है "उसे लोग हंसा कहते हैं। ...उसके भारी चेहरे में मटर-सी ऑंखें और आलू-सी नाक, उसके व्यक्तित्व के विस्तार को बहुत सीमित कर देती हैं। सीने पर उगे हुए बाल, किसी भींट पर उगी हुई घास का बोध कराते हैं। घुटने तक की धोती और मारकीन का दुगजी गमछा उसका पहनावा है। वैसे उसके पास एक दोहरा कुरता भी है, पर वह मोके-झोंके या ठारी के दिनों में ही निकालता है। कुरता पहनकर निकलने पर, गाँव के लड़के उसी तरह उसका पीछा करने लगते हैं, जैसे किसी भालू का नाच दिखानेवाले मदारी का। "हंसा को पूरे वस्त्रों में देख बच्चे कहते हैं, "हंसा दादा दुलहा बने हैं, दुलहा। " हंसा बच्चों की ख़ुशी में ही खुश रहता है, वह कभी इनका बुरा नहीं मानता। वह बच्चों के बार-बार कहने पर अपने मुक्त कंठ से गाना शरू करता है "हंसा जाई अकेला, ई देहिया ना रही..."[13]

देहात के लोकजीवन में एक पंक्ति कही जाती है 'बिन घरनी घर भूत का डेरा'। वही हंसा के लिए भी कही जाती है किंतु प्रकारांतर से। "इतनी खेत-बारी ऐसा घर-दुआर, पर एक मेहरारू के बिना बिलल्ला की तरह घूमता रहता है। औरत घर में न हो तो आदमी बिलल्ला की तरह हो जाता है। यही गाँव के लोगों की मान्यता है। हंसा की खासियत यह है कि वह "गालियों का बुरा नहीं मानता, वह बहुत सारे काम गाली सुनने के लिए ही करता है।"[14] हंसा के शरीर से काँटा बिनाते देख भौजी मजाक करते हुए कहती है "कहीं डड़वार डाके रहे का बबुआ, जो काँटा बिनाय रहा है। "[15] लेकिन हंसा की प्रकृति वाले लोग तो ऐसे ही मलंग बने फिरते रहते हैं। सो हंसा भी वैसे ही नजर आता है।

हंसा को 'गन्ही महत्मा'की बात में बड़ा मजा आता है। यही हंसा गाँधी जी का संदेश बांचने वाली सुशीला जी के ठहरने के सवाल पर निःसंकोच कहता है –"आने पर देख लेंगे। अपना घर तो खाली ही है। खाने की भी चिंता न करो। घी है ही पूड़ी-उड़ी बन जाएगी। "[16] सुशीला जी को वह उनके साल भर पहले सुने गीत में याद रखे है। 'जागा हो बलमुआ गाँधी टोपी वाले आय गइलैं। "[17] यही सुशीला जी जब उसके घर में रहती हैं तो स्त्री देह की सुगंध से वह प्रफुल्लित हो जाता है और सोचता है कि "एक औरत के रहने से घर कैसा हो जाता है। "[18] अँधेरे में हंसा के गिर जाने पर सुशीला उसे उठाती है और यह जानकर कि उसे रतौंधी है स्नेहवश अपने कंधे पर हंसा के हाथ रख चल पड़ती है। इस समय के प्रसंग का वर्णन लेखक ने काव्यात्मक अंदाज में किया है। सुशीला के स्पर्श मात्र का वर्णन देखिये "घुमची की तरह ऑंखें मुलमुला कर हंसा हँसता है। उसके रोएँ भभर आते हैं। उसका कलेजा धड़कने लगता है। कहार कहता है, "हंसा दादा को रतौन्ही है, रतौन्ही। " "रतौंधी!तो बताओ, कहाँ है घी? मैं चलती हूँ, साथ। " मेनका के कंधे पर विश्वामित्र के उलम्ब बाहु। ...दोनों आंगन पार करते बारिश की बूंदों में भीगते हैं। पीछे से आवाज आती है लालटेन दूँ ?"एक ही तो है, रहने दो, काम चल जाएगा। "...अँधेरे में जैसे आँख, तैसे बेआँख। दोनों को सहारा चाहिए। कभी वह लुढ़कता है, कभी वह लुढ़कती हैं और दोनों दृष्टिवान हो जाते हैं- दिव्यदृष्टिवान। "[19] हिन्दी कथा-साहित्य का अपने तरह का यह अनूठा वर्णन है जिसकी खूबसूरती उसके शब्दों के चयन और संप्रेषण में है। यही मार्कंडेय की अभिव्यंजना का कमाल है।

इस घटना पर सबसे पहली प्रतिक्रिया मगनू सिंह के शब्दों में आती है। "लग गयी पार हंसवा की नाव। " दूर हंसा का गीत सुनाई देता है। "जग बेल्हमौलू जुलुम कइलू ननदी... जग.../ बरम्हा के मोहलू, बिसुनू के मोहलू / सिव जी के नचिया नचौलू मोरी ननदी... जग...। "[20] लोकगीतों का ऐसा प्रसंगानुकूल प्रयोग मार्कंडेय के अतिरिक्त रेणु में दिखाई पड़ता है। गांधीवादी सुशीला के साथ अंतरंग क्षणों को जीने के बाद जब बाबा कहते हैं "हंसा। जहाँ पहुँच गए हो, वहाँ से वापस नहीं आना होगा। " हंसा जवाब देता है "भइया, बोटी-बोटी कट जाउँगा, यह कैसे हो सकता है!"[21] और बेफिक्र रहनेवाला हंसा खुद स्वयंसेवक और कांग्रेस का प्रचारक बन जाता है।

देहात के लोकजीवन में एक पंक्ति कही जाती है 'बिन घरनी घर भूत का डेरा'। वही हंसा के लिए भी कही जाती है किंतु प्रकारांतर से। "इतनी खेत-बारी ऐसा घर-दुआर, पर एक मेहरारू के बिना बिलल्ला की तरह घूमता रहता है। औरत घर में न हो तो आदमी बिलल्ला की तरह हो जाता है। यही गाँव के लोगों की मान्यता है। हंसा की खासियत यह है कि वह "गालियों का बुरा नहीं मानता, वह बहुत सारे काम गाली सुनने के लिए ही करता है।" हंसा के शरीर से काँटा बिनाते देख भौजी मजाक करते हुए कहती है "कहीं डड़वार डाके रहे का बबुआ, जो काँटा बिनाय रहा है।" लेकिन हंसा की प्रकृति वाले लोग तो ऐसे ही मलंग बने फिरते रहते हैं। सो हंसा भी वैसे ही नजर आता है।

गाँवों में जाति का प्रभाव बहुत आम है। चुनाव में जातिगत आधार पर भी वोट माँगे जाते हैं। "गाँव में चुनाव की धूम मची थी। बाबू साहब बभनौटी के साथ कांग्रेस का विरोध कर रहे थे। उनके पेड़ों पर इश्तिहार टांग दिये जाते, तो उनके आदमी उखाड़ देते। किसान बुलवाए जाते, उन्हें धमकाया जाता। खेत निकल लेने की, जानवरों को हँकवा देने की बातें कही जातीं और हंसा-सुशीला की कहानी का प्रचार किया जाता, -भ्रष्ट हैं सब!इनका कोई दीन धरम नहीं है। गन्ही तो तेली है!..."[22] इसका जवाब भी दूसरी पार्टी देती है। "बाबू साहब जो कहें मान लो! पूड़ी-मिठाई राजा

के तम्मू में खाओ!खरचा खोराक बाबू साहब से लो और मोटर में बैठो!लेकिन कँगरेस का बक्सा याद रखो!वहाँ जा कर, खाना-पीना भूल जाओ? कँगरेस तुम्हारे राज के लिए लड़ती है। बेदखली बंद होगी। छुआछूत बंद होगा। जनता का राज होगा। "[23] जनता भी हंसा और सुशीला जी के साथ-साथ कांग्रेस को ही विजयी बनाती है।

गाँव के जनजीवन में रामलीला का चलन भी बहुत पुराना है। इसका भी सरस उदाहरण कहानी में मिलता है। "बाबू साहब की पार्टी के राम-लक्ष्मण बने थे, पर रावण बनने वाला कोई नहीं मिलता था। लोग कहते, रावण बननेवाला मर जाता है। कोई तैयार न होता था।" हंसा स्वयं रावण बन जाता है और चुनाव के अवसर पर एक प्रेरक भाषण दे डालता है "भाइयो! राम राजा था। देखो, छोटी जात का कोई कभी राम नहीं बनने पाता है। राक्षस सब बनते हैं।

गाँव के जनजीवन में रामलीला का चलन भी बहुत पुराना है। इसका भी सरस उदाहरण कहानी में मिलता है। "बाबू साहब की पार्टी के राम-लक्ष्मण बने थे, पर रावण बनने वाला कोई नहीं मिलता था। लोग कहते, रावण बननेवाला मर जाता है। कोई तैयार न होता था। " हंसा स्वयं रावण बन जाता है और चुनाव के अवसर पर एक प्रेरक भाषण दे डालता है "भाइयो!राम राजा था। देखो, छोटी जात का कोई कभी राम नहीं बनने पाता है। राक्षस सब बनते हैं। बिरहीम, कालू, भुलई, फेद्दर सभी की पालटी है, हमारी। यह जनता की लड़ाई है। बोल दो धावा। "[24] गन्ही महतमा और हंसा दादा की जय बोलते हुए लोग राम के लिए खरीदी गयी मालाएँ हंसा के ही ऊपर फेंकने लगते हैं।

लेखक ने प्रगतिशील मूल्यों को परंपरागत मूल्यों के आमने-सामने खड़ा कर दिया है यहाँ। राम इस प्रसंग में अकेले रह जाते हैं। सुशीला जी की अनथक मेहनत विरोधियों की लाख अड़ंगेबाजी के बावजूद उन्हें विजयी बनाती है। चुनाव जीतने के बाद विरोधी पार्टी के लोग उनसे माफ़ी मांगने आते हैं किंतु वे उदासीन रहती हैं। आखिरकार निमोनिया के प्रभाववश उनकी मृत्यु हो जाती है, और हंसा विक्षिप्त-सा हो जाता है। अब कभी-कभी उसका स्वर 'हंसा जाई अकेला'गीत गाते हुए देखा-सुना जाता है।

यह कहानी राग-अनुरागयुक्त सहजता के चरम और वियोग के परम क्षणों को अभिव्यक्त करती हुई पाठकों को सन्नाटे में अकेले छोड़ जाती है। ठीक उसी तरह जैसे मंटो की कहानी 'टोबा टेक सिंह'। सिद्धांत और संघर्षशील चेतना के निरंतर एकाकी होने और उससे उत्पन्न बेचैनी से पाठकों का साक्षात्कार कराना संभवतः इस कहानी के रचयिता का अभीष्ट है। मधुरेश ने इस कहानी के संदर्भ में लिखा है, "अपने रोमानी आग्रह के बावजूद इस कहानी(हंसा जाई अकेला)का महत्व इसलिए है क्योंकि यह सारे परिवेशगत और सामाजिक संदर्भों के बीच आदमी के अकेलेपन की पीड़ा को उभारती है। "[25] अपनी कथायात्रा पर प्रकाश डालते हुए मार्कंडेय का यह कथन उचित प्रतीत होता है, "सोए हुए रुढ़िग्रस्त समाज में जहाँ हीनता, अपमान और यातना मनुष्य की नियति बना दिया गया हो, वास्तविकवादी कथाकार की सबसे पहली मुठभेड़ इसी दैवी सामाजिक ढाँचे से होती है। "[26] ग्रामीण लोकजीवन की सहजता, स्वाभाविकता, सरसता, संघर्ष, भाषा, संस्कृति इत्यादि को जानने-समझने के लिए मार्कंडेय की कहानियों का अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक है। लोक-साहित्य को कहानी विधा के द्वारा अभिव्यक्त करने और समझने का यह एक उल्लेखनीय उदाहरण है।

संदर्भ :

1. बहुवचन-24, पृ.9, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी वि.वि, वर्धा द्वारा प्रकाशित पत्रिका
2. कथा, अंक 15, पृष्ठ 246
3. मार्कंडेय की श्रेष्ठ कहानियाँ, सं अनुज, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, सं.2016, पृ.108
4. वही, पृ. 109
5. वही, पृ. 114
6. वही, पृ. 111
7. वही
8. वही, पृ. 109
9. बहुवचन 24, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी वि.वि., वर्धा द्वारा प्रकाशित पत्रिका, पृ.16
10. http://gadyakosh.org/gk/हंसा_जाई_अकेला_/_मार्कण्डेय
11. वही
12. वही
13. वही
14. वही
15. वही
16. वही
17. वही
18. वही
19. वही
20. वही
21. वही
22. वही
23. वही
24. वही
25. नई कहानी पुनर्विचार, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 2ए, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली, सं.1999, पृ.163
26. मार्कंडेय, मेरी कथायात्रा, लेख, कथा अंक-15 पृष्ठ 221

• • •

लेखक स्वतंत्र स्तंभकार हैं।

भारत व मॉरीशस की लोक-संस्कृतियों में अंतःसंबंध

– डॉ. अनीता शुक्ल*, सुश्री शिक्षा धनपत**

भारत व मॉरीशस में कुछ ऐसी समान संस्कृतियाँ तथा प्रथाएँ हैं जो आज तक दोनों राष्ट्रों में विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ; भारत व मॉरीशस में पूरे विधि-विधान के साथ निभाए जाने वाले सोलह-संस्कार, वर्षा के लिए मॉरीशस में 'हरपरौरी पूजा', भारत व मॉरीशस में वैदिक मंत्रों का पाठ, मॉरीशस व भारत में राम-कथाएँ, कालीमाई में देवी-देवताओं की पूजा, घरेलू नुस्खे, आदि। चूँकि हमारे पूर्वज भारत के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से आए, वे अपने साथ वहाँ की विरासत लेकर आए थे। अपनी वेश-भूषा, अपनी संस्कृति, अपने धार्मिक ग्रंथ (वेद, रामचरितमानस, भगवद गीता, तिरुक्कुरल), अपना खान-पान, आदि को अपने साथ लेकर वे मॉरीशस में मजदूरी करने आए थे।

ब्रिटिश राज्य के समय, 189 वर्ष पूर्व, 02 नवम्बर 1834 को कुछ मज़दूर भारत से मॉरीशस लाए गए थे। भारतीयों को यह बताकर मॉरीशस लाया गया था कि वहाँ पर पत्थर खोदकर सोना मिलेगा। भारत में गरीबी से जूझ रहे मज़दूर बहकावे में आकर 'एट्लैस' जहाज़ से मॉरीशस के लिए रवाना हुए थे और मॉरीशस में 'आप्रवासी घाट' पर अपना पहला कदम रखा था। इन लोगों को 'गिरमिटिया मज़दूर'[1] कहा जाता था। विशेष रूप से मद्रास, कोलकत्ता, बॉम्बे, उत्तर प्रदेश तथा बिहार के लोग बड़ी-बड़ी उम्मीदों तथा सपनों के साथ, मॉरीशस में बसने आए थे। इसी वजह से मॉरीशस में अधिकतम संख्या में भारतीय मूल के लोग दिखाई देते हैं। ब्रिटिशों का यह लक्ष्य था कि भारतीयों को मॉरीशस ले जाकर उनसे कृषि करवाया जाए ताकि मॉरीशस को एक कृषि प्रधान देश बनाया जा सके।

'यूनेस्को' के अनुसार विरासत इसी को कहते हैं जो हमें अपने पुरखों से प्राप्त हुई, जो हम अपने वर्तमान में जीते हैं और जिसको हम आने वाली पीढ़ी तक पहुँचाएँगे। विरासत दो प्रकार की होती हैं : मूर्त विरासत, अमूर्त विरासत। मूर्त विरासत अर्थात् जिसे देखा जा सकता है, उदाहरण के लिए मॉरीशस में 'आप्रवासी घाट' और भारत का 'ताज महल'। अमूर्त विरासत से तात्पर्य है जिसे न देखा जा सके, यथा संस्कृतियाँ, प्रथाएँ, परम्पराएँ। हमारे पूर्वजों ने अपने पुरखों से बहुत कुछ ग्रहण किया है। चाहे संस्कृति या परम्परा से संबंधित हो, चाहे प्रायोगिक। हालाँकि यह सच है कि आधुनिकता की अंधी दौड़ में हम अपनी संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं लेकिन अपनी सांस्कृतिक विरासत के बारे में लिखना, उसको सुरक्षित रखना तथा अपनी अगली पीढ़ी तक पहुँचाना हम सब की ज़िम्मेदारी है।

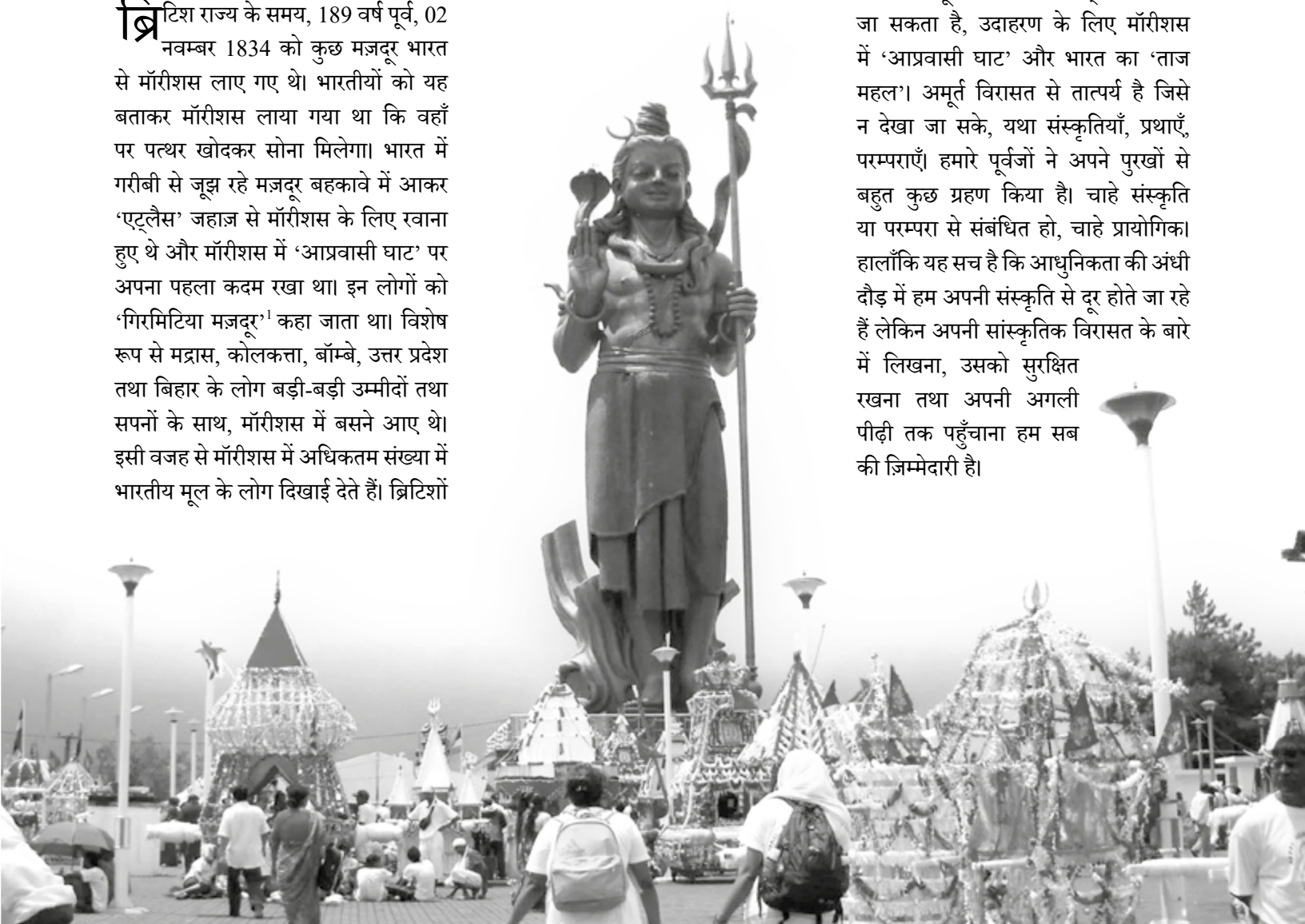

भारतीय प्रवासी के अंतर्गत मॉरीशस का एक अनोखा स्थान है क्योंकि मॉरीशस के 1.3 मिलियन[2] जनसंख्यामें से 68%[2] जनता भारतीय मूल की है। भारत व मॉरीशस में कुछ ऐसी समान संस्कृतियाँ तथा प्रथाएँ हैं जो आज तक दोनों राष्ट्रों में विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ; भारत व मॉरीशस में पूरे विधि-विधान के साथ निभाए जाने वाले सोलह-संस्कार, वर्षा के लिए मॉरीशस में 'हरपरौरीपूजा', भारत व मॉरीशस में वैदिक मंत्रों का पाठ, मॉरीशस व भारत में राम-कथाएँ, कालीमाई[4] में देवी-देवताओं की पूजा, घरेलू नुस्खे, आदि। चूँकि हमारे पूर्वज भारत के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से आए, वे अपने साथ वहाँ की विरासतलेकर आए थे। अपनी वेश-भूषा, अपनी संस्कृति, अपने धार्मिक ग्रंथ (वेद, रामचरितमानस, भगवद गीता, तिरुक्कुरल), अपना खान-पान, आदि को अपने साथ लेकर वे मॉरीशस में मज़दूरी करने आए थे। वे एक अनजान देश, अनजान जगह, अपनी भूमि से मीलों दूर रहने आ रहे थे जहाँ की परिस्थितियों, आदि से वे अनभिज्ञ थे। कहा जाता था कि ये लोग शाम को साथ में बैठकर समय बिताया करते थे, अपने-अपने मन का दर्द, अपनी पीड़ा आपस में बाँटा करते थे। विशिष्ट मौकों पर, वे अपने लोक-गीत गाया करते थे। हर एक अवसर का एक विशेष लोक-गीत था, एक विशेष पूजा थी, एक खास भोजन था।

भारत के निवासी प्रकृति में देवत्व की कल्पना करते हैं। दूसरे शब्दों में वे प्रकृति के साथ एक घनिष्ठ संबंध रखते हैं। ऋग्वेद (1/115/1) में इस तथ्य का उल्लेख है कि किस प्रकार प्रकृति में देवताओं का वास होता है:

"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।" अर्थात्, सूर्य सृष्टि की आत्मा है। (मोक्ष, 2019)

अतः यहाँ पर कहना समीचीन होगा कि यही कारण है कि आज तक वैदिक मंत्रों को महत्ता दी जाती है। प्राचीन भारत तथा मॉरीशस के लोग प्रकृति, पूजा-पाठ को बहुत महत्त्व दिया करते थे। आधुनिक समाज में इन चीज़ों को उसी प्रकार पनपते देखकर मन गदगद होता है। इससे स्पष्ट होता है कि संस्कृति में एक अस्पृश्य ऊर्जा है, एक अमिट ताकत है। दौड़ते समय के साथ भी जहाँ भारत में प्रकृति में देवत्व की कल्पना की जाती है, वही स्थिति मॉरीशस में भी अनुभूत है। मॉरीशस एक ऐसा देश है, जिसको विश्व-ख्यात अमेरिकी लेखक मार्क ट्वैन ने 'स्वर्ग टापू' की संज्ञा दीहै। इस देश ने हालाँकि पश्चिमी सभ्यता, रहन-सहन, खान-पान को अपनाया है, लेकिन यह अपनी जड़ों को पीछे न छोड़ने के लिए कटिबद्ध है। मॉरीशस के लोग, मॉरीशस की भूमि भारतीयता से ओतप्रोत है। भारत की ही तरह मॉरीशस बहुजातीय है, बहुसांस्कृतिक है, बहुभाषीय है। यही कारण है कि मॉरीशस को 'छोटा भारत' भी कहते हैं। उल्लेखनीय है कि इस आधुनिक समाज में इन सांस्कृतिक धरोहरों को बढ़ाने, इनको सुदृढ़ बनाने, इनको मज़बूत रखने तथा इनका संरक्षण करने का कार्य अभी तक हमारे दादा-दादी, नाना-नानी कर रहे हैं। युवकों की भागीदारी इसमें बहुत कम देखी जा रही है। सांस्कृतिक विकास एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अधिकांश पश्चिमी प्रभाव के कारण आज की पीढ़ी संस्कृतियों का भी पश्चिमीकरण कर रही है। अपने नए विचार, नई भावनाओं को जोड़कर कुछ ऐसे लोग हैं जो संस्कृतियों के संरक्षण में अपना भरपूर योगदान दे रहे हैं परन्तु कुछ ऐसे लोग भी हैं जो संस्कृति, पूजा-पाठ, आदि के नाम पर भजनों का 'रिमिक्स' कर रहे हैं, शिवरात्रि के अवसर पर 'काँवर' बनाकर 'गंगा-तालाब' तो जा रहे हैं लेकिन हाथ में सिगरेट लिए, पश्चिमी कपड़े पहनकर अपनी संस्कृति का तिरस्कार कर रहे हैं।

गिरमिटिया मज़दूर के साथ अगर कुछ चीज़ें सही सलामत मॉरीशस की धरती तक पहुँचीं तो वे हैं इनकी लोक-संस्कृति, इनके लोक गीत। 'सिद्धांत कौमुदी' में यह माना गया है कि 'लोक' शब्द की उत्पत्ति 'लोक दर्शने' धातु में 'धञ्' प्रत्यय जोड़ने से हुई है। इसका शाब्दिक अर्थ 'देखना' या 'अवलोकन करना' निकलता है। (कल्ला और महेश्वरी, 2017)

भारत में जितनी महत्ता लोक-संस्कृति को दी जाती है, उतनी ही सार्थकता मॉरीशस में भी दृष्टिगोचर होती है। शिशु-जन्म से लेकर विवाह-संस्कार तथा मृत्यु तक के लिए हमारी लोक-संस्कृति में एक विशेष रिवाज, पूजा तथा गीत अथवा भजन है। मॉरीशस में शिशु-जन्म के अवसर पर 'ललना' का आयोजन होता है। सबसे पहले शिशु के स्वागत व गृहप्रवेश हेतु हवन या कथा की जाती है। उस शुभावसर पर सभी रिश्तेदार व पड़ोस के लोग निमंत्रित होते हैं। रात को महिलाओं की एक टोली उत्साहपूर्वक 'ललना' करने आती है।

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोक परिष्कृत, रूचि-सम्पन्नतथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा सरल – सहज जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।" (NGBU, 2020)

डॉ. श्याम परमार ने 'लोक' की परिभाषा देते हुए कहा है कि "लोक का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत, साहित्य, आदि से युक्त होकर साधारण जन-समाज, जिसमें पूर्वसंचित परम्पराएँ, भावनाएँ, विश्वास और आदर्श सुरक्षित हैं तथा जिसमें भाषा और साहित्यगत सामग्री ही नहीं, अपितु अनेक विषयों के अनगढ़; किंतु ठोस रत्न छिपे हैं, के

अर्थ में होता है।" (NGBU, 2020)

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, "लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है। उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान-सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का स्वरूप है, - अर्वाचीन मानव के लिए सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री, सर्वभूतमाता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नए जीवन का अध्यात्मशास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है।" (NGBU, 2020)

अतः इन सभी के मतों को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि लोक से तात्पर्य है मनुष्य जीवन, रहन-सहन, सामाजिक व्यवहार, खान-पान, धर्म-संस्कृति, आदि।

'बेला फूले आधी रात' में देवेंद्र सत्यार्थी लिखते हैं, "लोक-वार्ता केवल अतीत की वस्तु हो, यह बात नहीं। अतीत से लेकर अब तक की समस्त बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक और सामाजिक गतिविधि का सम्पूर्ण इतिहास लोक-वार्ता में निहित है। इसके बिना देश के वास्तविक इतिहास का निर्माण असम्भव है।" (सत्यार्थी और चटर्जी, 1948) काल तथा स्थान के अनुकूल लोक भी परिवर्तित होता है। आधुनिकीकरण के साथ लोक का निरन्तर परिवर्तित होना स्वाभाविक है। लेकिन लोक-संस्कृति के केंद्रीय तत्व नहीं बदलते हैं। लोक की अभिव्यक्ति मौखिक होती है। लोक-साहित्य, लोक-गीत, लोक-संस्कृतियों का लिखित रूप मिलना लगभग असम्भव ही है। यह अलिखित होते हुए श्रुति-स्मृति परम्परा से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाया जाता है। लोक-साहित्य मुख्यतः व्यष्टि-भाव से हटकर समष्टि का भाव बनकर सामने आता है।

भारत में प्राचीन काल से यह माना जाता रहा है कि प्रकृति से जुड़ी सभी वस्तुओं में ईश्वर का वास है। देवी सरस्वती शिक्षा के लिए पूजी जाती हैं। गणेश भगवान को विघ्नहर्ता कहा जाता है और समस्याओं को दूर करने के लिए गणेश जी की आराधना होती है। लक्ष्मी माता कमल के फूल पर बैठी होती हैं। शिव की जटा से पानी की प्राप्ति होती है; तो जहाँ भी पानी बहता है, वहाँ महादेव की पूजा होती है। मॉरीशस में महाशिवरात्रि का पूरा माह वर्षामय होता है, दिसम्बर और जनवरी में जब अकाल पड़ता है तो 'हरपरौरीपूजा' सम्पन्न की जाती है। यह प्रथा बरसों से चलती आ रही है। वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो बारिशव सूखा मौसम-विज्ञान से जुड़ा होता है न कि संस्कृति से। लेकिन भारतीय दृष्टिकोण से प्रकृति को विज्ञान से अधिक दर्जा दिया जाता है। हमारे धार्मिक शास्त्रों में हर एक मंत्र में प्रकृति का उल्लेख है।

भारत में प्राचीन काल से यह माना जाता रहा है कि प्रकृति से जुड़ी सभी वस्तुओं में ईश्वर का वास है। लक्ष्मी माता कमल के फूल पर बैठी होती हैं। शिव की जटा से पानी की प्राप्ति होती है; तो जहाँ भी पानी बहता है, वहाँ महादेव की पूजा होती है। मॉरीशस में महाशिवरात्रि का पूरा माह वर्षामय होता है, दिसम्बर और जनवरी में जब अकाल पड़ता है तो 'हरपरौरी पूजा' सम्पन्न की जाती है। यह प्रथा बरसों से चलती आ रही है। वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो बारिश व सूखा मौसम-विज्ञान से जुड़ा होता है न कि संस्कृति से। लेकिन भारतीय दृष्टिकोण से प्रकृति को विज्ञान से अधिक दर्जा दिया जाता है। हमारे धार्मिक शास्त्रों में हर एक मंत्र में प्रकृति का उल्लेख है।

वास्तव में लोक-संस्कृति विशेष रूप से ग्रामीण अथवा कृषि वर्ग से उदित होकर समाज-दर-समाज में विकसित होती है। भारत के हरेक क्षेत्र की अपनी लोक-संस्कृतियाँ, लोक-गीत हैं। 'बेला फूले आधी रात' में देवेंद्र सत्यार्थी प्रस्तावना में कहते हैं कि "लोक-गीत के स्वर दूर से आते हैं। जाने ये स्वर कहाँ से फूट पड़ते हैं। युग-युग की पीड़ा-वेदना, युग-युग की हर्ष-श्री, रीति-नीति, प्रथा-गाथा, अचूकसहज रूढ़ि-वार्ता, भौगोलिक एवं वातावरण-निर्मित संस्कृत-परम्परा—ये सभी इन स्वरों में अपने नाम, धाम अथवा वंश आदि का परिचय देती प्रतीत होती है।" (सत्यार्थी और चटर्जी, 1948)हमारी लोक-संस्कृति में लोगों का भाव छिपा होता है, लोगों की व्यथाएँ, पीड़ाएँ तथा समस्याओं का समाधान भी प्राप्य हैं। अपने पुरखों से प्राप्त लोक-संस्कृति को हमें सम्भाल कर रखना चाहिए। हमारी लोक-संस्कृति में बहुत सारी चीज़ें हैं जो अब वैज्ञानिक विशेषज्ञों द्वारा प्रासंगिक कही जा रही हैं।

गिरमिटिया मज़दूर जब मॉरीशस आए

थे तो वे अनेक प्रतिबंधों के शिकार थे। यथा, उनको यहाँ पर विवाह करने का अधिकार नहीं था, न ज़मीन रखने की छूट थी, उनकी सन्तानों को शिक्षा से वंचित किया जाता था, यहाँ तक कि उनको अपनी भाषा में संपर्क करने का भी अधिकार नहीं था। ऐसी स्थितियों में अपनी अस्मिता, अपनी भाषा व अपनी संस्कृति को बचाए रखना उनके लिए अत्यंत ही लाज़मी था। मॉरीशस में 12 जून 1926 को हिंदी की पढ़ाई हेतु तिलक विद्यालय नाम पर एक सभा की स्थापना की गई थी जिसका आदर्श-वाक्य था: 'भाषा गई तो संस्कृति गई'[5]। 26 दिसम्बर 1935 को हिंदी प्रचारिणी सभा के नाम से संस्था का राष्ट्रीय पंजीकरण हुआ था। तब से लेकर आज तक मॉरीशसवासी इस नारे को साथ लिए भाषा व संस्कृति के अस्तित्व के लिए कार्यरत हैं। भारत में भी अंग्रेज़ शासक भारतीय भाषाओं व संस्कृतियों का विनाश कर इस देश को जीतना चाहते थे। उनकी यह मान्यता थी कि भारतीयों की सबसे बड़ी कमज़ोरी इनकी भाषा व संस्कृति ही है, इन दोनों को अगर समाप्त किया जाए तभी भारत को पूर्ण रूप से जीतना सम्भव होगा।

हमारी संस्कृति में पूरे विधि-विधान से बेटियों के हाथ पीले किए जाते हैं। 'हाथ पीला करना' एक मुहावरा है जो हमारी लोक-संस्कृति से उत्पन्न हुआ है। इसका शाब्दिक अर्थ है 'लड़की का विवाह करना'। इस मुहावरे को लोक से इसलिए जोड़ा जाता है क्योंकि हमारी भारतीय संस्कृति में विशेष रूप से हिंदू समाज में जब विवाह होता है तो हमें हल्दी लगाई जाती है जो कि पीले रंग की होती है।हमारे पिताजी हमारा 'कन्या-दान' करते हैं। इस पर 'बेला फूले आधी रात' पुस्तक में एक अत्यन्त मर्म-स्पर्शी लोक-गीत प्रस्तुत है:

"बाबा-बाबा गोहरावौं बाबा नाहीं जागैं
देत सुनर एक सेंनुर भइलू पराई..."

(सत्यार्थी और चटर्जी, 1948)

यहाँ पर बेटी भावुक होकर अपने पिताजी को बुला रही है कि देखिए पिताजी मेरी मांग में अब सिंदूर भरा जाएगा। मैं पराई हो रही हूँ। यह विशेष रूप से भारत व मॉरीशस की एक वास्तविक स्थिति है। अपनी बेटी को सुहागन बनते देख अभिभावक बहुत खुश होते हैं परन्तु दुखी भी होते हैं कि अब बेटी किसी और की बन कर जा रही है। इसी कारण शादियों को बड़े धूम-धाम और रीति-रिवाज़ के साथ सम्पन्न किया जाताहै।

भारतीय संस्कृति में धरती को मनुष्य की जननी की उपाधि दी गई है। धरती माँ स्नेह एवं करुणा से भरपूर हैं। हरेक कार्य के श्रीगणेश हेतु धरती माँ की आराधना की जाती है। यही वह भूमि है जो मनुष्य को जीवन दान देती है। इसी मिट्टी से हमें प्राणवायु (ऑक्सीजन) मिलती है, इसी भूमि से हमें अन्न की प्राप्ति होती है। भारत में महोली ग्राम का एक लोकगीत हमारी भूमि को समर्पित है जो बोआई के समय गाया जाता है:

"धरती माता ने हरयौ करयौ...
बिना बीज उपजायो खेत
बीज बच्यौसो सन्तन खायौ.."

(सत्यार्थी और चटर्जी, 1948)

इस गीत में कहा जा रहा है कि बोआई करते समय, बीज को चक्करदार गोलाई में डाला जाता है। एक चक्कर को 'फरा' और दूसरे को 'कूंड़' कहा जाता है। अंतिम 'कूंड़' तक पहुँचते हुए, यह गीत किसानों द्वारा गाया जाता था। प्राचीन समय में खेती करने के लिए आज जैसे यंत्र नहीं थे। उस काल में यह काम बैलों का था। अतः यह गीत उनके लिए भी समर्पित था। खेती के लिए पानी की आवश्यकता होती है, इसीलिए इस गीत में 'गंगा माई' और 'जमुना रानी' का भी ज़िक्र है। अंततः, इस गीत के माध्यम से किसान प्रकृति अथवा धरती माता को नमन कर रहे हैं और धन्यवाद कर रहे हैं क्योंकि इसी अन्न से घर के बच्चों का पेट भरेगा। सब को खाना मिलेगा और सभी लोग खुश होंगे।

लोकगीतों में न केवल एक व्यक्ति की अपितु समस्त समाज की व्यथाएँ दर्शाई जाती हैं। हालाँकि प्रस्तुत करने वाला एक ही होता है परन्तु वह अपने संपूर्ण समाज को संबोधित करता है। पुरातन काल में भारत के लोग एक अच्छे जीवन-स्तर के लिए संघर्ष करते थे और खेती में कड़ी मेहनत करते थे। उस समय, आधुनिक काल की भाँति भिन्न-भिन्न कीटनाशक वस्तुएँ नहीं मिलती थीं। खेत में बहुत टिड्डियाँ आती थीं। गाँव की स्त्रियाँ इनसे बहुत परेशान होती थीं क्योंकि ये कीड़े उनकी कपास पर आक्रमण कर, उनकी सारी मेहनत पर पानी फेर देते थे। विरह का एक लोकगीत इसका चित्रण निम्न रूप में करता है:

"टीड़ी खाय गई बन कौ पत्ता, मेरौ बलम
गयौ कलकत्ता
टीड़ी आई जोर जुल्म सो, घर में रहयो न
लत्ता...
रोटी पानी कछू न कीनी, भूल गई सब रस्ता
टीड़ी आई जोर जुल्म सो, घर में रहयो न
लत्ता"

(सत्यार्थी और चटर्जी, 1948)

यहाँ पर एक नारी की पीड़ा नहीं बल्किउस पूरे समाज की पीड़ा का चित्रण दर्शनीय है। नारियाँ यहाँ पर अपने पति की अनुपस्थिति में कपास की सुरक्षा करने की कोशिश कर रही दिखाई देती हैं।

भारत में जितनी महत्ता लोक-संस्कृति को दी जाती है, उतनी ही सार्थकता मॉरीशस में भी दृष्टिगोचर होती है। शिशु-जन्म से लेकर विवाह-संस्कार तथा मृत्यु तक के लिए हमारी लोक-संस्कृति में एक विशेष रिवाज़, पूजा तथा गीत अथवा भजन है। मॉरीशस में शिशु-जन्म के अवसर पर 'ललना' का आयोजन होता है। सबसे पहले शिशु के स्वागत व गृह प्रवेश हेतु हवन या कथा की जाती है। उस शुभावसर पर सभी रिश्तेदार व पड़ोस के लोग निमंत्रित होते हैं। रात को महिलाओं की एक टोली उत्साहपूर्वक 'ललना' करने आती है।

मॉरीशस के 'ललना' गीत का एक छोटा सा अंश निम्नलिखित है:

"जनकपुर में बजेला बधैया हो लक्ष्मी जनम भइल हो,
अहो ललना, पलना में झुलेला (नाम) ललना झुलावे ल हो..."

"(क्षेत्र) में बजेला बधैया हो राम जनम भइल हो,
अहो ललना, पलना में झुलेला (नाम) ललना झुलावे ल हो..."[6]

चूँकि लोकगीत में 'जनकपुर' का उल्लेख हुआ है और पहली पंक्ति में 'लक्ष्मी' अर्थात् सीता के जन्म का उल्लेख है, सीधी-सी बात है कि यह लोकगीत पुरातन काल से हमारी लोक-संस्कृति का एक हिस्सा है जो गिरमिटिया मज़दूर विरासत में लेकर आए थे। अतः यह स्वाभाविक है कि भारत में बच्चों के जन्म पर 'ललना' गाया जाता था। इसको भारत में 'सोहर' कहा जाता है। यह एक प्रकार का मंगल गीत होता है जो भारतवासी पुत्र जन्म पर गाते हैं:

"जुग जुग जियसु ललनवा,
भवनवा के भाग जागल हो,
ललना लाल होइहैं,
कुलवा के दीपक मनवा में,
आस लागल हो ॥"

(सोहर: जुग जुग जियसु ललनवा)

हालाँकि यह प्रथा भारत से ही अंकुरित हुई है, दोनों देशों में मात्र एक अंतर यह है कि भारत में 'ललना' अथवा 'सोहर' केवल पुत्र जन्म पर गाया जाता है जबकि मॉरीशस में पुत्र व पुत्री जन्म, दोनों शुभावसर पर 'ललना' का आयोजन होता है।

यह सर्वविदित है कि लोक-संस्कृति परिवर्तित अवश्य होती है परन्तु यह अमिट भी है। मॉरीशस में प्राचीन समय में जहाँ लोक-गीत की प्रस्तुति ढोलक, तबला, बाँसुरी, आदि साज़ से होती थी आजकल हमारे नवयुवक महिलाओं के साथ ज़ाम्बे[7], त्रियांग[8], रावान[9] लेकर जाते हैं। इन सभी लोक-संस्कृतियों में एक अत्यंत लोकप्रिय व प्रचलित प्रथा है 'गीत-गवाई'। गीत-गवाई शादियों से दो दिन पहले आयोजित एक संगीतमय रात्रि है जो मॉरीशस के एक अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के रूप में प्रसिद्ध है। इसमें 'लगन-गीत', 'सुमिरन' तथा 'संध्या', 'धरती-बंधाई', 'ढोलक-पूजा' की जाती है। इनके बाद महादेव को संबोधित गीतों की प्रस्तुति होती है और अंत में 'झूमर' होता है। प्राचीन समय में गीत-गवाई पूरे एक सप्ताह तक की जाती थी। मुझे अपनी दादी-नानी से यह पता चला था कि इस प्रथा में केवल महिलाएँ बैठती थीं परन्तु आजकल पुरुष भी इसमें शामिल होते हैं तथा गीत व नृत्य में भी भाग लेते हैं। यह रिवाज़, प्रार्थना, गीत, संगीत तथा नृत्य का एक अनोखा समुच्चय है जिसका प्रदर्शन भोजपुरी भाषा में देखने को मिलता है। भारत में विशेष रूप से गाँवों में यह प्रथा आज तक जीवित है।

पुरातन काल में चूँकि बच्चों को स्कूली शिक्षा से वंचित किया जाता था, अधिकतर बच्चे घर पर ही पढ़ाई किया करते थे। तब उनके शिक्षक उनके बड़े-बुज़ुर्ग, उनके दादा-दादी और नाना-नानी हुआ करते थे। उस काल में अंग्रेज़ी, फ्रेंच तथा गणित, आदि के अतिरिक्त, बालकों को नैतिक मूल्य, अच्छे संस्कार, सांस्कृतिक परम्पराएँ व पुराणों की भी शिक्षा दी जाती थी। अतः बच्चों का औपचारिक व अनौपचारिक ढंग से शिक्षण सम्पन्न होता था। यह बच्चों के सर्वांगीण विकास हेतु अत्यन्त लाभप्रद था।

दर्शनीय है कि भारत में विशेषकर ग्रामीण प्रान्तों में लोक-संस्कृतियाँ, लोक-गीत व लोक-साहित्य आज तक जीवित हैं। मॉरीशस के वरिष्ठ लोग आज तक अपने पुरखों की बताई परम्पराओं को निभा रहे हैं। आधुनिक पीढ़ी भी इन संस्कृतियों व प्रथाओं को अपना तो रही है परन्तु उन्होंने इस संस्कृति को स्थानीय व पश्चिमी संस्कृतियों से भी जोड़ दिया है। मॉरीशस व भारत में लोक-संस्कृति को जीवित रखने का एक साधन है- स्कूली पाठ्यक्रम में लोक-संबंधित विषयों का समावेश करना। छात्रों में लोक-संस्कृति से संबंधित ज्ञान अंतर्निविष्ट करना चाहिए। इससे यह आधुनिक पीढ़ी तथा आने वाली पीढ़ियाँ अपनी मूल संस्कृति से जुड़ी रहेंगी।

मॉरीशसीय भोजपुरी व भारत की लोक-संस्कृतियों तथा लोक-गीतों से यह प्रतीत होता है कि हमारा वास्तविक जीवन आध्यात्मिक दिव्यता से परिपूर्ण है। हालाँकि दोनों देशों पर पश्चिम का अधिक प्रभाव पड़ रहा है, फिर भी दर्शनीय है कि आज तक 'लोक' को बहुत महत्ता दी जा रही है। चूँकि मॉरीशसीय लोक-संस्कृति का स्रोत भारत है इसलिए दोनों देशों की संस्कृतियों में समानताएँ दिखाई देती हैं परन्तु कुछ अंतर भी दृष्टिगोचर होता है।

संदर्भ:

1. 'गिरमिट' शब्द की उत्पत्ति अंग्रेज़ी के 'एग्रीमेंट' शब्द से माना गया है। भारतीय मज़दूरएक कागज़ पर अंगूठा लगवाकर मॉरीशस या अन्य देशों में भेजे जाते थे। उस दस्तावेज़ को 'गिरमिट' कहा जाता था। इन्हीं श्रमिकों को गिरमिटिया कहा जाता था। (Admin & Sain, 2022)
2. (Statistics Mauritius)
3. (The population of Mauritius - the latest estimated statistics 2020)
4. मॉरीशस में 'कालीमाई' के मंदिर में अन्य देवी-देवता भी होते हैं। उस स्थान को कालीमाई कहा जाता है।
5. https://hindipracharinisa bha. com/
6. यह मॉरीशस में एक प्रसिद्ध मौखिक लोकगीत है जो शिशु जन्म के अवसर पर गाया जाता है।
7. जाम्बे एक पश्चिम अफ्रीकी वाद्य यंत्र है।
8. त्रियांग एक मिस्त्री वाद्य यंत्र है।
9. रावान एक मॉरीशसीय वाद्य यंत्र है जो मॉरीशसीय 'सेगा' संगीत में प्रयुक्त है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. Admin, & Sain, D. S. K. (2022, August 17). गिरमिटिया मजदूर किसे कहते हैं. HISTORY. Retrieved January 12, 2023, from https://historyclasses. in/2022/08/who-are-indentured-laborers.html
2. UNESCO. UNESCO.org. (n.d.). Retrieved January 12, 2023, from https://www. unesco.org/en
3. Statistics mauritius. (n.d.). Retrieved February 12, 2023, from https://mof.govmu. org/indicators/SitePages/ statistics%20mauritius.aspx
4. The population of mauritius - the latest estimated statistics 2020. Mauritius Inside Out. (n.d.). Retrieved February 12, 2023, from https://www. mauritiusinsideout.com/ population-of-mauritius.html
5. मोक्षगजेन्द्र. (2019, June 23). सूर्य / सौर सूक्त. Vadicjagat. Retrieved January 13, 2023, from https:// vadicjagat.co.in/%E0%A4% B8%E0%A5%82%E0%A4% B0%E0%A5%8D%E0%A4% AF-%E0%A4%B8%E0%A5% 8C%E0%A4%B0-%E0%A4 %B8%E0%A5%82%E0%A4 %95%E0%A5%8D%E0%A4 %A4/
6. कल्लानन्दलाल. (2017). Mail. jvbi.ac.in. Retrieved February 3, 2023, from http://mail.jvbi. ac.in/dde/pdf/menu/distance/ SLM/MA-Hindi-Final-Paper-VIII.pdf
7. https://hindipracharinisabha. com/
8. Macaulay's minute on education, February 2, 1835. (n.d.). Retrieved February 10, 2023, from http://home. iitk.ac.in/~hcverma/Article/ Macaulay-Minutes.pdf
9. Satyarthi, D., & Chatterji, S. K. (१९४८). बेला फूले आधी रात. In Belā Phūle ādhī rāta (1st ed., pp. 38–39). story, Rājahaṃsa-Prakāśana.
10. Satyarthi, D., & Chatterji, S. K. (१९४८). प्रस्तावना. In Belā Phūle ādhī rāta (1st ed., p. 12). प्रस्तावना, Rājahaṃsa-Prakāśana.
11. Navbharat Times. (2022, February 4). लॉर्ड मैकाले का वो स्मरण-पत्र जिसने बदल दी भारत की शिक्षा नीति. Navbharat Times. Retrieved February 8, 2023, from https://navbharattimes. indiatimes.com/education/ gk-update/the-minute-of-lord-macaulay-which-changed-indias-education-policy/ articleshow/89345618.cms
12. पंथारी रक्षा. (2017, November 7). मॉरीशस में भारतीय संस्कृति की ध्वजवाहक रही बैठका. Dainik Jagran. Retrieved February 4, 2023, from https://www.jagran. com/uttarakhand/dehradun-city-indian-culture-is-famous-in-mauritius-16990285.html
13. Satyarthi, D., & Chatterji, S. K. (१९४८). बेला फूले आधी रात. In Belā Phūle ādhī rāta (1st ed., p. 22). story, Rājahaṃsa-Prakāśana.
14. Satyarthi, D., & Chatterji, S. K. (१९४८). ब्रज भारती. In Belā Phūle ādhī rāta (1st ed., p. 42). story, Rājahaṃsa-Prakāśana.
15. Satyarthi, D., & Chatterji, S. K. (१९४८). ब्रज भारती. In Belā Phūle ādhī rāta (1st ed., p. 43). story, Rājahaṃsa-Prakāśana.
16. सोहर: जुग जुग जियसु ललनवा. BhaktiBharat.com. (n.d.). Retrieved February 7, 2023, from https://www.bhaktibharat. com/bhajan/jug-jug-jiya-su-lalanwa-ke

• • •

* एसिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कला संकाय, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा

**पी.एच.डी. शोध छात्रा (आई.सी.सी.आर छात्रवृत्ति प्राप्त)

हिंदी सांस्कृतिक शब्दावली से थाई का अनुवाद विश्लेषण

– डॉ. वुत्थिफोंग थविलसमबत

भारत और थाईलैंड दोनों देशों की सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ मिलते जुलते है। कुछ सांस्कृतिक शब्दावली भी समान है लेकिन बहुत से शब्दों का अंतर है। इसलिए उन शब्दों का हिंदी से थाई में अनुवाद करना संभव नहीं है। जैसे हिंदी में खान-पान या वेशभूषा के शब्द आदि का थाई में अनुवाद करना कठिन है। थाई और हिंदी की सांस्कृतिक शब्दावली का अध्ययन किया जाता है तो समान शब्दावली मिलता मुश्किल हैं। इसलिए दोनों भाषाओं की शब्दावली का एक दूसरे में अनुवाद करना पड़ता है। अनुवादक को अनुवाद करते समय अपने विवेक से यह निर्णय लेना पड़ता है कि कौनसा अनुवाद अपनाया जाए। इस तरह, साथ में यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि अनुवाद में प्रयुक्त शब्द निश्चित और स्पष्ट अर्थ का बोधक हो।

हम जानते है कि एक भाषा की सामग्री का दूसरी भाषा में रूपांतरण, जैसे: हिंदी (स्रोत भाषा): मैं और राम रोज स्कूल जाते हैं। थाई (लक्ष्य भाषा): ฉันและรามไปโรงเรียนทุกวัน[छन-ले-राम-पाई-रोङ-रीआन-थुक-वन] वही काम अनुवाद कहते हैं। अनुवाद का संबंध स्रोत भाषा के पाठ से लक्ष्य भाषा के पाठ में अंतरण से है। जिस भाषा में मूलतः यह बात कही गई थी, उस भाषा को स्रोत भाषा कहा जाता है। दूसरी भाषा में उसका अंतरण किया जाता है। उसे लक्ष्य भाषा कहा जाता है।

दो भिन्न भाषा-भाषी समुदाय की संप्रेषण व्यवस्था के बीच अनुवाद मध्यस्थता का काम करता है। मध्यस्थ वस्तु के रूप में उसे कम-से-कम दो भाषाओं का सामना करना पड़ता है।[1] अनुवाद एक भाषा के पाठसामग्री से दूसरी भाषा के समतुल्य पाठ सामग्री द्वारा अंतरण करता है। इनके पाठसामग्री दो भाषाओं के संबंध है। अन्य भाषाएँ और विदेशी भाषाओं के जानकारी, साहित्य एवं सामाजिक-सांस्कृतिक का अध्ययन वही अनुवाद की उपयोगिता है। प्रत्येक भाषा की प्रकृति और परिवेश में अंतर है। इसलिए हमारे जीवन में अनुवाद कार्य का एक महत्वपूर्ण है। अनुवाद का काम काफी कठिन है। क्योंकि विभिन्न भाषाओं में विभिन्न विशिष्ट भाषा व शब्दावली होती है। हमें अनुवाद करने के लिए शब्दावली की आवश्यक्ता होती है।

इस तरह दो भाषाओं की भाषा संरचना में भी अंतर हैं। हिंदी की शब्दावली के अनुवाद की मुख्य समस्या पारिभाषिक शब्दावली के संदर्भ की है। अलग-अलग भाषाओं में अलग-अलग शब्दावली है जो अलग-अलग अर्थ में भी होते हैं। इसलिए शब्दावली का अनुवाद करते समय विशिष्ट शब्दों के अर्थ एवं संदर्भ पर ध्यान रखना आवश्यक है। सांस्कृतिक क्षेत्रका अनुवाद में भी शब्दावली की समस्या होती है। उदाहरण के लिए, पर्यटन से संबंधित सामाजिक-सांस्कृतिक की शब्दावली होती है। जब कोई व्यक्ति पर्यटन करता है तो उसे नई सांस्कृतिक परिवेश मिलती हैं। विभिन्न देशों की संस्कृति में अंतर हैं। अतः प्रत्येक भाषा की विशिष्ट शब्दावली होती है। जैसे: वेश-भूषा से संबंधित शब्दावली का अनुवाद में काफ़ी कठिनाई होती है। भारत में हिंदी भाषी क्षेत्र में साड़ी, धोती आदि वस्त्रों का संदर्भपरक अर्थ है। महिलाएँ साड़ी पहनती हैं और पुरुष धोती पहनते हैं। लेकिन थाईलैंड या दूसरे देश के लोग साड़ी और धोती बिल्कुल नहीं पहनते। इसलिए इनका अनुवाद विदेशी भाषा में कठिन है। अन्य भाषाओं में कोई ऐसी वेशभूषा न होने के कारण इसका समतुल्य शब्द ढूँढ़ने से भी नहीं मिलता।इसेलिप्यंतरण और भावानुवाद करना पड़ता है। इसी प्रकार हर देश का अलग-अलग खान-पान होता है और उनका भी प्रतिस्थापन करना असंभव हो जाता है। उदाहरण के लिए, भारतीय भोजन के अंतर्गत रोटी, पराठा, डोसा आदि, थाईलैंड भोजन के अंतर्गत ต้มยำ [ताम-यम], ข้าวแช่ [खाव-छै], น้ำพริก [नम-फ्रिक] आदि का अनुवाद संभव नहीं है। इसलिए इनका अनुवाद न कर इनको लक्ष्य भाषा में ज्यों-का-त्यों रखा जाता है। संस्कृति से संबंधित शब्दों का

अनुवाद करते समय कभी-कभी अनुवादक शब्दकोश का प्रयोग होनी चाहिए। अनुवादक को शब्दकोश पर निर्भर करके मात्र व्याख्या या परिभाषा और मूल भाषा से स्थितियों का वर्णन कर देते हैं।

हिंदी सांस्कृतिक शब्दावली

आजकल हम देख सकते हैं कि शब्दावली के विकास क्रम से भी जुड़ी हुई है।अतः आज अनेक विषय-क्षेत्रों जैसे: प्रशासन, विधि, संचार, धार्मिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, मानविकी, पर्यटन, प्रौद्योगिकी आदि में शब्दावली का प्रयोग किया जाता है। इस तरह सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र के अंतर्गत विशिष्ट भाषा एवं शब्दावली का प्रयोग किया जाता है। सांस्कृतिक शब्दावली के संदर्भ समझ सकते हैं कि भाषा का समाज और संस्कृति के साथ गहरा संबंध होता है। भाषा और संस्कृति का संबंध उतना ही पुराना है, जितना संस्कृति और भाषा का इतिहास। संस्कृति अपनी प्रकृति के अनुकूल भाषा का निर्माण करती है, जिसमें उसका संपूर्ण सौष्ठव अभिवयक्ति प्राप्त करती है।[2] इस तरह समाज के लोगों द्वारा संस्कृति का निर्माण होती है। समाज में लोगों द्वारा आपसी संप्रेषण के कारण उस समाज की भाषा विकसित हो जाती है। उनमें नए-नए शब्दों का निर्माण होता है। ऐसे शब्द केवल उस समाज या उस क्षेत्र विशेष में ही प्रयोग में लाए जाते हैं। यही जो शब्द उस समाज की संस्कृति की पहचान होते हैं। उन शब्दों को सांस्कृतिक शब्दावली कहा जाता है।

हिंदी सांस्कृतिक शब्दावली समूह को मुख्यतः 5 वर्गों में विभाजित कर सकते है: 1) तत्सम शब्द, 2) तद्भव शब्द, 3) आगत शब्द, 4) देशज शब्द और 5) संकर शब्द।[3] सांस्कृतिक शब्दावली को शब्द वर्ग के आधार पर विश्लेषण किया गया जो निम्नप्रकार से हैं:

तत्सम शब्द

भोलानाथ तिवारी ने कहा है कि "तत्सम उन शब्दों को कहते हैं जो संस्कृत के समान होता है। उदाहरण के लिए हिंदी में कृष्ण, गृह, कर्म, हस्त शब्द तत्सम हैं।"[4] स्पष्ट है कि तत्सम शब्द संस्कृत के समान है। जो संस्कृत शब्द अपने मूल रूप में, बिना किसी ध्वन्यात्मक परिवर्तन के प्रयोग होता है। वही हिंदी में प्रयोग किए जाते हैं जो तत्सम शब्द कहते हैं, जैसे: पर्यटन, भजन, आगमन, ऋतु, कविता, तीर्थस्थान आदि।

तद्भव शब्द

गोपाल शर्मा कहते हैं कि "तत् का अर्थ है: वह, अर्थात संस्कृत और भव का अर्थ है: पैदा होना। इस प्रकार तद्भव का अर्थ हुआ: संस्कृत शब्द से पैदा हुआ शब्द। संस्कृत शब्दों से उत्पन्न शब्दों को तद्भव कहते हैं। प्रायः ये वे शब्द हैं जो संस्कृत से हिंदी में आते आते पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, पुरानी हिंदी से भी विकसित होते हुए अपना मूल रूप परिवर्तित किया जाता है। ये शब्द विकृत हुए हैं। किंतु इनसे नए शब्द तो बने ही हैं, जैसे: सत्य से नया शब्द बन गया सच, जो खूब प्रयोगमें आता है। अन्य उदाहरण है: पत्ता (तत्सम पत्र), खीर (तत्सम क्षीर), सोना (तत्सम स्वर्ण), काम (तत्सम कर्म) आदि।"[5] उदाहरण के लिए, उड़ान (तत्सम उड़ना), कंगन (तत्सम कङ्कण), पिता (तत्सम पितृ), आम (तत्सम आम्र)आदि।

देशज शब्द

प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी कहते हैं कि "वे शब्द हैं जो तत्सम, तद्भव, और आगत तीनों में से किसी के अंतर्गत नहीं आते और उनके स्रोत का पूरी तरह से पता नहीं है। वही शब्द देशज शब्द है।"[6] उदाहरण के लिए, आंधी, कांसुलावास, पटाखा, कहानी, बैंगन आदि।

आगत शब्द

कई देशों की भाषाओं के शब्द हिंदी में स्वतः आ गए हैं। इसलिए इन्हें आगत शब्द कहते हैं। इन्हें विदेशी और गृहीत शब्द भी कहा जा सकता है। हिंदी में विभिन्न विदेशी भाषाओं से शब्द आए हैं, जैसे: कूपन (फ्रेंच)[7], शहर (फ़ारसी), पतलून (अंग्रेज़ी), चाय (चीनी), महल (अरबी), अनन्नास (पुर्तगाली) आदि।

संकर शब्द

वे शब्द हैं जिनमें किसी शब्द का एक भाग एक भाषा से हो और शेष भाग दूसरी भाषा से हो या दो प्रकार के शब्दों के मेल से बने होते हैं। संकर शब्द, जिनका निर्माण विभिन्न भाषाओं से आए शब्दों के योग से होता है। इस प्रकार तत्सम शब्द, तद्भव शब्द, आगत शब्द और देशज शब्द से संकर शब्द बनते हैं, जैसे: रेलगाड़ी: रेल (अंग्रेज़ी)+गाड़ी (हिंदी), दवाखाना: दवा (अरबी)+खाना (फ़ारसी) आदि।

हिंदी सांस्कृतिक शब्दावली से थाई का अनुवाद विश्लेषण

प्रत्येक संस्कृति में रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, आचार-विचार, धर्म आदि की विशिष्ट शब्दावली का प्रयोग होती है। त्योहार, इतिहास, जलवायु पर आधारित विशिष्ट सांस्कृतिक शब्दावली भी होती है। इस संदर्भ में भारत और थाईलैंड दोनों देशों की सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ मिलते जुलते है। कुछ सांस्कृतिक शब्दावली भी समान है लेकिन बहुत से शब्दों का अंतर है। इसलिए उन शब्दों का हिंदी से थाई में अनुवाद करना संभव नहीं है। जैसे हिंदी में खान-पान या वेशभूषा के शब्द आदि का थाई में अनुवाद करना कठिन है। थाई और हिंदी की सांस्कृतिक शब्दावली का अध्ययन किया जाता है तो समान शब्दावली मिलता मुश्किल हैं। इसलिए दोनों भाषाओं की शब्दावली का एक दूसरे में अनुवाद करना पड़ता है। अनुवादक को अनुवाद करते समय अपने विवेक से यह निर्णय लेना पड़ता है कि कौनसा अनुवाद अपनाया जाए। इस तरह,

साथ में यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि अनुवाद में प्रयुक्त शब्द निश्चित और स्पष्ट अर्थ का बोधक हो। सांस्कृतिक शब्दावली का अनुवाद विश्लेषण से यह जानकारी मिलती है कि शब्दानुवाद, भावानुवाद, लिप्यंतरण और अनुकूलन का प्रयोग किया गया है, जिनका विवेचन नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

शब्दानुवाद

शब्दानुवाद में मूल भाषा के सभी शब्दों का अनुवाद किया जाता है। इस संदर्भ में कैलाश चन्द भाटिया कहते हैं कि "शब्दानुवाद में एक भाषा के शब्द को दूसरी भाषा के शब्द से बदल देना मात्र ही इसके अंतर्गत नहीं आता है। स्रोत भाषा के व्याकरणिक रूप के स्थान पर लक्ष्य भाषा के व्याकरणिक रूप को भी रख दिया जाता है।"[8]

सांस्कृतिक शब्दावली में शब्दानुवाद ही विशेषतः लागू होता है। अनुवाद की पहली आवश्यकता है तो उचित शब्द समूह का संग्रह है। उसके बाद ध्यान से अनुवाद करना पड़ता है। शब्दानुवाद में स्रोत भाषा के प्रत्येक शब्द पर अनुवादक को ध्यान रखना पड़ता है और शब्द के स्तर पर क्रमबद्ध अनुवाद की ओर ध्यान दिया जाता है। हिंदी सांस्कृतिक शब्दावली से थाई का शब्दानुवाद बहुत ज़्यादा शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इनमें कुछ शब्दों को नीचे प्रस्तुत किया गया है।

हिंदी शब्दावली	**थाई का शब्दानुवाद**
1. अंगूठी	แหวน [वेन]
2. अभिनय	การแสดง [कान-स-दैङ]
3. आम	มะม่วง [म-मूआङ]
4. इतिहास	ประวัติศาสตร์ [प्र-वत-ति-सात]
5. उत्पाद	ผลิตภัณฑ์ [फ-लित-त-फन]
6. कला	ศิลปะ [सिन-ल-प]
7. गुफा	ถ้ำ [थम]
8. नदी	แม่น้ำ [मै-नम]
9. पत्नी	ภรรยา [फन-र-या]
10. प्रतिमा	รูปปั้น [रूप-पन]

भावानुवाद

डॉ. लक्ष्मीकान्त पाण्डेय कहते हैं कि "भावानुवाद से तात्पर्य उस अनुवाद से है जिसमें मुख्यतः मूल सामग्री के भावों का अनुवाद होता है। शब्दानुवाद में अनुवादक का ध्यान प्रत्येक शब्द और इसके अर्थ पर रहता है लेकिन भावानुवाद ठीक इसके विपरीत होता है।"[9]

> **भाषा का समाज और संस्कृति के साथ गहरा संबंध होता है। भाषा और संस्कृति का संबंध उतना ही पुराना है, जितना संस्कृति और भाषा का इतिहास। संस्कृति अपनी प्रकृति के अनुकूल भाषा का निर्माण करती है। जिसमें उसका संपूर्ण सौष्ठव अभिव्यक्ति प्राप्त करती है। इस तरह समाज के लोगों द्वारा संस्कृति का निर्माण होती है। समाज में लोगों द्वारा आपसी संप्रेषण के कारण उस समाज की भाषा विकसित हो जाती है। उनमें नए-नए शब्दों का निर्माण होता है।**

उपरोक्त विषय से यह स्पष्ट है कि भावानुवाद में स्रोत भाषा के शब्दों पर ध्यान न देते हुए उसके भाव या संकल्पना को समझाकर लक्ष्य भाषा में संप्रेषित करने का प्रयास किया जाता है। अगर शब्दावली का अनुवाद करने के लिए शब्दानुवाद करना असंभव हो जाता है या शब्दानुवाद जटिल और अस्पष्ट होने की संभावना होती है तो भावानुवाद करना पड़ता है। भावानुवाद में स्रोत भाषा के भावों का संप्रेषण भावानुवाद की प्रमुख विशेषता है। भावानुवाद में कभी-कभी देखा जाता है कि कुछ शब्दों को छोड़ देते है तो कभी कुछ शब्द जोड़ भी देते है। भावानुवाद करते समय शब्दावली विषय विशेष के अस्यित्व से अधिक उसमें निहित भाव को ध्यान में रखना चाहिए। यह भी सोचना होगा कि मूल भाषा में कहने वाला अमुक शब्द के स्थान पर और कौन सा शब्द प्रयोग में ला सकता है। इस तरह भावानुवाद करने के स्थान पर कहीं व्यक्तिगत दृष्टि से उस शब्द का विश्लेषण नहीं किया जा रहा है। जब कोई नया शब्द मूल भाषा से लक्ष्य भाषा में आता है तो समय-समय पर उसके रूप बदलते रहते हैं। इसके अलावा यह देखना जरूरी है कि भावानुवाद करते समय अनुवाद के स्थान पर अनुवादक व्यक्तिगत दृष्टि से उसका विश्लेषण न करने लगे।हिंदी सांस्कृतिक शब्दावली से थाई का भावानुवाद किए गए हैं। उसकी सूची कुछ उदाहरण निम्नलिखित है:

हिंदी शब्दावली	**थाई का भावानुवाद**
1. पहचान पत्र	บัตรประชาชน [बत-प्र-छा-छान]
2. दूतावास	สถานทูต [स-थान-थूत]
3. घाट	ท่าน้ำศักดิ์สิทธิ์ [था-नम-सक-सित]
4. दूरबीन	กล้องส่องทางไกล [क्लॉङ-सॉङ-थाङ-क्लाई]
5. राज-दरबार	ราชสำนัก [रात-छ-सम-नक]
6. रावण	ทศกัณฐ์ [थत-स-कन]

सांस्कृतिक शब्दावली का अनुवाद करते समय भावानुवाद और शब्दानुवाद दोनों पर में ध्यान रखना पड़ता है। कभी-कभी कुछ शब्द केवल एक प्रकार का अनुवाद किया जा सकता है लेकिन कुछ शब्द का भावानुवाद और शब्दानुवाद दोनों प्रकारों का अनुवाद हो सकता है। इस प्रकार अनुवादक को ध्यान रखना चाहिए कि कौन-सा अनुवाद शब्द के उचित अर्थ हो पाएगा। इसलिए शब्दावली

का शब्दानुवाद और भावानुवाद करने में कठिनाई एवं समस्याएँ होती है।अनेक शब्दों के अनुवाद में साहचर्य के साथ जुड़े हुए इस संदर्भ का अंतरण बहुत ही कठिन हो जाता है। क्योंकि एक भाषा में एक खास शब्द का जो साहचर्य होता है, वह अन्य भाषा में मिल नहीं सकता है। शब्दानुवाद करने पर समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रत्येक शब्द के लिए अन्य भाषा में समान शब्द मिल नहीं पाएगा।इसके अलावा जहाँ समान शब्द मिल भी जाते हैं, तो वहाँ समान शब्द से अनुवाद करने में भी कठिनाइयाँ आ जाती है। क्योंकि शब्दानुवाद से अर्थ का अनर्थ हो सकता है।इस कारण भावानुवाद करना पड़ता है।लेकिन कभी-कभी भावानुवाद शब्दों के संयोग से शब्द का ठीक अर्थ नष्ट हो जाता है। अतः अनुवादक को अनुवाद करते समय ध्यान रखना चाहिए कि इस पारिभाषिक शब्द का अनुवाद करने के लिए भावानुवाद या शब्दानुवाद का इसतेमाल किया जाता है। उदाहरण के लिए, थाई की शब्दावली 'अस्थायी बाजार' के लिए शब्दानुवाद और भावानुवाद दोनों भी हो सकता है। लेकिन अगर शब्दानुवाद करना है तो उसका अर्थ जटिल और अस्पष्ट होता है। इस शब्द के लिए भावानुवाद बहुत उचित है। इसलिए थाई में 'अस्थायी बाजार' के संदर्भ में ตลาดน้ำ [त-लात-नम] के रूप में अनुवाद किया जाता है। इसका अर्थ नदी में बाज़ार या नहर में बाज़ार होता है जो 'अस्थायी बाजार' का संबंध और सबसे उचित अर्थ होता है।

लिप्यंतरण (Transliteration)

The New Encyclopedia Britannica के अनुसार "Transliteration is the representation of the sounds, words or utterances of one language by means of the symbols used in the writing system of another language"[10] अर्थात किसी भाषा के स्वरों, शब्दों या उच्चारणों की दूसरी भाषा की लेखन व्यवस्था में प्रयुक्त प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्ति लिप्यंतरण है। इस तरह रमेश चन्द्र ने भी कहा है कि "लिप्यंतरण से तात्पर्य है लिपि-परिवर्तन अर्थात किसी लिपि में लिखे शब्द के उच्चारण का ध्यान रखते हुए उसे दूसरी लिपि में लिखना। शब्द का लिप्यंरतण करने के लिए एक लिपि की ध्वनियों के लिए दूसरी लिपि की ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है।"[11]

समझ सकते हैं कि लिप्यंतरण में एक भाषा से दूसरी भाषा की वर्तनी में जो लिपि चिह्न प्रयुक्त हुआ है उनका अंकन होता है। लिप्यंतरण में लिखित रूप होता है जो दो भाषाओं के शब्द का अनुवाद के साथ-साथ लिपि चिह्नों की समानता स्थापित की जाती है। जब किसी भाषा में अन्य भाषा के आगत शब्दों को लिप्यंतरण के रूप में लिख जाएतो लिप्यंतरण करते समय मूल भाषाके ध्वनि-नियमों का कहाँ तक अनुसरण हो। इसपर विचार करना चाहिए कि इस संदर्भ में व्यावहारिक सिद्धांत यही लगता है कि लिप्यंतरण में उच्चारण से भी बढ़कर वर्तनी पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

हिंदी सांस्कृतिक शब्दावली का थाई भाषा में अनुवाद किया गया है और इसका लिप्यंतरण थाई की लिपि में किया जाता है। इस परियोजना कार्य में थाई रॉयल अकादमी केहिंदी लिप्यंतरण नियम के अनुसार हिंदी से थाई में लिप्यंतरण का उपयोग किया जाता रहा है। इसी प्रकार लिप्यंतरित कुछ शब्दों का उदाहरण निम्नलिखित है:

हिंदी शब्दावली	**थाई का लिप्यंतरण**
1. अहिंसा	อหิงสา [अ-हिङ-सा]
2. खीर	ขีร [खीर]
3. जलेबी	ชเลบี [छ-ले-बी]
4. दीपावली	ทีปาวลี [थी-पा-व-ली]
5. धोती	โธตี [थो-ती]
6. पोहा	โปหา [पो-हा]
7. महायान	มหายาน [म-हा-यान]
8. युग	ยุค [युक]
9. रोग	โรค [रोक]
10. होली	โหลี [हो-ली]

अनुकूलन

डॉ. कैलाश चन्द भाटिया कहते हैं कि अनुकूलन की प्रक्रिया अनुवाद से भिन्न है। अनुवाद में मूल को हू-ब-हू दूसरी भाषा में सुरक्षित रखने की स्थिति रहती है।जबकि अनुकूलन में या तो मूल के भाव को सुरक्षित रखा जाता है। अथवा मूल के शब्द को हू-ब-हू

न लेकर अपनी भाषा के अनुकूल कर लिया जाता है।[12]

जब किसी शब्द को इस प्रकार बदल दिया जाता है कि वह नवीन स्थिति या प्रयोग के अनुकूल हो जाए तो इस प्रक्रिया को 'अनुकूलन'कहते हैं। अनुकूलन आगत शब्दावली के अनेक रूपों में से एक होती है।आज अनेक प्रकार के शब्द जो बहुल मात्रा में विदेशी भाषाओं से आ रही है। उसमें अनुकूलन की प्रक्रिया अधिक प्रभावी हैं। कह सकते हैं कि जब आगत शब्दावली को अपनी मातृभाषा की ध्वनि प्रक्रिया तथा व्याकरणिक प्रक्रिया के अनुकूलन परिवर्तित कर लिया जाता है तो इस प्रक्रिया 'अनुकूलन' कहा जाता है।सांस्कृतिक शब्दावली का हिंदी से थाई में अनुवाद करते समय उसे अनुकूलन भी बल्कि प्रयोग किया जाता है क्योंकि इस स्थिति में हिंदी शब्दों को आगत शब्द के रूप में माना जाता है।

हिंदी सांस्कृतिक शब्दावली से थाई का अनुकूलन काफ़ी शब्दों का प्रयोग किया जाता। कुछ शब्दों की सूची उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

हिंदी शब्दावली	थाई का अनुकूलन
1. उपासक	อุบาสก [उ-बा-सक]
2. कवि	กวี [क-वी]
3. क्रीड़ा	กีฬา [की-ला]
4. पूजा	บูชา [बू-छा]
5. मॉल	ห้างสรรพสินค้า [हाङ-सप-फ-सिन-खा]
6. शाकाहारी	มังสวิรัติ [मङ-स-वि-रत]
7. स्तूप	สถูป [स-थूप]
8. हज	ฮัจญ์ [हत]
9. होटल	โรงแรม [रोङ-रैम]
10. कूपन	คูปอง [खू-पॉङ]

उपरोक्त उदाहरण से यह जानकारी मिलती है कि अनुकूलन में दो प्रकारों के होते हैं:

ध्वन्यानुकूलन: किसी शब्द की हिंदी ध्वनि को थाई भाषा की ध्वनि पद्धति में ढाल लेता है। जैसे हिंदी में 'पूजा' और थाई में 'บูชา [बू-छा]'।इसमें [प] से [ब] के रूप में परिवर्तन किया जाता है।

शब्दानुकूल: अनुकूलन के दूसरे रूप को शब्दानुकूलन कहते हैं। इसे हिंदी और थाई दोनों भाषाओं का समीकरण कहते हैं। इसमें परिभाषिक शब्द को नामधातु मान कर अपने व्याकरण (अन्य शब्द) के सहयोग से उसे नया रूप प्रदान किया जाता है।जैसेहिंदी में 'शाकाहारी' के लिए 'มังสวิรัติ [मङ-स-वि-रत]' थाई का नया शब्द के रूप में प्रयुक्त किया जाता। इस प्रकार देख सकते हैं कि हिंदी में phoneme = स्वनिम अथवा Intonation = अनुतान आदि का प्रयोग किया जाता है

सांस्कृतिक शब्दावली का अनुवाद करते समय भावानुवाद और शब्दानुवाद दोनों पर में ध्यान रखना पड़ता है। कभी-कभी कुछ शब्द केवल एक प्रकार का अनुवाद किया जा सकता है लेकिन कुछ शब्द का भावानुवाद और शब्दानुवाद दोनों प्रकारों का अनुवाद हो सकता है। इस प्रकार अनुवादक को ध्यान रखना चाहिए कि कौन-सा अनुवाद शब्द के उचित अर्थ हो पाएगा। इसलिए शब्दावली का शब्दानुवाद और भावानुवाद करने में कठिनाई एवं समस्याएँ होती है।

उपरोक्त यह विषय से समझ सकते हैं कि अगर थाई में हिंदी की समान शब्दावली होती हैं तो शब्दानुवाद संभव होता है। कभी-कभी शब्दावली का अनुवाद करने के लिए शब्दानुवाद करना असंभव हो जाता तो भावानुवाद की सहायता ली जा सकती है। देखा जाता है कि सांस्कृतिक शब्दावली जैसे खान-पान, वेशभूषा, त्योहार अथवा नाते-रिश्ते से संबंधित है जो थाई भाषा में नहीं प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार अनुवाद की कठिनाई और समस्या उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए नाते-रिश्ते के इन शब्दों का हिंदी से थाई में अनुवाद कर पाना संभव नहीं हो पाता।जैसे थाई में หลานชาย [लान-छाय] और अंग्रेज़ी में grandson के लिए पौत्र, पोता, नाती, आदि कई हिंदी में मिल जाते हैं। इस तरह थाई में หลานสาว [लान-साव] और अंग्रेज़ी में granddaughter के लिए पोती, नातिन, दौहित्री, दोहती, पौत्री आदि अनेक शब्द हैं जो अनुवाद की भाषा भ्रमात्मक स्थिति पैदा कर देते हैं। हिंदी भाषा समाज में ये शब्द समाज की संयुक्त परिवार की संकल्पना प्रस्तुत करते हैं, जबकि थाई भाषी समाज में एकल परिवार होने के कारण केवल หลานชาย [लान-छाय] और หลานสาว [लान-साव] शब्द प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार के शब्दों का थाई भाषा में भावानुवाद करना चाहिए।

वैसे ही 'पोस्टकार्ड' का थाई भाषा में अनुवाद लिप्यंतरण का प्रयोग किया जा सकता है।थाईलैंड में 'पोस्टकार्ड' का प्रयोग किया जाता है लेकिन उसके लिए 'ไปรษณีย์บัตร [प्राई-स-नी-य-बत]'औपचारिक रूप माना जाता है।इसलिए अनुकूलन द्वारा 'पोस्टकार्ड' का थाई में अनुवाद करना पड़ता है जो 'ไปรษณีย์บัตร [प्राई-स-नी-य-बत]' सबसे उचित अर्थ होता है। वैसे ही थाई में रोटी, डोसा, खीर, पापड़ नहीं खाते हैं अथवा साड़ी, धोती नहीं पहनते हैं।इस प्रकार के शब्दों का थाई भाषा में लिप्यंतरण होना जरूरी है।इस संदर्भ से यह समझ सकते हैं कि शब्दावली का अनुवाद करते समय सभी प्रकार के अनुवाद का उपयोग किया जा सकता है लेकिन सटीकअर्थ के आधार पर ध्यान रखना पड़ता है। कभी-कभी कुछ शब्दावली शब्दानुवाद या भावानुवाद किया जा सकता है लेकिन सटीक

अर्थ नहीं मिलता। इस कारण अनुवादकों को लिप्यंतरण और अनुकूलन करना पड़ता है। इस प्रकार थाई भाषा की प्रकृति के अनुसार अनुवाद करना पड़ता है।

लिप्यंतरण में एक भाषा से दूसरी भाषा की वर्तनी में जो लिपि चिह्न प्रयुक्त हुआ है उनका अंकन होता है। लिप्यंतरण में लिखित रूप होता है जो दो भाषाओं के शब्द का अनुवाद के साथ-साथ लिपि चिह्नों की समानता स्थापित की जाती है। जब किसी भाषा में अन्य भाषा के आगत शब्दों को लिप्यंतरण के रूप में लिख जाए तो लिप्यंतरण करते समय मूल भाषा के ध्वनि-नियमों का कहाँ तक अनुसरण हो।

निष्कर्ष कर सकते हैं कि सांस्कृतिक शब्दावली से थाई का अनुवाद करते समय ज्यादातर शब्दानुवादका प्रयोग किया जाता है। उसके अलावाभावानुवाद, अनुकूलन और लिप्यंतरण इन तीन प्रकारों का भी प्रयोग किए जाते हैं। कभी-कभी सांस्कृतिक शब्दावली का अनुवाद करते समय कठिनाई होती है। इसलिए अनुवाद करते समय अनुवादक को ध्यान रखना पड़ता है और शब्दकोश की सहायता ली जा सकती है।

संदर्भ सूची

1. लक्ष्मीकान्त पाण्डेय, अनुवाद का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक परिचय, 2000, पृ.3.
2. बाबूरामसक्सेना, हिंदी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, 2002, पृ.309.
3. कृष्ण कुमार गोस्वामी, शौक्षिक व्याकरण और व्यावहारिक हिंदी, 2002, पृ.127.
4. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा, 2009, पृ.154.
5. गोपाल शर्मा, केंद्रीय हिंदी व्याकरण, 2008, पृ.57.
6. कृष्ण कुमार गोस्वामी, शौक्षिक व्याकरण और व्यावहारिक हिंदी, 2002, पृ.127.
7. वही.
8. कैलाश चन्द भाटिया, अनुवाद कला: सिद्धांत और प्रयोग, 2004, पृ.6.
9. लक्ष्मीकान्त पाण्डेय, अनुवाद का सैद्धांतिक और व्यावहारिक परिचय, 2000, पृ.65.
10. राम प्रकाश सक्सेना, लिप्यंतरण सिद्धांत और प्रयोग, 2004, पृ.70.
11. रमेश चन्द्र, राजभाषा हिंदी और तकनीकी अनुवाद, 2007, पृ.152.
12. कैलाश चन्द भाटिया, अनुवाद कला: सिद्धांत और प्रयोग, 2004, पृ.128.

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. अय्यर, एन.ई.विश्वनाथ. **अनुवाद भाषाएँ-समस्याएँ**. 1992. दिल्ली: ज्ञान गंगा।
2. कुमार, सुरेश. **अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा**. 2007. नयी दिल्ली: वाणी।
3. के. शाह, आशोक. **हिंदी भाषा और भाषाविज्ञान**. 2008. मथुरा: अमर।
4. गोपीनाथन, जी. **अनुवाद सिद्धांत और प्रयोग**. 2004. इलाहाबाद: लोकभारती।
5. गोस्वामी, कृष्ण कुमार. **शैक्षिक व्याकरण और व्यावहारिक हिंदी**. 2002.दिल्ली: आलेख।
6. **व्यावहारिक हिंदी और रचना**. 2005. नयी दिल्ली: वाणी।
7. **अनुवाद विज्ञान की भूमिका**. 2008. नयी दिल्ली: राजकमल।
8. गोस्वामी, कृष्ण कुमार और श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ. **अनुवाद सिद्धांत और समस्याएँ**. 1995. दिल्ली: आलेख।
9. गोस्वामी, कृष्ण कुमार (सं) और श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ (सं). **अनुवाद एवं भाषांतरण पाठ और अभ्यास**. 2007. नयी दिल्ली: ओरियंट लॉगमन पाइवेट लिमिटेड।
10. चौधरी, तेजपाल. **भाषा और भाषा विज्ञान**. 2002. कानपुर: विकास।
11. तिवारी, भोलानाथ. **अनुवाद विज्ञान**. 2007. नयी दिल्ली: किताबघर।
12. नगेन्द्र (सं). **अनुवाद विज्ञान: सिद्धांत एवं अनुप्रयोग**. 1993.नयी दिल्ली: दिल्ली विश्वविद्यालय।
13. नाटाणी, प्रकाश नारायण. **भारतीय संस्कृति के विविध आयाम**. 2007. जयपुर: अवतार पब्लिकेशन्स।
14. पाण्डेय, लक्ष्मीकान्त. **अनुवाद का सैद्धांतिक और व्यावहारिक परिचय**. 2000. कानपुर: साहित्य रत्नालय।
15. पालीवार, रीतारानी. **अनुवाद प्रक्रिया एवं परिदृश्य**. 2004. नयी दिल्ली: वाणी।
16. भाटिया, कैलाशचन्द्र. **अनुवाद कला सिद्धांत और प्रयोग**. 2004. नयी दिल्ली: तक्षिला।
17. शर्मा, गोपाल. **केन्द्रीय हिंदी व्याकरण**. 2008. हैदारबाद: गीता।
18. शर्मा, रामगोपाल. **भाषाविज्ञान और हिंदी**. 2006. दिल्ली: विकास पेपर।
19. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ और तिवारी, भोलानाथ. **व्यावहारिक हिंदी**. 2007. नयी दिल्ली: वाणी।
20. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ. **अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान: सिद्धांत एवं प्रयोग**. 2000. दिल्ली: राधाकृष्ण।
21. सक्सेना, रामप्रकाश. **लिप्यंतरण सिद्धांत और प्रयोग**. 2004. रायपुर: वैभव।
22. हरिमोहन. **राजभाषा हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद की दिशाएँ**. 2006. नयी दिल्ली: तक्षिला।

• • •

प्राच्य भाषा विभाग, पुरातत्व संकाय,
शिल्पाकर विश्वविद्यालय, बैंकॉक, थाईलैंड

मुख्तार औजोव का रचना संसार और कजाख साहित्य में भारतप्रेम

– अकमारल कैनाजारोवा

जब हम कजाकिस्तान और भारत के बीच मित्रता के बारे में बात करते हैं, तो हम ग्रेट सिल्क रोड और लंबे समय से चले आ रहे आर्थिक सहयोग के समय से हमारे देशों के बीच ऐतिहासिक संबंधों को याद करते हैं; हम राज कपूर के समय की दिल को छू लेने वाली फिल्मों और भारत के विकास के इतिहास पर मुगलों के प्रभाव को याद करते हैं, जिनके पूर्वज मध्य एशिया से थे। वास्तव में हमारे बीच समानताओं के कई उदाहरण हैं। यह कहना ठीक ही होगा कि कजाकिस्तान के लेखकों, जिन्होंने समय-समय पर भारत की यात्राएं कीं, उनके द्वारा भारत पर लिखे जाने वाले पत्रकारीय निबंधों की गहरी परंपरा ने भी हमारे संबंधों को दृढ़ और मजबूत किया है।

मेरी दादी बहुत खास थीं। उनका मानना था कि घर में मेज पर हमेशा ताजे फूलों का गुलदस्ता होना चाहिए। वह सुंदरता से बहुत प्यार करती थी और अच्छा गाती थी। मेरी दादी यानी करीमा सदिकोवना ने बहुत कुछ पढ़ा, और उनके पसंदीदा लेखक बंगाल के प्रसिद्ध कवि थे – रवींद्रनाथ टैगोर जो 1913 में साहित्य में नोबेल पुरस्कार जीतने वाले एशिया के पहले प्रतिनिधि थे और उन्होने अपने कार्यों के द्वारा उसे प्राप्त भी किया। करीमा सडिकोवना के घर पर किताबों की अलमारियों में टैगोर के कार्यों का पूरा संग्रह रखा था। वे पढ़ी गई प्रत्येक पुस्तक पर "ओकिडिम" (जिसका कजाख में अर्थ है "पढ़ना") का चिह्न बनाती और तारीख लिख देतीं थीं। करीमा सदिकोवना उत्साहपूर्वक रवींद्रनाथ टैगोर के गद्य को मुझे सुनाती थीं और इससे मेरे दिल में भारत के बारे में थोड़ी सी उत्सुकता पैदा हुई थी। मेरी दादी के आभार से मेरी पहली किताबें भारत और श्रीलंका की कहानियां थीं। वर्षों बाद, प्रसिद्ध कवि और लेखक रवींद्रनाथ टैगोर का जन्म-स्थान भारत, मेरे मूलस्थान कजाकिस्तान के बाद मेरी दूसरी मातृभूमि बन गया। भारत की आध्यात्मिक संस्कृति आज तक मेरे जीवन की प्रेरणा बनी हुई है।

शब्दों की शक्ति को नकारा नहीं जा सकता। ये प्रेरित कर सकते हैं, रचना कर सकते हैं और विनाश भी कर सकते हैं। शब्दों की शक्ति एक रूपक मात्र नहीं है; यह मानव मस्तिष्क की विशेषताओं में अंतर्निहित है और आसपास की दुनिया की भावनात्मक धारणा से जुड़ी हुई है। जैसा कि प्रसिद्ध तुर्क कवि अलीशेर नवोई ने कहा: "शब्द मृत्यु को रोक सकते हैं, शब्द मृतकों को पुनर्जीवित कर सकते हैं।" वहीं, दूसरी ओर प्राचीन ग्रीक वक्ता डेमोस्थनीज ने लिखा था, "कर्म के बिना हर शब्द बेकार और खाली है।"

जब हम कजाकिस्तान और भारत के बीच मित्रता के बारे में बात करते हैं, तो हम ग्रेट सिल्क रोड और लंबे समय से चले आ रहे आर्थिक सहयोग के समय से हमारे देशों के बीच ऐतिहासिक संबंधों को याद करते हैं; हम राज कपूर के समय की दिल को छू लेने वाली फिल्मों और भारत के विकास के इतिहास पर मुगलों के प्रभाव को याद करते हैं, जिनके पूर्वज मध्य एशिया से थे। वास्तव में हमारे बीच समानताओं के कई उदाहरण हैं। यह कहना ठीक ही होगा कि कजाकिस्तान के लेखकों, जिन्होंने समय-समय पर भारत की यात्राएं कीं, उनके द्वारा भारत पर लिखे जाने

वाले पत्रकारीय निबंधों की गहरी परंपरा ने भी हमारे संबंधों को दृढ़ और मजबूत किया है। उनकी भारत की यात्राओं का परिणाम थी कजाख साहित्य में भारत के बारे में एक महान साहित्यिक विरासत, जो इस प्राचीन देश के लिए प्यार और विश्वास से ओत-प्रोत है। मुख्तार ओमारखानोविच औजोव कजाख साहित्य में भारत की खोज करने वाले पहले व्यक्ति थे।

मुख्तार औजोव द्वारा "भारत पर निबंध"

28 सितंबर 2022 को उत्कृष्ट कजाख लेखक मुख्तार औजोव, जो उपन्यासकार, सार्वजनिक व्यक्ति और वैज्ञानिक; पहली डिग्री के लेनिन और स्टालिन पुरस्कारों के विजेता; कजाख एसएसआर के विज्ञान अकादमी के शिक्षाविद; यूएसएसआर के लेखकों के संघ के अध्यक्ष हैं, की 125 वीं जयंती मनाई गई। उनके चार खंडों के उपन्यास "Abai's way" को बीसवीं शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में से एक के रूप में दुनिया भर में मान्यता मिली, बीस से अधिक भाषाओं में इसका अनुवाद किया गया और "विश्व साहित्य के पुस्तकालय" में इसे स्थान दिया गया। अपनी प्रतिभा के लिए उनकी तुलना विलियम शेक्सपियर, जैक लंदन और अन्य महान लेखकों से की जाती है। तोलोमुश ओकीव द्वारा निर्देशित और मुख्तार औजोव की कहानी पर आधारित सोवियत फिल्म "ल्यूटी" (1973) को यूएसएसआर से ऑस्कर के लिए नामांकित किया गया था।

मुख्तार ओमारखानोविच औजोव असामान्य प्रतिभा वाले व्यक्ति थे। वह 1955 में भारत की यात्रा करने वाले पहले कजाख लेखकों में से एक थे। 1958 में यूएसएसआर के प्रतिनिधिमंडल के सदस्य के रूप में भारत की 45 दिवसीय यात्रा के बारे में कजाख भाषा में "भारत पर निबंध" प्रकाशित किया गया था। लेखक ने अपने यात्रा वृतांत में 45 दिनों के दौरान जो कुछ भी देखा, उसका वर्णन बहुत ही दृढ़ता और गहराई से किया है, जो निश्चित

रूप से उन सभी के लिए दिलचस्प है जो भारत देश, इसके इतिहास, प्राचीन संस्कृति और रीति-रिवाजों में रुचि रखते हैं।

एक तरफ, हम एक अद्वितीय देश और उसके यात्रा वृतांतों का एक प्रत्यक्षदर्शी विवरण देखते हैं। दूसरी ओर, यह कहानी एक गहन बौद्धिक आध्यात्मिक व्यक्ति के मुख से आती है, जो अपनी संस्कृति और अपने समय का एक मॉडल और वाहक है। लेखक यूएसएसआर युग के नागरिक के रूप में पेश होता है, जो ईमानदारी, आपसी सहायता, निःस्वार्थता और मित्रता जैसे मानव संबंधों की सभी सकारात्मक विशेषताओं के साथ सोवियत देश का प्रतिनिधि है। लेखक भारत के युवा गणराज्य की राजनीतिक घटनाओं के विवरण में नहीं जाता है, लेकिन लगातार मानवतावाद और मानवता पर जोर देता है जो उसने देखा है – युवा देश के उज्ज्वल क्षितिज और आध्यात्मिक आदर्श, सार्वभौमिक शिक्षा की आकांक्षा, आर्थिक प्रगति, नवीनता और जीवन के सभी क्षेत्रों में समृद्धि के बारे में वर्णन करता है। मुख्तार औजोव अपने वृतांतों की उज्ज्वल और आकर्षक प्रस्तुति का अनुसरण नहीं करते और गहरी आलोचना के साथ जल्दबाजी भी नहीं करते हैं। लेखक सतही फैसलों से बचता है: "मैं खुद को भारतीय लोगों के जीवन, उनके मनोविज्ञान, सदियों पुरानी भारतीय संस्कृति के इतिहास का विशेषज्ञ नहीं मानता, और मेरे ये नोट्स केवल एक प्रत्यक्षदर्शी की गवाही हैं जो एक महान देश, दोस्तों के देश में था ..." उसी समय, मुख्तार औजोव ने एक प्राचीन विश्व सभ्यता और जीवन के सकारात्मक दर्शन वाले देश में जो कुछ देखा है, उसकी गहराई में उतरने की कोशिश की है।

आज, अल्माटी से दिल्ली के लिए केवल तीन घंटे की उड़ान होती है। 1955 में, भारत आने के लिए, कजाख लेखक ने मास्को के लिए उड़ान भरी, फिर लेनिनग्राद, हेलसिंकी, स्टॉकहोम, ओस्लो, कोपेनहेगन, डसेलडोर्फ, जिनेवा, रोम, फिर यूरोप से काहिरा, फिर कराची और वहां से दिल्ली - भारत की राजधानी। यह अकारण नहीं है कि पुस्तक एक जिगिट (घुड़सवार) की कहानी से शुरू होती है जो अन्य देशों का दौरा करना चाहता था। लेखक हमें भारत की एक चुनौतीपूर्ण और यहां तक कि कठिन 45 दिनों की यात्रा के विचार पर लाता है, जिसने अपनी विशिष्टता से यात्रा की सभी कठिनाइयों को ढंक दिया जिसमें कुल 50,000 किलोमीटर भूमि और हवाई मार्ग शामिल हैं।

वह व्यक्ति बहुत भाग्यशाली है जो मूल कजाख भाषा में मुख्तार औजोव द्वारा "भारत

पर निबंध'' पढ़ सकता है; वह कजाख साहित्य में भारत पर पहली उत्कृष्ट कृति की प्रशंसा करने, सोचने, विश्लेषण करने और दुनिया के सामने पेश करने वाले लेखक की नब्ज और दिल की धड़कन को महसूस कर सकता है।

लेखक के विचारों को समझने के लिए, प्रतिनिधिमंडल द्वारा दौरा किए गए शहरों का पता लगाना महत्वपूर्ण है: वे हैं – दिल्ली, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, जयपुर, आगरा, नांगल, चंडीगढ़, बनारस, कलकत्ता, मद्रास, कोचीन, कन्याकुमारी, त्रावणकोर, त्रिवेंद्रम, मैसूर, बैंगलोर, हैदराबाद, बॉम्बे और वापस दिल्ली।

भारत सरकार ने भारत गणराज्य की वर्षगांठ मनाने के लिए सोवियत सांस्कृतिक हस्तियों के एक प्रतिनिधिमंडल को आमंत्रित किया था। लेखक सभी विवरणों के साथ दिल्ली में परेड का वर्णन करता है। जवाहरलाल नेहरू और उनकी बेटी इंदिरा गांधी से मुलाकात और अभिनंदन; सशस्त्र बलों के प्राचीन रूपों: हाथी, ऊंट और घुड़सवार सेना के जुलूस की प्रशंसा करता है। वह राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद, उपराष्ट्रपति राधाकृष्णन और भारत के प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू के साथ सोवियत प्रतिनिधिमंडल की महत्वपूर्ण बैठक पर प्रकाश डालता है। इस महत्वपूर्ण बैठक के लिए, लेखक विशेष ध्यान आकर्षित करता है। वे भारतीय राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद को उद्धृत करते हैं कि कैसे आज का भारत एक नए जीवन का निर्माण कर रहा है: ''हमने कई खंडित रियासतों से एक एकजुट गणराज्य बनाया है, हम बिना खून और उथल-पुथल के इस महान लक्ष्य तक पहुंचे हैं, और हम न केवल अपने देश में, बल्कि हर जगह शांति के लिए लड़ना जारी रखेंगे"। उपराष्ट्रपति राधाकृष्णन ने कहा, ''शांति न केवल भारत के लिए बल्कि पूरी मानवता के लिए आवश्यक है। और विश्व शांति के लिए राष्ट्रों के महान संघर्ष में, हमारा ईमानदार योगदान है, भारतीय लोगों का हिस्सा है।"

यह बहुत खुशी की बात है कि लेखक भारत के विश्वविद्यालयों के बारे में बात कर रहा है। यह पता चला है कि मानव जाति के इतिहास में पहला और सबसे पुराना विश्वविद्यालय 2000 साल पहले भारत में स्थापित किया गया था। सबसे अच्छे में से एक - दिल्ली विश्वविद्यालय से परिचित होने से सोवियत संघ और भारत के बीच लंबे समय से चली आ रही दोस्ती की गहराई साबित हुई। देश में पहली बार, दिल्ली विश्वविद्यालय में रूसी भाषाविज्ञान का एक विभाग खोला गया था। लगभग सौ छात्रों को रूसी साहित्य के कार्यों से खुद को परिचित करने का अवसर मिला।

दिल्ली में अपने प्रवास के पांचवें दिन, यूएसएसआर प्रतिनिधिमंडल ने उदयपुर की यात्रा की। उदयपुर में आतिथ्य का पहला संकेत मेहमानों और राजनेताओं के लिए एक सफेद पत्थर के महल में आवास था। लेखक विभिन्न प्रकरणों के बारे में भावुक रूप से लिखता है: महाराजा के शस्त्रागार और ग्रीष्मकालीन महल का दौरा करना; महल में पहले से अज्ञात पपीते के फल, लीची के पेड़ और पुरानी गायों का इलाज किया जाता है। औजोव ने कृष्ण मंदिर की अपनी यात्रा का विस्तार से वर्णन किया है।

16 वीं शताब्दी का वास्तुकला स्मारक दिखने में आश्चर्यजनक था: मंदिर पूरी तरह से पौराणिक चरित्र के बास-राहत से ढका हुआ था। लेखक मंदिर के रचनाकारों की प्रशंसा करता है: "... यह भारतीय लोगों की वास्तुकला की उच्चतम संस्कृति, उनके अतुलनीय श्रम और प्रतिभा का एक उदाहरण है।

मुख्तार औजोव भारतीय जीवन के छोटे छोटे दिलचस्प प्रसंगों को भी नजरअंदाज नहीं करते जैसे संकरी गलियों में बारात। कोमलता और विस्मय के साथ वह महल की बालकनी पर उदयपुर में भोर का वर्णन करते हैं। महाराजा और आम भारतीयों के आतिथ्य पर आश्चर्य होता है। भारतीय लेखकों के साथ सुकून भरी यादगार मुलाकातों का वर्णन करते हैं।

मुख्तार ओमारखानोविच औजोव असामान्य प्रतिभा वाले व्यक्ति थे। वह 1955 में भारत की यात्रा करने वाले पहले कजाख लेखकों में से एक थे। 1958 में यूएसएसआर के प्रतिनिधिमंडल के सदस्य के रूप में भारत की 45 दिवसीय यात्रा के बारे में कजाख भाषा में "भारत पर निबंध" प्रकाशित किया गया था। लेखक ने अपने यात्रा वृतांत में 45 दिनों के दौरान जो कुछ भी देखा, उसका वर्णन बहुत ही दृढ़ता और गहराई से किया है, जो निश्चित रूप से उन सभी के लिए दिलचस्प है जो भारत देश, इसके इतिहास, प्राचीन संस्कृति और रीति-रिवाजों में रुचि रखते हैं।

उदयपुर से प्रतिनिधिमंडल राजस्थान के केंद्र चित्तौड़गढ़ शहर गया। यहां लेखक हमें उत्तरी भारत के प्राचीन स्मारकों से अच्छी तरह परिचित कराता है। उदाहरण के लिए, एक मंदिर जो कि लोगों के अद्भुत बलिदान कार्य को समर्पित है, जब 16000 महिलाओं ने विदेशियों द्वारा पकड़े जाने से बचने के लिए आत्मदाह कर लिया था। या एक और दिलचस्प मंदिर जो पमनादाई को समर्पित है, जिसने अपने बेटे को मौत के घाट उतार दिया और इस तरह शाह के उत्तराधिकारी को बचाया, जिसे दुश्मन ने प्रत्यर्पित करने की मांग की थी। लेखक ने एक प्रसिद्ध कवयित्री और बार्ड मीराबाई के मंदिर का भी प्रशंसा के साथ वर्णन किया है। साथ ही, दुख भी जताता है: "... महलों और मंदिरों की सीढ़ियों पर, हर जगह भिखारी और गंदे भूखे बच्चे भीख मांग रहे थे ..." – लेखक लिखते हैं।

जयपुर में, लेखक ने ठीक ही उल्लेख किया कि अरबी, तुर्की, मंगोलियाई और भारतीय वास्तुकला एक शानदार संयोजन में विलय हो गए। औजोव ने जयपुर संग्रहालय को भारतीय अनुप्रयुक्त कलाओं का खजाना,

औआ महल के पैलेस ऑफ विंड्स, वेधशाला और "मून पैलेस" के रूप में वर्णित किया।

भारत का प्रेमपूर्वक वर्णित पशु जगत पाठक का मन मोह लेता है। और बंदरों की दुनिया के साथ परिचय महाकाव्य "रामायण" से हनुमान की एक दिलचस्प कहानी में विकसित होता है। हाथियों का वर्णन - दिलचस्प कहानियों में कि कैसे बुद्धिमान जानवर ने एक क्रूर अंग्रेज को सबक सिखाया।

अपनी पुस्तक में, मुख्तार औजोव ने मुगल वंश का बहुत सावधानीपूर्वक विवरण दिया है, जिसने तीन सौ से अधिक वर्षों तक भारत के अधिकांश हिस्सों पर शासन किया। यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि उनके पूर्वज मध्य एशिया से आए थे। लंगड़े तैमूर (तामेरलेन) के पोते काबुल के शासक बाबर ने सबसे पहले भारत पर कब्जा किया था। बाबर के पुत्र हुमायूँ, पौत्र अकबर, प्रपौत्र शाहजहाँ और बाबर के अन्य वंशज एक तुर्क वंश थे और उन्हें महान मुगल कहा जाता था। मुगल वंशजों में से अंतिम, बहादुर शाह, को प्रसिद्ध सिपायन विद्रोह के बाद 1857 में अंग्रेजों द्वारा हटा दिया गया था।

दुनिया के सबसे महान आश्चर्यों में से एक, ताजमहल को लेखक द्वारा दिल को छू लेने वाले और रहस्यमय तरीके से प्रस्तुत किया गया है। लेखक लिखते हैं कि चांद की रोशनी से रात में महान मकबरे की सैर करना रहस्य और रोमांच से भरा होता है, जब सफेद संगमरमर के ताजमहल से जादुई चमक निकलती है, और ताजमहल की खूबसूरती दूसरी दुनिया जैसी प्रतीत होती है जिसे जरूर देखना चाहिए। जैसे ही प्रतिनिधिमंडल पूर्णिमा के दौरान महान स्मारक पर पहुंचा, हर किसी को यकीन था कि वे रात में ताजमहल देखेंगे। औजोव का चंद्रमा के नाटकीय व्यवहार का वर्णन – जब हर कोई चांद की राह देख रहा था, साथ ही पूरी किताब में चंद्र आकाश का वर्णन, महान कजाख लेखक की कलात्मक शैली की सुंदरता को रेखांकित करता है।

उन वर्षों के प्रमुख निर्माण स्थल, नांगलस्ट्रॉय की यात्रा, जो 1959 में पूरी होने की उम्मीद थी, ने लेखक को एक नए जीवन के निर्माण में स्वतंत्र भारत की सफलता के विषय के साथ प्रेरित किया। पंजाब की पांच नदियों में से एक पहाड़ी नदी सतलुज पर बना नांगल बांध भारत का कल है। यह अत्यधिक सुसंस्कृत और अत्यधिक तकनीकी राष्ट्र-निर्माण का एक उदाहरण है जहां पूरा तकनीकी स्टाफ भारतीय है। "कोई अंग्रेजी इंजीनियर नहीं हैं" – लेखक का कहना है।

लेखक जीवन के सभी क्षेत्रों में भारत की गहन क्षमता की प्रशंसा करते हैं। "वास्तव में, एक विशाल शक्ति!"

औजोव का अकादमिक ज्ञान विशेष रूप से स्पष्ट तब होता है जब हम प्रसिद्ध फ्रांसीसी वास्तुकार ली कार्बूजिए द्वारा डिजाइन किए गए चंडीगढ़ के नए शहर का विस्तृत विवरण पढ़ते हैं।

औजोव की राय में, विश्वास का शहर बनारस, शास्त्रीय जनसंख्या वाले भारत का एक मॉडल बन गया। लेखक पाठक के ध्यान पर जोर देता है कि भीड़ के बावजूद, मेहमानों ने कोई लड़ाई या झगड़ा नहीं देखा, डांट और डर के बिना शांति थी, हर जगह नशे का तिरस्कार किया गया था। "वहां क्रोध का सबसे हिंसक प्रकोप केवल भौंहों को एक साथ खींचकर और दृढ़ता से संकुचित होंठों द्वारा दिखाया जाता है।" लेखक इस बात पर जोर देता है कि भारत में कई लोग भूख, बीमारी और अन्य बीमारियों से पीड़ित हैं। "लेकिन भारतीयों की काली आँखें हमेशा धैर्य और परोपकार से भरी होती हैं।"

लेखक दार्शनिक रूप से दर्शाता है कि नैतिक अनुशासन अस्तित्व की स्थितियों द्वारा निर्धारित किया जाता है। जिन लोगों को निकटता से रहना पड़ता है, उनके जीवन और शिष्टाचार कम आबादी वाले देशों के निवासियों से स्पष्ट रूप से भिन्न होते हैं। उनका मानना है कि हर भारतीय के भीतर एक अदृश्य पैमाना होता है जिस पर सभी कार्यों को स्वचालित रूप से तौला जाता है।

औजोव प्रशंसा करते हैं: "वास्तव में, यह एक शांतिपूर्ण और दयालु राष्ट्र है। भारतीय राज्य के इतिहास में जो दुनिया के सबसे पुराने राज्यों में से एक है, विस्तार के लिए कोई युद्ध नहीं लड़े गए। इसके विपरीत, भारतीयों की विश्वास, सहिष्णुता, शांति और नम्रता का उपयोग कई क्रूर और अतृप्त विजेताओं द्वारा बेशर्मी से किया गया था।

लेखक ने बनारस जो भारत के सबसे प्राचीन शहरों में से एक – मंदिरों का एक शहर है – का विस्तार से और बारीकी से वर्णन किया है। वह हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म के पालने में तीर्थयात्रा की परंपरा का खुलासा करते हैं, जहां पवित्र नदी गंगा बहती है। हिंदू धर्म के पंडितों - पुजारियों की गतिविधियों का वर्णन करते समय लेखक के गहरे विश्वकोश ज्ञान पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है; जैन धर्म का सार; बुद्ध आदि का जीवन का विस्तृत ज्ञान लेखक को है।

बार-बार लेखक बनारस के बुद्धिजीवियों के साथ बैठक पर आश्चर्य व्यक्त करता है: "और यह भूलना असंभव है कि बड़ी, चौकस और मैत्रीपूर्ण आंखें हमें कैसे देखती थीं, कैसे दोस्ताना सफेद-दांत वाली मुस्कान चमकती थी ... हम चले गए, जैसे कि हम अपने महान देश के लिए, अपने लोगों के लिए इन लोगों की भाईचारे की भावनाओं से नशे में डूब गए थे ... हमारी आधी यात्रा बीत चुकी है, लेकिन सुंदर भारत की कोई भी तस्वीर दूसरी तस्वीर को दोहरा नहीं पाई है।

मित्र देश में होने के नाते, मुख्तार उमरखानोविच अभी भी अपने मूल कजाकिस्तान को याद करते हैं। वह बंगाल के बांस के साथ लंबे अल्माटी चिनार की तुलना करते हैं।

कलकत्ता में, आम के फल ने

प्रतिनिधिमंडल के सभी प्रतिभागियों का ध्यान आकर्षित किया। एक आम के पेड़ पर प्रवचन – जो अपनी लंबी उम्र के लिए प्रसिद्ध है और जिसका मुकुट एक विशाल स्थान रखता है – मानव जाति की एक चेतन संपत्ति के रूप में प्रकृति के प्रति लेखक के सम्मानजनक दृष्टिकोण पर जोर देता है। कज़ाख शब्द "मांगी" का अर्थ शाश्वत है। न ही आम का पेड़ भारतीय संस्कृति का पेड़ है!

लेखक इस बात से हैरान है कि यहां फिल्म उद्योग अच्छी तरह से विकसित है किंतु थिएटर का विकास होने में अभी बहुत कुछ बचा हुआ है। और यह कि कलकत्ता वैसे तो भारत का सबसे अधिक आबादी वाला शहर है किंतु इसमें भी कई गरीब और भिखारी हैं।

लेखक ने मद्रास के राज्यपाल की यात्रा के दौरान तमिल में लिखने वाले साहित्यकारों और विद्वानों की एक सभा में दिलचस्प मुठभेड़ों का वर्णन किया है। यहां उन्होंने भारत में बहुरंगी भाषाई स्थिति का विस्तार से खुलासा किया और जोर दिया कि अंग्रेजी की सर्वव्यापीता के मुद्दे के लिए एक बुद्धिमान, संवेदनशील संकल्प की आवश्यकता है। लेखक मद्रास के पास के गांवों के बारे में गर्मजोशी से बात करता है, जहां लोग मजबूत, सतर्क, हंसमुख दिखते थे। "वहां भिखारियों को हमने नहीं देखा। किंतु, शहर में गरीबी की तस्वीर, जैसे कलकत्ता में ..."।

प्रसिद्ध मद्रास विश्वविद्यालय की यात्रा ने यूएसएसआर के पूरे प्रतिनिधिमंडल को प्रभावित किया। यह छात्रों की संख्या के मामले में दुनिया के सबसे बड़े विश्वविद्यालयों में से एक है। सभी ब्रिटिश विश्वविद्यालयों की तुलना में यहां अधिक छात्र हैं - पैंतीस हजार।

केरल में यात्रा का पहला शहर कोचीन था। लेखक बंदरगाह शहर की अद्भुत सुंदरता का वर्णन करता है, जहां स्टीमशिप, नौकाएं और पाल सफेद हो जाते हैं। एक महंगे होटल में हवादार हल्के नाजुक रेशम से बने मसाकानों से मेहमान हैरान रह गए। कजाकिस्तान में, एक मसकाना मच्छरों के खिलाफ एक धुंध कैनोपी है।

त्रावणकोर में प्रसिद्ध अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार विजेता कवि और लेखक वलाथोलो (वल्लाथोल नारायण मेनन) की यात्रा ने कई छाप छोड़ी। उन्होंने कहा, 'भारत में सभी दोस्ताना भ्रातृ मिलन में से, यह असाधारण सौहार्द के लिए यादगार था। एक-दूसरे के लिए दो महान राष्ट्रों का आकर्षण स्पष्ट था, "- लेखक ने कहा।

भारत के माध्यम से अपनी यात्रा का वर्णन करते हुए, लेखक ईमानदारी से देश के सुंदर भविष्य में विश्वास करता है, लोगों की सहिष्णुता, आतिथ्य और उदारता पर जोर देता है। वह लिखते हैं कि लाखों हताश लोगों के बीच कोई सामूहिक चोरी, हत्या और रक्तपात नहीं है।

औजोव लगातार भारत की प्रशंसा करते हैं: "हाल ही में हम हिमालय की तलहटी में थे, और अब केप कामोरिन (कन्याकुमारी) में, जहां बंगाल की खाड़ी और अरब सागर का पानी मिलता है! लेखक ने त्रिवेंद्रम के पास पद्मनाभपुरम के लकड़ी के महल का विस्तार से वर्णन किया है, जो वास्तव में वास्तुकला की एक भारतीय रचना है और इसकी उपस्थिति में अरबों, ईरानियों, अफगानों, मोंगोलों की वास्तुकला कुछ भी नहीं है।

भारत का हर शहर खास है। उदाहरण के लिए, मैसूर में सबसे उल्लेखनीय बात आर्ट गैलरी थी। मैसूर में आप हाथियों के जीवन और आदतों के बारे में बहुत कुछ सीख सकते हैं। कावेरी नदी पर तीन किलोमीटर से अधिक ऊंचे बांध ने सोवियत संघ के पूरे प्रतिनिधिमंडल को प्रभावित किया।

लेखक की असामान्य रूप से शानदार कलात्मक शैली लुभावनी है। विशेषण, तुलना और वाक्यांशात्मक मोड़ आपको पुस्तक से खुद को दूर नहीं करने देते हैं, जिसे आप बड़े ध्यान से पढ़ते हैं। उदाहरण के लिए, वृंदावन के बगीचे में रात का वर्णन: "... दुनिया काले मखमल में तैयार थी, केवल आकाश में सितारों की चमक के साथ कढ़ाई की गई थी। मिरेकल गार्डन एक मखमली गद्दी पर एक गहने की तरह चमक रहा था। यह अकारण नहीं है कि इसे मैसूर का गौरव कहा जाता है।"

बैंगलोर के बाद हैदराबाद की यात्रा थी। यह पता चला, जैसा कि लेखक वर्णन करता है, "यहां चार भाषाएं बोली जाती हैं: उर्दू, तेलुगु, मराठी और कन्नड़। हालांकि, मंत्रालयों और विभागों में सभी व्यावसायिक पत्र केवल अंग्रेजी में प्रयोजित किए जाते हैं।"

अजंता और एलोरा की यात्रा, पूरी यात्रा

में एक मील का पत्थर थी। "अजंता न केवल प्राचीन भारतीय गुरुओं की उच्च कला और उदार प्रतिभा का स्मारक है, बल्कि उनकी भावना की महानता का भी प्रमाण है। सबसे मूल्यवान भित्तिचित्र हाथों में कमल के फूल के साथ बैठे बुद्ध की छवि है। बुद्ध की आँखें इस तरह से चित्रित की गई हैं कि वे सीधे आपकी आत्मा में देखती हुई प्रतीत होती हैं।

एलोरा के मंदिरों और पत्थर की मूर्तियों के उदाहरण पर, लेखक ने सही लिखा है कि मूर्तिकला, बास-राहत और अलंकरण की कला को यहां उच्चतम पूर्णता में लाया गया है। "अजंता और एलोरा में पत्थर वास्तव में गाते हैं!"

बंबई में भारत की एक और अप्रत्याशित खोज हुई। सोवियत प्रतिनिधिमंडल के सदस्य आश्चर्यचकित थे कि रचनात्मक बुद्धिजीवियों के साथ एक बैठक में, बुद्धिजीवी उत्साहपूर्वक उर्दू में महान कजाख कवि जांबुल का पाठ कर रहे थे। भारत में कजाख साहित्य के ऐसे ज्ञान की किसी को उम्मीद नहीं थी! लेखक लिखते हैं कि भारत में जाति व्यवस्था, अछूतों की समस्याओं, सती आत्मदाह के संस्कार, बॉम्बे में पारसियों के महत्व और उनके अनुष्ठानों के बारे में भारतीय मित्रों के साथ बातचीत की स्पष्टता के लिए बॉम्बे के दिन यादगार थे।

ऐसा लगता है कि मैं – 1993 से – भारत को 30 वर्षों से जानता हूं, जब मैं कजाकिस्तान से "कलाक्षेत्र" संस्थान में भारतीय शास्त्रीय नृत्य भरतनाट्यम का अध्ययन करने के लिए भारत सरकार के भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद से छात्रवृत्ति प्राप्त करने वाला पहला व्यक्ति था। आईसीसीआर के एक छात्र के रूप में मुझे मुख्तार ओमारखानोविच के बारे में लिखने वाले अधिकांश स्थानों का दौरा करने का अवसर मिला। इसी समय, मुख्तार औजोव के साहित्यिक कार्य को प्रसिद्धि प्राप्त होती है, जो निस्संदेह प्रेरणादायक है। यह देखी गई जगहों की याद दिलाता है, प्राचीन देश के इतिहास को प्रकट करता है, और सभी के लिए दिलचस्प है, चाहे आप भारत गए हों या नहीं।

हालांकि, मुझे महान लेखक से असहमत होना चाहिए कि देश में कोई थिएटर नहीं है, कि मुखर और नृत्य कला निम्न स्तर पर हैं और यूरोपीय कला से पीछे हैं। इस तरह की टिप्पणियों का कारण बहुत सरल है: यूएसएसआर प्रतिनिधिमंडल के व्यस्त यात्रा कार्यक्रम में आयोजकों ने दुनिया भर में प्रसिद्ध पेशेवर कला संस्थानों की यात्रा को शामिल नहीं किया। यह अफ़सोस की बात है कि मुख़्तार ओमरखानोविच को मद्रास में "कलाक्षेत्र", केरल में "केरल कलामंडलम", दिल्ली में "श्रीराम भारतीय कला केंद्र" और उस समय संगीत और नृत्य की अन्य सक्रिय और समृद्ध अकादमियों का दौरा करने का अवसर नहीं मिला। पुस्तक के अंत में, लेखक ने लिखा कि "भारतीय संस्कृति में महान धन, बहुत मौलिकता है" – लेखन सहज रूप से भारतीय कला की ख़ासियत को महसूस करते हैं। लेखक ने अनेक बार सही कहा है कि अंग्रेजों ने भारतीय संस्कृति के विकास को बाधित किया था। अंग्रेजों के शासन में भारतीय संस्कृति सामंतवाद के समय के स्तर पर हमेशा के लिए बनी रहती।

प्रसिद्ध सांस्कृतिक हस्तियों के साथ बैठकों के बारे में बात करते हुए, लेखक ने प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता राज कपूर, लेखक और पटकथा लेखक ख्वाजा अहमद अब्बास और कवि अली-सरदार जाफरी का नाम लिया। दुर्भाग्य से, शास्त्रीय गायन या भारतीय शास्त्रीय नृत्य के प्रसिद्ध कलाकारों से मिलने का कोई उल्लेख नहीं है। और यह स्पष्ट रूप से उपर्युक्त कारण से ही है।

सोवियत प्रतिनिधिमंडल का भारत प्रवास जवाहरलाल नेहरू के साथ एक यादगार बैठक के साथ समाप्त हुआ। मैं इस लेख को मुख्तार औजोव की पुस्तक से भारत के प्रधानमंत्री की दयालु और बुद्धिमान सलाह के साथ समाप्त करना चाहता हूं।

उन्होंने कहा, 'जिन लोगों को राष्ट्रों के बीच मध्यस्थ बनने के लिए मौका दिया गया है, उन्हें एक विशेष जिम्मेदारी, एक महान कर्तव्य महसूस करना चाहिए... शुद्ध विचारों के लिए शुद्ध आत्मा की आवश्यकता होती है। महान मित्रता बदले में महान दोस्ती के लायक है। आप एक देश को दूसरे को जानने में मदद करते हैं। आपसी संपर्कों की व्यापक सड़क एक वांछनीय और आशाजनक सड़क हो सकती है।

मुख्तार औजोव द्वारा "भारत पर निबंध" को 20वीं शताब्दी में लिखे और प्रकाशित भारत पर सर्वश्रेष्ठ कार्यों में से एक कहा जा सकता है। 1955 में, मुख्तार औजोव ने पहली बार कज़ाख साहित्य में भारतीय विषय की खोज की।

उपसंहार

30 सितंबर, 2022 को "भारतीय शास्त्रीय नृत्य और योग केंद्र, अल्माटी-कजाकिस्तान" ने मुख्तार औजोव की 125 वीं जयंती के लिए एक रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत किया। पिछली शताब्दी के मध्य में लिखी गई उनकी पुस्तक "भारत पर निबंध" ने अद्वितीय कार्यक्रम को प्रेरित किया। इसमें लेखक द्वारा वर्णित भारत के प्रत्येक क्षेत्र के नृत्यों और गीतों की प्रस्तुति के साथ लेखक के बेटे मूरत औजोव की आवाज़ में उनकी पुस्तक के अंश शामिल थे। यह परियोजना अल्माटी में मुख्तार औजोव के हाउस-संग्रहालय में आयोजित की गई थी। मुख्य अतिथि हाउस-संग्रहालय के निदेशक और औजोव के परिवार के प्रतिनिधि श्री दियार कुनायेव और कजाकिस्तान में भारतीय दूतावास के कौंसल श्री अमित कुमार मिश्रा थे।

• • •

भरतनाट्यम कोरियोग्राफर, आईसीसीआर
पूर्व छात्र, "भारतीय शास्त्रीय नृत्य और
योग केंद्र, अल्माटी-कजाकिस्तान" की
संस्थापिका।

सप्त-सिंधु क्षेत्र में पत्रकारिता और लाला लाजपत राय

– डॉ. जयप्रकाश सिंह*, संजीव कुमार**

लाजपत राय द्वारा समय-समय पर अलग-अलग प्रमुख शख्सियतों को लिखे गए खुले पत्र स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास पर प्रकाश डालने के साथ ही उनके पत्रकारिता कौशल का भी गहरा बोध करवाने वाले हैं। उनके द्वारा सर सैय्यद अहमद खान को लिखे बहु-चर्चित खुले पत्रों के अलावा महात्मा गांधी, सेक्रेटरी आफ स्टेट एडविन मांटेग्यू, ब्रिटिश प्रधानमंत्री डेविड लोयड जार्ज, श्रीनिवास शास्त्री, मोती लाल नेहरू एवं संपादक के नाम 'एन अपील टू माय कंट्रीमैन' जैसे खुले पत्र विशेष स्थान रखते हैं।

सामान्यतया हरियाणा के आदिबद्री से लेकर कैलाश मानसरोवर के स्थित क्षेत्र को सप्तसिंधु क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र को पहले इसकी सात नदियां परिभाषित करती थीं, जिसमें सिंधु का केन्द्रीय स्थान था। इसी कारण यह क्षेत्र सप्तसिंधु क्षेत्र कहलाया। इसी क्षेत्र का एक भाग आज भी पांच नदियों द्वारा परिभाषित होता है और पंजाब कहलाता है। सप्तसिंधु क्षेत्र में पत्रकारिता का अपना इतिहास और विशिष्ट प्रकृति रही है और इस क्षेत्र में पत्रकारिता को तेवर प्रदान करने और पत्रकारीय मूल्यों को स्थापित करने में लाला लाजपत राय की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह भी एक स्थापित तथ्य है कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में पत्रकार क्रांतिकारियों का एक बड़ा एवं महत्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वराज्य और संग्राम की भावना को जनमानस के अन्तर्मन में स्थापित करने हेतु जन संचार के महत्व को यह क्रांतिकारी समय रहते ही भांप गए थे, इसलिए इन्होंने संग्राम की बाकी गतिविधिओं के साथ-साथ ही पत्रकारिता को भी आवश्यक उपकरण के रूप में अपनाया। सभी विख्यात क्रांतिकारी जैसे कि लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, भगत सिंह, गणेशशंकर विद्यार्थी, शिशिर घोष और लाला लाजपत राय इत्यादि लोग प्रखर पत्रकार भी रहे। समय-समय पर इनके द्वारा लिखित लेख, संपादकीय, निजी डायरी एवं पत्र इत्यादि समकालीन इतिहास के प्रमाणिक दस्तावेज़ होने के साथ-साथ इनके पत्रकारिता मूल्यों को समझने का भी प्राथमिक स्रोत हैं। इन विख्यात पत्रकार क्रांतिकारियों में "पंजाब केसरी" लाला लाजपत राय एक प्रमुख स्थान रखते हैं। स्वतंत्रता के वाद समय में लाला लाजपत राय के सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन पर तो यथेष्ट शोधकार्य हुआ है, पर उनके व्यक्तित्व के एक महत्वपूर्ण पक्ष उनकी पत्रकारिता पर कोई विशेष कार्य नहीं मिलता है। इस महत्वपूर्ण पक्ष को समझे बिना उनके व्यक्तित्व एवं कार्यों को संपूर्णता में नहीं समझा जा सकता। सप्तसिंधु क्षेत्र की पत्रकारिता को समझने के लिए लाला लाजपत राय की पत्रकारिता और लेखन को समझना आवश्यक है। प्रस्तुत शोध पत्र लाला लाजपत राय द्वारा लिखे गए एतिहासिक महत्व के खुले पत्रों के विशेष संदर्भ में उनके लेखन में निहित पत्रकारिता मूल्यों को समझने का प्रयास है।

शिक्षा एवं पत्रकार जीवन- पत्रकारिता लाला लाजपत राय के सार्वजनिक जीवन का एक अभिन्न अंग रही है। लाजपत राय का सार्वजनिक जीवन उनकी किशोरावस्था से ही प्रारम्भ हो गया था।। उनके सार्वजनिक जीवन की शुरुआत का श्रेय ही पत्रकारिता को जाता है। प्रैस के लिए लेखन एवं यहाँ तक कि कुछ जरनल्स के सम्पादन कार्य की शुरुआत भी उन्होंने अपनी किशोर अवस्था में ही कर दी थी जब लाहौर में वह आर्य समाज के संपर्क में आए एवं आर्य समाज की पत्रिका के लिए लेखन, सम्पादन कार्य शुरू किया (चंद, 1966)।

लाजपत राय ने अपने पैतृक स्थान पंजाब के एक छोटे से कस्बे जगरांव से स्कूली शिक्षा पूर्ण कर उच्च शिक्षा के लिए फरबरी 1881 में गवर्नमेंट कॉलेज लाहोर में कला इंटरमिडीएट कक्षा में दाखिला ले लिया। कला इंटरमिडीएट के साथ-साथ उन्होंने लॉ स्कूल में भी दाखिला लिया पर परिवार की आर्थिक तंगी के कारन दो साल में ही पढ़ाई

बीच में छोड़नी पड़ी। वह कला इंटरमिडीएट के पहले साल की परीक्षा में फेल हो गए थे पर 1883 में न्याय की पहले साल की परीक्षा उतीर्ण कर ली जिससे उन्हें "मुख्तार" के तौर पर प्रैक्टिस करने का लाईसेंस मिल गया। परिवार की कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण उन्हें बीच में ही पढाई छोड़नी पड़ी एवं जगरांव आकर मुख्तार के तौर पर प्रैक्टिस शुरू कर दी। तीन साल के वाद उन्होंने स्व- अध्ययन के बलबूते वकील की परीक्षा उतीर्ण की जिसमें उन्होंने तीस उम्मीदवारों में से दूसरा स्थान प्राप्त किया(गणेश, 1907)। लाहौर में बिताए उनके यह दो साल ही उनके आने वाले सार्वजनिक जीवन, क्रांतिकारी गतिविधियों एवं पैने लेखन की नींव बने। यह वह समय था जब 1857 की क्रांति के बाद देश नए सिरे से अँग्रेजी हकूमत के खिलाफ संघर्ष के लिए तयार हो रहा था। लाहौर उस समय पंजाब में नव जागरण की गतिविधियों के एक प्रमुख केंद्र के रूप में स्थापित हो चुका था एवं गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर में पंजाबियों की पहली अँग्रेजी शिक्षित पीढ़ी तैयार हो रही थी। लाहौर का वातावरण उस समय सार्वजनिक चर्चाओं एवं जगह-जगह नव शिक्षित युवाओं की सार्वजनिक बहसों से परिपूर्ण था। 1863 में बाबू नवीन चंदर राय द्वारा लाहौर ब्रह्म-समाज की स्थापना हो चुकी थी तो वहीं स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रवास के कारन आर्य समाज ने भी लाहौर में मजबूती से पैर जमा लिए थे। इस नव-जागरण के वातावरण ने लाजपत राय की सोच को फ्रेम के इतर विशाल एवं दूरगामी राष्ट्रवादी संदर्भों में विकसित कर दिया था (चंद, 1966)।

परिवार की आर्थिक व्यवस्थाओं के कारण कुछ सालों के अंतराल के वाद 1886 में लाजपत राय वकील के तौर पर प्रैक्टिस हेतु हिसार चले गए। यहीं से उनके जीवन में एक सबसे बड़ा मोड आता है जिसने वाद के वर्षों के लिए उनके जीवन की एक पक्की दिशा निर्धारित कर दी, और यह दिशा थी राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए जीवन पर्यंत कार्य। अपनी स्थापना के दो वर्षों बाद 1887 में काँग्रेस ने मद्रास अधिवेशन में प्रतिनिधि सरकार व्यवस्था की जोरदार वकालत की एवं इसके साथ ही नौकरशाही में प्रतियोगिता परीक्षा के आधार पर चयन की भी मांग की गयी (ब्रदर्स, 1888)। कांग्रेस द्वारा प्रतिनिधि शासन की इस मांग के बाद प्रसिद्ध मुस्लिम नेता सर सैय्यद अहमद खान इस व्यवस्था पर अपने पूर्व स्टैंड से बदल गए एवं अलगाव युक्त शुद्ध मुस्लिम राजनीति की तरफ मुड़ गए। 28 दिसंबर 1887 को सर सैय्यद अहमद खान ने लखनऊ में मोहम्मडन एजुकेशनल काँग्रेस के दूसरे सत्र को संबोधित करते हुए काँग्रेस पर तीखा हमला बोला बल्कि भारत में मुस्लिमों के राजनीतिक भविष्य पर एक लंबा व्याख्यान देते हुए उन्हें को काँग्रेस से दूर रहने की ताकीद भी की (अख्तर, 2015)।

सैय्यद अहमद खान के दृष्टिकोण में आए इस परिवर्तन ने लाजपत राय को अंदर तक प्रभावित किया। उन्होंने 1888 में सैय्यद अहमद खान को चार खुले पत्र लिखे जो न केवल लाजपत राय के आगामी सार्वजनिक गतिविधियों, पैने लेखन, राजनीतिक दिशा एवं विचारधारा की मजबूत आधारशिला साबित हुए बल्कि स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में यह पत्र सदा के लिए अपना एक विशेष स्थान सुरक्षित कर गए। यह पत्र उन्होंने तब लिखे जब वह मात्र 23 वर्ष के एक नवयुवक थे। इन पत्रों ने अचानक से लाजपत राय को राष्ट्र पटल पर स्थापित कर दिया। पत्रों के महत्व का अंदाज़ा इन तथ्यों से लगाया जा सकता कि पहले यह पत्र उर्दू "कोहिनूर" में श्रृंखलाबद्ध रूप में प्रकाशित हुये, पश्चात श्रंखलाबद्ध रूप में अँग्रेजी ट्रिब्यून ने प्रकाशित किए एवं चौथी इलाहाबाद काँग्रेस से ठीक पहले खुद काँग्रेस संस्थापक ए.ओ.ह्यूम ने इनका अँग्रेजी अनुवाद कर पंफ्लेट के रूप में बड़े स्तर पर वितरण करवाया (नन्दा, 2003)।

हिसार जिला अदालत में लाजपत राय एक कामयाब वकील के नाते स्थापित हो चुके थे और उनकी मासिक आय भी अच्छी ख़ासी हो चली थी। पर अपनी वकालत और जागरण गतिविधियों को बड़े स्तर पर विस्तार देने के लिए उन्होंने दोबारा लाहौर का रूख किया एवं लाहौर चीफ कोर्ट में वकालत शुरू कर दी। लाहौर के इस दूसरे कार्यकाल के बाद उनका ज्यादातार समय आर्य समाज, लोक शिक्षा, पब्लिक मीटिंग, लेखन एवं सम्पादन कार्यों में लगने लगा।

1904 में साप्ताहिक "पंजाबी" में उन्होंने सम्पादक के रूप में विधिवत कार्य करना प्रारंभ किया। अँग्रेजी ट्रिब्यून उस समय एक प्रमुख समाचार पत्र का स्थान अर्जित कर चुका था, जिसे ज्यादातार उच्च शिक्षित और सम्भ्रांत वर्ग द्वारा पढ़ा जाता था। लाजपत राय और उनके प्रमुख आर्य समाजी साथी ट्रिब्यून की राष्ट्र विषयों पर नीति से खुश नहीं थे। सभी राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत अपना अपना समाचार-पत्र चलाना चाहते थे, जिससे स्वतंत्रता संग्राम संबन्धित विषयों को सम्भ्रांत वर्ग तक अपनी लाइन अनुसार पहुंचाया जा सके। हालांकि लाला लाजपत राय इसके अधिकारिक संपादक या व्यवस्थापक नहीं थे पर हर कोई जानता था कि "पंजाबी" के पीछे असली स्तम्भ लाजपत राय ही थे। खुद बाल गंगाधर तिलक द्वारा महाराष्ट्र के एक युवा श्री आठवले को इसका संपादक नियुक्त किया गया। हालांकि यह अखबार ज्यादा देर तक नहीं चल सका और इसके संपादक व प्रबन्धक को हिरासत में ले लिया गया पर इस समाचार पत्र ने तात्कालिक पंजाब के वातावरणको तूफानी रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह समय देश में स्वराज, स्वदेशी और बहिष्कार लहर का समय था।इसके साथ ही तिलक और अरविंद घोष की गरम विचार या वामपंथी राजनीतिक धारा के उदय का भी यही समय था। बंगाल विभाजन के कारण देश पूरी तरह से आंदोलन के उफान पर था। बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब उस समय गरम विचार

की राजनीति का केंद्र बने हुये थे। इस गरम विचार राजनीतिक वातावरण को धार देने में जिन तीन क्रांतीकारियों और उनके समाचार पत्रों की प्रमुख भूमिका थी उनमें महाराष्ट्र में लोकमान्य तिलक का "केसरी" बंगाल में अरविंद का "वंदे मातरम" और पंजाब में लाजपत राय के "पंजाबी" का नाम आता है (चंद, 1966)।

इसके बाद लाजपत राय को मांडले निर्वासन में भेज दिया गया। यहाँ भी वह लगातार लेखन और अध्ययन में लगे रहे। संपादक के रूप में लाजपत राय का अगला प्रयास प्रथम विश्व युद्ध के साये में आता है। विश्व युद्ध का सारा समय वह निर्वासित रूप में विदेश में रहे। अमेरिका में रहते हुए उन्होंने बाकी देशों में भारत केंद्रित विमर्श की ज़रूरत को समझते हुये मासिक "यंग इंडिया" का प्रकाशन शुरू किया। यह पत्र उनके द्वारा स्थापित इंडिया होम रूल संस्था द्वारा किया गया था। जहां यह ध्यान करने योग्य है कि आगे चलकर महात्मा गांधी जी ने भी अपने प्रसिद्ध समाचार पत्र का नाम "यंग इंडिया" ही रखा।

विश्व युद्ध समाप्त होने के बाद लाजपत राय भारत लौट आए। निर्वासन के इन वर्षों में वह अमेरिका, इंग्लैंड और जापान इत्यादि आधुनिक देशों में लोक विमर्श का उच्चतर स्तर नजदीक से अनुभव कर आए थे। बड़े स्तर पर जनमानस को जागरूक करने में जनभाषा का महत्व वह जान चुके थे, इस तथ्य को ध्यान में रख उन्होंने एक उर्दू दैनिक समाचार पत्र और एक साप्ताहिक अँग्रेजी जर्नल के प्रकाशन को अपने प्राथमिक कार्य में रखा। उनके लौटने के कुछ ही समय में दैनिक उर्दू "वंदे मातरम" का प्रकाशन शुरू हो गया। लाला लाजपत राय इसकी स्टॉक कंपनी के प्रबंध निदेशक बने। शुरू होते ही यह समाचार-पत्र रातों रात छा गया, यह केवल लाजपत राय के नाम के कारण नहीं बल्कि यह अपने उत्पादन, कलेवर, सज्जा, रिपोर्टिंग, समाचार सेवा और समाचार मूल्यों में अपने समकालीन पत्रों से कहीं आगे था। 'वंदे मातरम' ने पत्रकारिता में एक शिक्षण स्कूल के नाते ख्याति अर्जित की और यहाँ काम किए हुये लोगों को दूसरे अदारों में उच्च वेतन पर हाथों हाथ रख लिया जाता था। यह पत्र अंग्रेज़ हकूमत विरुद्ध तीखे स्टैंड के लिए प्रसिद्ध था एवं एक समय में इसके आधा दर्जन कर्मचारी जेल में थे। इस पत्र का सबसे महत्वपूर्ण योगदान असहयोग आंदोलन में माना जाता है। असहयोग आंदोलन का एक प्रमुख प्रोग्राम था विधानसभाओं का बहिष्कार, जिसका श्रेय इस समाचार पत्र को जाता है क्योंकि सबसे पहले इस बहिष्कार का सुझाव लाजपत राय द्वारा इस पत्र में ही दिया गया था। इस सुझाव ने देश व्यापक विमर्श में रातों रात जगह बना ली एवं महात्मा गांधी जी ने अपने पत्र ''यंग इंडिया'' के माध्यम से इस सुझाव का समर्थन किया।इसके उपरांत इस सुझाव को काँग्रेस ने 1920 के अपने विशेष सत्र में इसे अपने आधिकारिक प्रोग्राम के नाते पास किया। लाजपत राय साप्ताहिक जर्नल में अमेरिकन "द नेशन" और "न्यू स्टेट्समैन" के स्टैंडर्ड को अत्यधिक पसंद करते थे और इसी स्टैंडर्ड का साप्ताहिक वो भारत में शुरू करना चाहते थे। इस विचार के बाद उन्होंने साप्ताहिक "द पीपल" का प्रकाशन किया, जिसे गंभीर राजनीतिक विषयों पर साप्ताहिक समीक्षा के एक उच्च गुणवत्तापूर्ण समाचार-पत्र के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। इस क्षेत्र में इस समाचार-पत्र का स्थान गांधी जी के यंग इंडिया के के बाद सबसे प्रमुख रूप से आता था। संपादक के नाते लाजपत राय के स्थान का अंदाज़ा पत्रकारिता में उनके मशहूर शागिर्द रहे लाला फिरोज चंद के इस कथन से लगाया जा सकता है कि "चार्ल्स फ्रेयर एंड्रयू, जिनके पास उनके पत्रकारिता कार्य को गहराई से देखने का पर्याप्त अवसर था और जो इन चीजों के सक्षम निर्णायक थे, उनपर दबाव बनाते रहे कि वह बाकी सारी सार्वजनिक गतिविधिओं से हट जाएँ और भारत को एक राष्ट्रीय अँग्रेजी दैनिक दें। इससे देश में जनमत निर्माण के लिए वह वही करेंगे जो उस समय ब्रिटिश जनमत के लिए सी.पी. स्काट का "मांचेस्टर गार्जियन" कर रहा था" (चंद, 1966)।

खुले पत्र

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में क्रांतिकारियों के निजी दस्तावेजों में से उनके द्वारा समय-समय पर लिखे पत्रों को एक विशेष स्थान प्राप्त है। इन पर वर्तमान समय में भी यथेष्ट विमर्श, प्रकाशन एवं शोध होता आ रहा है। इन पत्रों में चाहे वह भगत सिंह द्वारा जेल से अपने परिवार को लिखा अंतिम पत्र हो, चाहे महात्मा गांधी द्वारा पूना के आगा खान पैलस से अतिरिक्त सचिव को लिखा पत्र हो या लाजपत राय द्वारा सैय्यद अहमद खान को लिखे खुले पत्र हों, यह पत्र भारतीय स्वतंत्रता संग्राम इतिहास के प्रमाणिक और प्राथमिक दस्तावेज़ हैं। इनमें से लाजपत राय द्वारा समय-समय पर अलग-अलग प्रमुख सख्शियतों को लिखे गए खुले पत्र स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास पर प्रकाश डालने के साथ ही उनके पत्रकारिता कौशल का भी गहरा बोध करवाने वाले हैं। उनके द्वारा सर सैय्यद अहमद खान को लिखे बहु-चर्चित खुले पत्रों के अलावा महात्मा गांधी, सेक्रेटरी आफ स्टेट एडविन मांटेग्यू, ब्रिटिश प्रधानमंत्री डेविड लोयड जार्ज, श्रीनिवास शास्त्री, मोती लाल नेहरू एवं संपादक के नाम 'एन अपील टू माय कंट्रीमैन' जैसे खुले पत्र विशेष स्थान रखते हैं। चूंकि लाजपत राय एक कुशल पत्रकार भी थे इसलिए उनके यह पत्र उच्च पत्रकारिता मूल्यों को समझने के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। पत्रकार के लिए ज़रूरी पत्रकारिता मूल्य यथा सत्यनिष्ठ लेखन, तार्किक एवं तथ्यपूर्ण लेखन, सामाजिक सरोकार युक्त एवं निडर लेखन इत्यादि मूल्य इन पत्रों में स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं -:

सत्यनिष्ठ लेखन –लाजपत राय द्वारा लिखे गए इन खुले पत्रों का एक प्रमुख मूल्य है सत्यनिष्ठा। बिना सत्यनिष्ठा के किसी भी

पत्रकार का लेखन क्षणिक प्रसिद्धि एवं पाठक तो पा सकता है पर इसका टिके रहना असंभव है। लाजपत राय चूंकि शुरू में ब्रह्म समाज एवं आर्य समाज जैसी धर्म सुधारक संस्थाओं से सक्रिय रूप में जुड़े रहे इसलिए भी सत्यनिष्ठा उनके लेखन का अभिन्न अंग रही।इसकी झलक उनके द्वारा सैय्यद अहमद खान को लिखे पहले ही खुले पत्र की शुरुआती पंक्तियों में ही मिल जाती है। वह सैय्यद अहमद खान को शुरुआती सम्बोधन ही इन सत्य पंक्तियों से करते हैं "इससे पहले कि मैं आपको अपने *मतलब* पर सम्बोधन करूँ, मैं सोचता हूँ कि आपकी जानकारी के लिए यह बताना उचित होगा कि मैं आपके लेखन का निरंतर पाठक और प्रशंसक रहा हूँ। मुझे बचपन से ही अलीगढ़ के सफेद दाड़ी वाले सैय्यद के विचारों और शिक्षाओं का सम्मान करना सिखाया गया है। आपका 'सोशल रिफॉर्मर' मुझे मेरे पिता द्वारा लगातार पढ़ाया जाता रहा है जो आपको 19वीं सदी के किसी नबी से कम नहीं मानते थे"। इसी सत्यनिष्ठा के साथ वह पत्र की समाप्ती भी अपने नाम या हस्ताक्षर से नहीं करते बल्कि खुद को 'आपके एक पुराने अनुयायी का बेटा' लिखकर समाप्त करते हैं। अगर इस तथ्य को जांचा जाए तो उनके पिता एवं उनके परिवार के वारे में उपरोक्त तथ्य अक्षरशः सत्य साबित होते हैं। लाला लाजपत राय के पिता मुंशी राधा किशन पर अपने मुस्लिम अध्यापक का अत्यधिक प्रभाव था एवं बाद में वह खुद भी अरबी एवं फारसी के अध्यापक बने, यह कहा जाता है कि वह सिर्फ नाम से ही हिन्दू थे बाकी अपने सब कार्यों, भेषभूषा, विचारों और प्रेरणाओं में वह मुसलमान ही थे। यहाँ तक कि वह अक्सर हिन्दू धर्म छोड़कर इस्लाम अपना लेने की धमकी भी देते रहते थे (नागर, 1977)। 'एन अपील टू माई कंट्रीमैन' शीर्षक के खुले पत्र में लाजपत राय इस कटु सत्य को खुले रूप में लिखते हैं कि "उत्तर-पश्चिमी एवं दक्षिण-पश्चिमी जिलों में अपराधी मुसलमान हैं क्योंकि वहाँ की जनसंख्या अत्यधिक रूप में मुसलमान है, पीड़ित हिन्दु हैं क्योंकि वह ही ऐसे लोग हैं जिनका खून बिना ज्यादा जोखिम के बहाया जा सकता है"(जोशी, 1966)। प्रथम विश्व युद्ध में जर्मनी द्वारा भारत की मदद प्रसंग के आलोक में वह ब्रिटिश प्रधानमंत्री डेविड लोयड जार्ज को लिखे पत्र में इसको खुले रूप में स्वीकारते हैं कि अंदरखाते जर्मनी के साथ हमारे कुछ क्रांतिकारी लगातार संपर्क में थे जो जर्मनी की मदद से ब्रिटिश का तख़्ता पलटना चाहते थे, पर भारत ने इस मदद को स्वीकार नहीं किया और अंग्रेज़ साम्राज्य का साथ दिया। लाजपत राय ब्रिटिश प्रधानमंत्री को लिखते हैं "आप जानते हैं कि जैसे कोई और करता है, जर्मन सरकार किस तरह से भारतीयों की सद्भावना हासिल करने का प्रयास कर रही है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि प्रलोभन आकर्षक था" (जोशी, 1966)। इसी मूल्य का पालन करते हुये वह महात्मा गांधी जी को भी उनकी विचारधारा के वारे में अपने सही स्टैंड से अवगत करवाते हैं। 'सफर इन परसूइट ऑफ हैपिनेस' शीर्षक के पत्र में वह गांधी जी को लिखते हैं "पर मैं यह कहना चाहता हूँ, हालांकि मैं आपकी सोच और विचारधारा से पूरी तरह सहमत नहीं हूँ, पर मैं आपके इस निष्कर्ष से पर्याप्त सहमत हूँ कि हमें क्या करना चाहिए" (जोशी, 1966)। आगे 'द ग्रेटेस्ट नीड आफ द कंट्री' नामक पत्र में वह गांधी जी को तीखे शब्दों में कॉंग्रेस के सत्य के बारे में लिखते हुए कहते हैं "कॉंग्रेस सदा से उन्हें शिक्षित करने का प्रयास कर रही है जो पहले ही शिक्षित हैं, कॉंग्रेस नेताओं ने अपनी समस्याओं के निवारण के लिए अपने शासकों की तरफ ही देखा, आप देश की आत्म शक्ति को देखते हैं। यदि देश की मुक्ति हमारे अँग्रेजी पढ़े लिखे देशवासियों पर निर्भर है तो यह कभी नहीं होगा" (जोशी, 1966)। यहाँ यह ध्यान देना चाहिए कि यह पत्र 1919 को प्रकाशित हुआ था। उस सम्य तक कॉंग्रेस एवं गांधी जी देश के क्षितिज में अपना प्रभावशाली स्थान बना चुके थे, पर लाजपत राय गांधी जी एवं कॉंग्रेस के इस प्रभाव को पीछे रखते हुये अपनी सत्यनिष्ठा पर कायम रहते हैं। सत्यनिष्ठा के मूल्य पर पहरा देते हुए वह अपने वकालत के व्यावसायिक पेशे को भी खतरे में डालते हुये तत्कालीन न्याय व्यवस्था की कमियों, ब्रिटिश जजों की मनमानी एवं न्यायल्यों में फैले भ्रष्टाचार पर 1887 से 1889 के बीच लगातार संपादक के नाम लिखे पत्रों में जोरदार हमला बोलते हैं। हिसार में वकालत शुरू करते ही वह खुले रूप में इस पर पत्र लिखना शुरू करते हैं एवं लाहोर चीफ कोर्ट में प्रैक्टिस करते हुये भी अपने पेशेवर नुकसान की परवाह ना करते हुए लगातार अंग्रेज़ अधिकारियों को न्यायलीन व्यवस्था के भ्रष्ट चरित्र पर खरी-खरी सुनाते रहते हैं।

लाजपत राय के पत्रों को देखते हैं तो तथ्य एवं तर्कपूर्ण लेखन का एक बहुत ही अलग एवं उच्च स्तर दिखता है। इस तरह के लेखन की एक मूल वजह उनका वकील होना भी है। सफल वकालत का सारा दारोमदार ही इसपर निर्भर है कि कोई वकील अपने वाद के समर्थन में कितने तथ्य एवं उचित तर्क अदालत में रख पाता है। इन दोनों मूल्यों के लिए सामग्री जुटाने एवं उस सामग्री के समर्थन से अपनी बात रखने के लिए पूर्व ज़रूरी शर्त है स्व-अध्ययन और इन पत्रों में उनका गहरा अध्ययन एवं खोजी वृति हर पंक्ति में झलकती है। अगर यह कहा जाए कि उनके पत्रों की हर पंक्ति ही अपने आप में एक उचित तथ्य एवं तरक से गूँथी हुई है तो यह कहना अकारण नहीं होगा।

निडरता- स्वतंत्रता संग्राम के कालखंड में पत्रकार होने की प्राथमिक व पूर्व शर्त ही निडरता थी। उस समय सार्वजनिक लेखन के साथ आवश्यक रूप में न्यायिक दंड का खतरा जुड़ा हुआ था। जितने भी क्रांतिकारी पत्रकार हुए हैं उनमें से शायद ही कोई ऐसा बचा हो जिसे लेखन के लिए जेल की हवा ना खानी

पड़ी हो। इस आलोक में जब हम लाजपत राय के खुले पत्रों को देखते हैं तो उनका एक-एक शब्द निडरता से परिपूर्ण दिखता है, खासकर बड़े अंग्रेज़ अधिकारियों को पत्र लिखते हुए वह इस निडरता के मूल्य को और भी उच्चतम स्तर पर ले जाते हैं। ब्रिटिश प्रधानमंत्री डेविड लोयड जार्ज को 'सेव इंडिया फॉर द एंपायर' शीर्षक से लिखे पत्र की शुरुआत ही वह बिना किसी औपचारिकता के इन पंक्तियों के साथ करते हैं कि "मैं एक भारतीय हूँ जिसे भारत में आपकी सरकार के कारण कम से कम युद्ध के समय के लिए अमेरिका में शरण लेने के लिए मजबूर किया गया है" (जोशी, 1966)। देश से बाहर होने की भावुकता के साथ वह जार्ज को उनके देश के चरित्र पर शीशा दिखाते हुये लिखते हैं "मैं आपको खुद को मेरी जगह रखकर देखने को कैसे कह सकता हूँ, जिसने शायद कुछ सुखद भ्रमण यात्राओं के अलावा कभी अपना देश ना छोड़ा हो, यदि संभव है तो सिर्फ कुछ पलों के लिए खुद को मेरी जगह रखकर कल्पना कीजिये कि मैं कितनी देर तक अपनी मिट्टी को चूमता हूँ जिसमें मेरी माता एवं मेरे पुरखों की हड्डियाँ मिली हुई हैं, ना ही आप महसूस कर कर सकते हैं कि एक भारतीय अपने देश से कितना प्यार करता है, आप कैसे महसूस कर सकते हैं जो एक अंधेरे, उदास, धुंध और कोहरे से भरे, विश्वासघाती रूप से बदलते मौसम और ठंडे वातवरण में पैदा हुए हैं, आप भावनाओं में कैसे प्रवेश कर सकते हैं जो कि अंधेरे, कोहरे, धूप, बारिश, नींद के महीने और धूप के घंटो की गिनती करते हैं, आप उसकी भावनाओं को कैसे देख सकते हैं जिसका देश स्वयं में एक शाश्वत धूप है और जहां सार्वभौमिक प्रकाश शासन करता है"(जोशी, 1966)। उनकी निडरता की परख का इस से बड़ा तौल क्या हो सकता है कि यह शब्द किसी तत्कालीन प्रगतिशील देश यथा अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस या जापान के किसी स्वतंत्र नागरिक द्वारा अपने किसी पड़ोसी को नहीं कहे गए, बल्कि भारत जैसे गुलाम देश के एक निर्वासन झेल रहे 53 साल के बजुर्ग द्वारा उस समय के सबसे शक्तिशाली साम्राज्य के प्रधानमंत्री को कहे गए हैं। आगे वह भारत में लागू किए गए ब्रिटिश दमनकारी कानूनों पर पूर्ण निडरता से ब्रिटिश प्रधानमंत्री को लिखते हैं "भारत में रहते हुए कोई भी भारतीय पूर्ण सत्य नहीं बोल सकता। आपकी सरकार के अपराधिक कानून, आपके दंड और अपराधिक कोड, देशद्रोही बैठकें और षड्यंत्र अधिनियम, प्रेस कानून, आपके ट्रिब्यूनल जिसकी अध्यक्षता भी आपके अपने लोगों की है-प्रभावी रूप से उसका मुंह बंद कर देते हैं" "(जोशी, 1966)। लाजपत राय अपनी इसी टोन को और धार देते हुए ब्रिटिश सेक्रेटरी आफ स्टेट एडविन मांउटेग्यू को 'एन ओपेन लेटर टू एडविन मांउटेग्यू' नामक खुला पत्र लिखते हैं। इस पत्र की सबसे खास बात यह है कि एडविन मांउटेग्यू की नियुक्ति पर बड़ी गरमजोशी से उन्हें बधाई देते हुए लाजपत राय कब उन्हें बुरी तरह से लताड़ना शुरू कर देते हैं, पाठक को इस बदलाव का आभास मात्र भी नहीं होता। एडविन मांउटेग्यू को ओहदे की बधाई देते-देते वह उन्हें इस ओहदे की असीमित शक्ति और इसके निरंकुश इस्तेमाल पर निडरता से घेर लेते हैं। वह लिखते हैं "इस ओहदे के बराबर और कोई भी ओहदा ऐसा नहीं कि जिसका धारक अपनी शक्ति का प्रयोग बिना किसी ज़िम्मेदारी के उन्हीं लोगों के प्रति करता है जिनका भाग्य, चाहे अच्छे या बुरे के लिए, वह नियंत्रित करता है"(जोशी, 1966)। इसी पत्र में आगे चलकर प्रथम विश्व युद्ध में मेसोपोटामिया प्रसंग के आलोक में लाजपत राय उस कालखंड में भारत में हुई अनगिनत मौतों के लिए ब्रिटिश लापरवाहियों को सीधे-सीधे जिम्मेदार ठहराते और इसपर ब्रिटिशर की उदासीनता को लक्ष्य कर लिखते हैं "लाखों लोग जो रोके जा सकने वाले अकालों से, बुबोनिक प्लेग के अकुशल और अपर्याप्त प्रबंधन से, लाखों लोग जो रोकी जा सकने वाली गंदगी वाली परिस्थितियों और अप्रयाप्त भोजन, और भयानक आवास के कारण हुयी बीमारियों से जो लोग मरते हैं, उन्होंने कभी भी ब्रिटिश जनता को इतनी गहराई से प्रभावित नहीं किया जितना कि मेसोपोटामिया प्रकरण ने किया" "(जोशी, 1966)। लाजपत राय अपने इस निडरता के मूल्य को तब और अत्यधिक ऊंचाई दे देते हैं जब वह सेक्रेटरी आफ स्टेट के ओहदे के लिए एडविन मांउटेग्यू कि अयोग्यता को याद कराते हुए उन्हें लॉर्ड बेरेस्फ़ोर्ड का कहा याद कराते हैं कि आप इस ओहदे के लिए अयोग्य माने गए थे क्यूंकि आप पूरी तरह से ब्रिटिश खून नहीं हैं" इस वाक्य को पढ़ते हुए फिर से यह ध्यान में रखना चाहिए कि यह शब्द अँग्रेजी हकूमत के सबसे शक्तिशाली और निरंकुश ओहदाधारक सेक्रेटरी आफ स्टेट को खुले पत्र के रूप में लिखे गए हैं। लाजपत राय के निडरतापूर्ण लेखन में तब एक शैली और जुड़ जाती है जब वह किशोर अवस्था में सैय्यद अहमद खान को अपने पहला खुला पत्र लिखते हैं। वह शैली है चुटीली और व्यंगपूर्ण निडरता की। प्रतिनिधि शासन व्यवस्था के विषय में सैय्यद अहमद खान जब पूर्व में अपने ही द्वारा कहे से बदल जाते हैं तब लाजपत राय उन्हें व्यंगपूर्ण निडरता से लिखते हैं "इन परिस्थितियों में, सैय्यद साहब, क्या यह अजीब बात नहीं है, यदि मैं पूछता हूँ कि आप में इस दुभाग्यपूर्ण परिवर्तन का कारण क्या है? शायद बुढ़ापे और थकावट का इसमें कोई योगदान हो सकता है जिससे आप वह भूल गए हैं जो कभी अपने ही लिखा और बोला था। क्या आपकी याददाश्त ने धारण क्षमता को खो दिया है या यह उम्र के कारण दुर्बलता है जिसने आपको इस तरह की दिल्लगी करने को उकसाया है? (नन्दा, 2003)। पहले पत्र के वाद कोई उत्तर ना आने पर वह दूसरे पत्र में चेतावनी और चुनौती वाले अंदाज़ में लिखते हैं "नहीं श्रीमान, आप सोचते हैं कि मैं इन पत्रों के मात्र भारत में प्रकाशन के साथ ही संतुष्ट हो जाऊंगा, जी नहीं, यह विधिवत रूप से आज़ाद इंग्लैंड में भी प्रकाशित एवं वितरित किए जाएंगे, और पैंफ्लेट के रूप में आपकी कल की पालतू एसोसिएशन के बराबर में बांटे

किसी भी पत्रकार के लेखन में लोक सरोकार एवं सामाजिक सम्बद्धता का पत्रकारिता मूल्य होना अति आवश्यक है। इस मूल्य के बिना पत्रकार का लेखन एक थोथे भारी उपदेश एवं स्वप्रशंसा का प्राय बनकर रह जाता है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम भारत के हर जन के लिए,जन के साथ एवं जन द्वारा ही लड़ा गया था। ऐसे में जो भी पत्रकार क्रांतिकारी लेखन करता उसमें जन सरोकार और सामाजिक सम्बद्धता एक ज़रुरी मूल्य था। वह चाहे किसी विषय पर लोक शिक्षण हो,किसी विषय पर जनजागरण हो या किसी विषय के लिए जन को उद्देलित करना हो,इसमें पत्रकार क्रांतिकारियों का लेखन ही मुख्य माध्यम बना। लाजपत राय की पत्रकारिता में भी यह मूल्य दृढ़ रुप से विद्यमान था।

जाएंगे" (नन्दा, 2003)।

तर्क एवं तथ्यपूर्ण लेखन– इस बात से बिलकुल इनकार नहीं किया जा सकता कि अगर पत्रकार के लेखन में अपनी बात के समर्थन में जरूरी तथ्य नहीं पाये जाते तो उसका लेखन मात्र बचकाना प्रयास गिना जाता है। इसी तरह अगर पत्रकार के लेखन में तर्क का उचित समायोजन नहीं होता तो यह ना केवल नीरस सपाट लेखन बनकर रह जाता है बल्कि ज्यादा देर तक पाठक को अपने साथ जोड़े रखने में भी असफल रहता है। इन मूल्यों पर जब लाजपत राय के पत्रों को देखते हैं तो तथ्य एवं तर्कपूर्ण लेखन का एक बहुत ही अलग एवं उच्च स्तर दिखता है। इस तरह के लेखन की एक मूल वजह उनका वकील होना भी है। सफल वकालत का सारा दारोमदार ही इसपर निर्भर है कि कोई वकील अपने वाद के समर्थन में कितने तथ्य एवं उचित तर्क अदालत में रख पाता है। इन दोनों मूल्यों के लिए सामग्री जुटाने एवं उस सामग्री के समर्थन से अपनी बात रखने के लिए पूर्व ज़रूरी शर्त है स्व-अध्ययन और इन पत्रों में उनका गहरा अध्ययन एवं खोजी वृति हर पंक्ति में झलकती है। अगर यह कहा जाए कि उनके पत्रों की हर पंक्ति ही अपने आप में एक उचित तथ्य एवं तरक से गूँथी हुई है तो यह कहना अकारण नहीं होगा। सबसे पहले उनके पहले-पहल के चार खुले पत्रों की विषय सामग्री देखें जो उन्होंने सर सय्यद अहमद खान को लिखे थे और जिन पत्रों ने उन्हें किशोर अवस्था में ही राष्ट्रीय स्तर का एक चर्चित नेता बना दिया था। इन पत्रों में उनके गहरे अध्ययन का स्तर स्पष्ट दिखता है। इन चारों पत्रों में वह सय्यद अहमद खान द्वार लिखी गयी पुस्तकों, उनकी जीवनी, उनके सोश्ल रेफोरमर और अन्य जर्नलों में छपे पेपरों से ही उद्धरण लेते हैं और यह साबित करते हैं कि काँग्रेस का स्टैंड आज वही है जिसे 30 साल पहले आपने ही लिखा था। यह स्पष्ट दिखता है कि यह पत्र लिखते हुये उन्होंने सैय्यद अहमद खान का लिखा शायद ही कुछ अध्ययन करने से छोड़ा हो। इसका एक कारण उनके पिता का सैय्यद अहमद खान की शिक्षाओं के प्रति झुकाव भी था, जिसका ज़िक्र लाजपत राय शुरू में ही कर देते हैं कि मेरे घर में आपका लिखा सबकुछ पढा जाता रहा है।इन पत्रों में वह ज़्यादातर उद्धरण सैय्यद अहमद खान द्वारा लिखी पुस्तक 'कॉज़ ऑफ द इंडियन रेवोल्ट'से लेते हैं। प्रतिनिधि शासन व्यवस्था पर वह उन्हीं का लिखा उद्धरण देते हुए लिखते हैं "इस पुस्तक में, यह स्थापित करने के वाद कि 1857 का विद्रोह 'धार्मिक लड़ाई' नहीं थी, ना ही कोई पूर्व नियोजित ठोस साजिश थी, आप यह कहते हैं-ज्यादतार लोग, मैं विश्वास करता हूँ कि इस सोच से सहमत होंगे कि यह शासन की भलाई एवं समृद्धि के लिए अत्यधिक अनुकूल होगा- वास्तव में यह इसकी स्थिरता का लिए ज़रूरी है कि लोगों के पास काउंसिल में अपनी आवाज़ होनी चाहिए"(नन्दा, 2003)। इसपर वह आगे ठोस तर्क देते हुए पूछते हैं "आपसे प्रार्थना है कि मुझे बताईये कि प्रतिनिधता के बिना काउंसिल में लोगों की अपनी आवाज़ कैसे हो सकती है?एक देश के लोगों की आवाज़ काउंसिल में उनके प्रतिनिधियों के बिना लगातार कैसे सुनी जा सकती है?" (नन्दा, 2003)। वास्तव में जिस तरह से सय्यद अहमद खान को लाजपत राय ने उन्हीं के लिखे शब्दों से घेरा है वह तथ्य एवं तर्कपूर्ण लेखन की मजबूत उदाहरण हैं। उनका यह लेखन मूल्य अंग्रेज़ अधिकारियों को लिखे पत्रों में और तीखी धार के साथ प्रकट होता है। प्रधानमंत्री डेविड लोयड जार्ज को लिखे पत्र में वह अंग्रेज़ अधिकारियों द्वारा दी गयी बहुत सारी रिपोर्ट्स, इंग्लैंड के समाचार पत्रों से उद्धरण, डालर, कर्ज़, व्याज और व्यापार के ढेर सारे डाटा के उद्धरण देते हैं। जार्ज को लिखा यह पत्र एक लंबा पत्र हैं जिसका आधा हिस्सा आधिकारिक डाटा और रिपोर्ट से ही भरा हुआ है। मजदूरी की दरों पर ब्रिटिश नौकरशाहों द्वारा तयार की गई एक लंबी रिपोर्ट को वह पत्र में प्रांत अनुसार उद्धरित करते हैं और तदनुसार उसकी व्याख्या करते हुए ब्रिटिशर की लूट का पर्दाफाश करते जाते हैं। ब्रिटिशर द्वारा भारत से जंगी कर्जे के नाम पर पाँच अरब डालर की लूट पर वह लिखते हैं "एक अतिरिक्त कारण मुझे 15 मार्च 1917 के अखबारों द्वारा प्रदान किया गया है। ऐसा कहा जाता है कि भारत में आपके एजंटों ने 1, 500, 000, 000 रुपए के भारतीय धन के बराबर 500, 000, 000 डालर का युद्ध ऋण जुटाने का फैसला किया है, और इस ऋण के प्रवाह को और आसान बनाने के लिए आपकी सरकार कपास के आयात शुल्क में 4 प्रतिशत यथामूल्य वृद्धि करने को राजी हो गई है। इसमें यह जोड़ा गया है कि यह भारत की और से महान इंग्लैंड को एक मुफ्त उपहार होगा! भूखे, गरीबी से त्रस्त भारत द्वारा अमीर, धनी, शक्तिशाली महान इंग्लैंड को 500, 000, 000 डालर का उपहार, क्या इससे अधिक कुछ भी आश्चर्यजनक, बेतुका और अत्याचारी हो सकता है! समाचार ने मुझे स्तब्ध कर दिया है"(जोशी, 1966)। आगे उनके एक कथन से उनके तर्क की पैनी धार

की पुष्टि होती है "आपकी सरकार ने इसे भारत के लोगों द्वारा मुफ्त और सहज भेंट कहा है! यदि आपकी कैबिनेट के सदस्य, यदि भारत के लिए सेक्रेटरी आफ स्टेट, यदि भारत के गवर्नर-जनरल और उनकी कार्यकारी काउंसिल के मंत्री भारत के लोग हैं तो बेशक आप सही हैं और हम गलत" (जोशी, 1966)। इसी पत्र में आगे के उनके बेहद तीखे और सुगठित तर्क से से कोई भी पाठक एक वार के लिए एकदम स्तब्ध और उनके लेखन की धार को महसूस करने पर मजबूर हो जाता है "अपने आचरण के बचाव में आप बताते हैं कि भारत एक राष्ट्र नहीं है। ठीक है, श्रीमान जी, भारत को छोटे-छोटे राष्ट्रों में बाँट दीजिये और उन्हें अलग से स्वशासन दे दीजिये"(जोशी, 1966)। प्रथम विश्व युद्ध के आलोक में लाजपत राय इंग्लैंड द्वारा लोकतन्त्र के रक्षक होने के थोथे दावों की हवा निकालते हुए एडविन मांटेग्यू को अपना पैना तर्क देते हैं "युद्ध में ग्रेट ब्रिटेन और उसके सहयोगी, प्रशीयाई निरंकुशता, प्रशीयाई नौकरशाही, प्रशीयाई सैन्यवाद और प्रशीयाई कबाड़वाद पर आपत्ति जताते आए हैं। फिर भी भारत में ये सभी दैत्य असाधारण रूप में मौजूद हैं, और उन्हें सत्ता से हटाने के हर प्रयास का उन लोगों द्वारा कड़ा विरोध किया जाता है जो यह चाहते हैं कि दुनिया यह मान ले कि वे पूरी दुनिया में लोकतंत्र स्थापित करने और लोकतांत्रिक सरकारों के सिद्धांतों को लागू करने के लिए लड़ रहे हैं" (जोशी, 1966)।

इसी तार्किक पैनेपन की उदाहरण हमें महात्मा गांधी जी को लिखे उनके खुले पत्र में भी देखने को मिलती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए महात्मा गांधी जी ने उपवास, अहिंसा और सत्याग्रह इत्यादि धार्मिक मूल्यों युक्त मार्ग को चुना था। लाजपत राय भी ताउम्र एक धुरंधर आर्य समाजी रहे, तिसपर भी वह महात्मा गांधी जी को उस समय की भारतीयों की असल जरूरतों पर तर्क देते हुये लिखते हैं "आइए हम छलावरण छोड़ दें और अपने मन को सत्य पर केन्द्रित करें। हमारी जनता को जिस चीज की सबसे अधिक ज़रूरत है वह वेदान्त या वैराग्य की सूक्ष्मताओं पर उपदेश नहीं, ना ही स्वशासन पर व्याख्यान हैं, बल्कि सही साहचर्यपूर्ण संगति, भाईचारे पूर्ण संवेदना और अपने बेहतर शिक्षित और बेहतर स्थिति वाले देशवासियों के साथ आसान, अपरिष्कृत, खुले बोलचाल की ज्यादा अवश्यकता है। उन्हें वह दे दो और इससे आप देश का उत्थान जल्दी करोगे, ना कि सदियों के व्याख्यानों, उपदेशों और गज भर लंबे प्रस्तावों से"(जोशी, 1966)।

लोक सरोकार एवं सामाजिक सम्बद्धता– किसी भी पत्रकार के लेखन में लोक सरोकार एवं सामाजिक सम्बद्धता का पत्रकारिता मूल्य होना अति आवश्यक है। इस मूल्य के बिना पत्रकार का लेखन एक थोथे भारी उपदेश एवं स्वप्रशंसा का प्राय बनकर रह जाता है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम भारत के हर जन के लिए, जन के साथ एवं जन द्वारा ही लड़ा गया था। ऐसे में जो भी पत्रकार क्रांतिकारी लेखन करता उसमें जन सरोकार और सामाजिक सम्बद्धता एक ज़रूरी मूल्य था। वह चाहे किसी विषय पर लोक शिक्षण हो, किसी विषय पर जनजागरण हो या किसी विषय के लिए जन को उद्देलित करना हो, इसमें पत्रकार क्रांतिकारियों का लेखन ही मुख्य माध्यम बना।

लाजपत राय की पत्रकारिता में भी यह मूल्य दृढ़ रूप से विद्यमान था। चाहे वह किसी भी बड़ी शख्सियत को अपने नाम से पत्र लिखते थे पर उस पत्र की भाषा, उसके तथ्य, उसके तरक एवं बहाव ऐसा रखते थे कि उनके हर शब्द को जनमानस अपने ही शब्द मानता था, सबसे बड़ी बात यह कि उन्होंने निजी पत्र बहुत कम लिखे हैं। उनके ज़्यादातर पत्र सार्वजनिक पुट लिए या तो खुले पत्र हैं जिनमें से अधिकतर पत्र समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुए हैं, या वह जन महत्व के विषयों पर संपादक के नाम पत्र लिख देते थे जिसका इस्तेमाल लोक शिक्षण के लिए हो सके। भारत हितैषी माने जाते ब्रिटिश समाज सुधारक फ्रेडरिक पिनकोट ने ट्रिब्यून के संपादक को एक खुला पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने भारतीयों से अंग्रेज़ सरकार और नौकरशाही के आचरण के बारे में सही-सही तथ्य मांगे। इस मौके को लाजपत राय ने तुरंत पकड़ा और 'अपील टू रेस्पोंड टू द काल आफ फ्रेडरिक पिनकोट' शीर्षक पत्र द्वारा पढ़े-लिखे भारतीयों से इस पर तुरंत प्रतिकिरया करने को कहा। अँग्रेजी शासन की गलत नीतियों, अफसरों के भ्रष्ट आचरण और हर भारतीय के साथ हो रही लूट और नाइंसाफी का ज़िक्र करते हुये वह अपील करते हैं "श्री पिनकोट ने अपने पत्र में जिज्ञासु रूप में रिश्वत लेने और देने के एक रूप 'डाली' का संकेत किया है, पर मैं कहता हूँ कि इसके वारे में कौन नहीं जानता? लेकिन सवाल यह उठता है कि हम में से कितने लोगों ने इस जानकारी को लिखने के लिए कलम उठाई है ताकि हमारे शासकों की भूमि पर तथ्य और आंकड़े भेजे जा सकें। देशवासियों, मुझे लगता है कि यह आपके लिए अपने बटुए के साथ कम से कम हस्तक्षेप के साथ अपनी मात्रभूमि की सेवा करने का सबसे अच्छा अवसर है" (नन्दा, 2003)। निर्वासन के दिनों में जापान रहते हुये लाजपत राय 'एन अपील टू माय कंट्रीमैन' शीर्षक से एक भावुक पत्र द्वारा भारतीय जनमानस को निवेदन करते हुये लिखते हैं "क्या मैं आपके कॉलम का इस्तेमाल पंजाब में अपने देशवासीयों को अपनी मातृभूमि की साझी भलाई के लिए अपने सांप्रदायिक मतभेदों और आपसी जलन को दूर करने की अपील करने के लिए कर सकता हूँ"(जोशी, 1966)। आगे इसी पत्र में वह विश्व युद्ध के उपरांत होने वाली महंगाई, भुखमरी, और आर्थिक तंगी की तरफ भारतीयों का ध्यान खींचते हुए समय की ज़रूरत अनुसार सबसे पहले मजबूत एकता बनाने और आने हालातों से निबटने की तयारी करने की भावुक अपील करते हैं। वह तब एक दूरद्रष्टा पत्रकार के रूप में भी सामने आते हैं जब वह न्यूयार्क से लंदन

में रहने वाले भारतीयों के लिए एक खुला पत्र लिखते हैं। इसमें लाजपत राय विदेश में भारतीय स्वतंत्रता के विमर्श को आगे बड़ाने हेतु न्यूयार्क, लंदन, पेरिस इत्यादि शहरों में सूचना ब्यूरो, प्रचार ब्यूरो, और भारतीय समाचार एजंसी के गठन की अपील करते हुये इसकी विस्तृत योजना और ढांचा भी लिखते हैं (जोशी, 1966)। लोक शिक्षण और जन-सम्बद्धता का पत्रकारीय मूल्य उनके एक और संपादक के नाम पत्र से भली-भांति जाहिर होता है। उस समय रसायनिक खाद बनाने के लिए जानवरों की हड्डियां बड़ी मात्रा में अंग्रेजों द्वारा इंग्लैंड को भेजी जा रही थीं। भारत में उस समय ना तो यह खाद बनाने का कोई साधन था, ना किसी को इसकी विधि पता थी और सबसे बड़ी बात हड्डियों के इस्तेमाल को लेकर भारतीयों के अपने धार्मिक पूर्वाग्रह थे। लाजपत राय आर्य समाज जैसी धार्मिक संस्था से जुड़े होने के वावजूद भारत में इस खाद को बनाने को लेकर अत्यधिक प्रयासरत थे। इसकी विधि के लिए वह लगातार फ्रेडरिक पिनकोट के संपर्क में थे और उनसे यह विधि पता करने में सफल रहे। विधि पता करने के वाद सामाजिक सम्बद्धता के मूल्य को एक नयी ऊंचाई देते हुए वह यह सारी विधि जन साधारण के सीखने हेतु ट्रिब्यून के संपादक को पत्र में लिख भेजते हैं और इसके साथ ही समाज के धनिकों से इसे बनाने हेतु एक ढांचा बनाए जाने का आह्वान भी करते हैं (नन्दा, 2003)।

निष्कर्ष-

लाला लाजपत राय का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक पत्रकार के रूप में योगदान और चरित्र इस संग्राम का एक सुनहरा अध्याय है। जहाँ संपादक के नाते उनके द्वारा प्रकाशित समाचार पत्रों नें ना केवल पंजाब क्षेत्र बल्कि देश भर में जन-जागृति का एक मील पत्थर स्थापित किया, वहीं एक पत्रकार के रूप में उनका लेखन उच्च पत्रकारिता मूल्यों की हर कसौटी पर खरा उतरता है। वर्तमान पत्रकारिता उनके पत्रकारिता मूल्यों से निश्चित ही एक साकारात्मक एवं राष्ट्र हितैषी दिशा ले सकती है। उनके राजनीतिक और सामाजिक चिंतन पर कार्य अवश्य हुआ है पर एक पत्रकार के रूप में उनके सम्पूर्ण लेखन, उसके प्रभाव एवं उसके उपयोग को लेकर एक विस्तृत शोध की ज़रूरत और संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। स्वतंत्रता-संग्राम और उसके बाद के कालखण्ड में सप्तसिंधु क्षेत्र में उनकी पत्रकारिता की छाप स्पष्ट रूप से महसूस की जा सकती है। ऐसा कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण सप्तसिंधु क्षेत्र की पत्रकारीय संस्कृति की निर्मित में लाला लाजपत राय का केन्द्रीय स्थान है।

संदर्भ:-

1. अख्तर, शमीम (2015). *सर सैय्यद अहमद खान एंड हिज आडीयन्स*. सोशल साइंटिस्ट, जनवरी-फरवरी, खंड 43, न.1/2.
2. गणेश एंड कं. (1907). *लाला लाजपत राय: द मैन इन हिज वर्ड्स,* मद्रास.
3. चंद, फिरोज़. (1966) लाला लाजपत राय, *सम एमिनेंट इंडियन एडीटर्स* में अंतर्निहित, नयी दिल्ली: पब्लिकेश्न डिवीजन, मिनिस्टरी आफ इन्फोर्मेश्न एंड ब्रॉडकास्टिंग, भारत सरकार.
4. जोशी, विजय चंदर (1966) (संपा.) *लाला लाजपत राय, राइटिंग्स एंड स्पीच्स : वाल्यूम-1*, जलंधर: यूनिवर्सिटी पब्लिशर्स.
5. नागर, प्रषोत्म. (1977). *लाला लाजपत राय:द मैन एंड हिज आइडियाज,* दिल्ली : मनोहर पब्लिशर्स.
6. नंदा, बी.आर. (2003) (संपा.) द *कॉलेक्टेड वर्क्स आफ लाला लाजपत राय* :वाल्यूम 1, दिल्ली: मनोहर पब्लिशर्स.
7. ब्रदर्स, टालबोट (1888). *रिपोर्ट थर्ड काँग्रेस*, लंदन : Columbia.edu से पुनः प्राप्त.

नोट:-

1. 27 अक्तूबर 1888 को अँग्रेजी द ट्रिब्यून में प्रकाशित पत्र न 1. (सैय्यद अहमद खान को लिखे ये चार खुले पत्र शुरुआत में उर्दू कोह-ए नूर में प्रकाशित हुये, उपरांत द ट्रिब्यून ने इन्हें श्रंखलावद्ध रूप में प्रकाशित किया. द ट्रिब्यून में दूसरा पत्र 17 नवम्बर 1888, तीसरा 5 दिसंबर 1888 एवं अंतिम चौथा पत्र 19 दिसंबर 1888 को प्रकाशित हुआ).
2. तहजीब अल अखलाक (सोशल रिफॉर्मर) उर्दू, अँग्रेजी जर्नल का प्रकाशन 1870 में सर सैय्यद अहमद खान द्वारा शुरू किया गया था.
3. मुंशी राधा किशन 1845-1923, लाला लाजपत राय के पिता, वह एक उच्च दर्जे के फारसी एवं उर्दू के अध्यापक थे .
4. इस विषय पर लाला लाजपत राय ने कुल पाँच पत्र लिखे। यह पांचों पत्र संपादक के नाम पत्र रूप में हैं। अँग्रेजी द ट्रिब्यून में पहला पत्र 1 जून 1887, दूसरा 22 जून 1887, तीसरा 13 मार्च 1889, चौथा 10 अप्रैल 1889 एवं पाँचवाँ पत्र 18 दिसंबर 1889 को प्रकाशित हुआ।
5. माउंटेग्यू एक लिवरपूल परिवार से संबन्धित थे और उनका वंश उत्तर जर्मनी के यहूदीयों से से था। वह 18वीं शती के मध्य में इंगलैंड आए थे.

• • •

* सहायक आचार्य, कश्मीर अध्ययन केन्द्र सप्तसिंधु परिसर, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय

** पीएच.डी. शोध छात्र
कश्मीर अध्ययन केंद्र, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय

विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होती हिंदी

– डॉ. वाय. जी. काले*, अभिनय कुमार शर्मा**

आचार्य दंडी ने भाषा के महत्व को बताते हुए कहा है की यह त्रिभुवन संपूर्ण अन्धकार में निमग्न हो जाता यदि सृष्टि के आरम्भ से संसार में शब्द (भाषा) का प्रकाश न होता।

इदमन्धंतम: कृतस्नं जायेत भुवनत्रयम्य
दि शब्दाह्वयं ज्योतिशसंसारं न दीप्यते।।

(काव्यादर्श, 1/41)[1]

इसी क्रम में हम कह सकते हैं कि हिंदी भारत की राजभाषा और करोड़ों की मातृभाषा है।भारत की लगभग 130करोड़ में से अधिकांशतः जनता हिंदी समझती है।हिंदी द्वारा भारतीय संस्कृति एवं साहित्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। अपने देश में हिंदी अपनी यात्रा अनवरत जारी रखे हुए है। देश में विकास की तीव्र गति के साथ-साथ हिंदीभाषी आबादी में शिक्षा या काम के लिए अपने जन्मस्थान से बाहर जाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। नतीजतन, कई हिंदीभाषी गैर-हिंदी क्षेत्रों में स्थानांतरित हो रहे हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार, प्रतिशत के संदर्भ में, तमिलनाडु, केरल, गुजरात, महाराष्ट्र और आंध्रप्रदेश में हिंदी बोलने वालों की संख्या में सबसे अधिक वृद्धि हुई है।

इसे हम निम्नलिखित तालिका-1 से समझ सकतेहैं:-

पिछले चालीस सालों में भारत में हिंदी बोलनेवाले लोगों में वृद्धि के आंकड़े-

भाषा	1971-2011 के बीच आनुपातिक परिवर्तन (प्रतिशत में)	बोलने वालों की संख्या (करोड़ में)
हिंदी	37------43.6	52.8
बंगाली	8.2------8	9.7
मराठी	7.6------6.9	8.3
तेलुगु	8.2------6.7	8.1
तमिल	6.9------5.7	6.9
गुजराती	4.7------4.6	5.5
उर्दू	5.2------4.2	5.1
कन्नड़	4------3.6	4.4
उड़िया	3.6------3.1	3.8
मलायलम	4------2.9	3.5

स्रोत - सेंसस 2011

आज भारत विश्व की छठी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। अंतराष्ट्रीय बिरादरी को हिंदी और हिन्दुस्तान दोनों के महत्व को स्वीकार करना ही होगा। जहाँ तक देश के बाहर किये जाने वाले प्रयासों की बात है तो समय - समय पर आयोजित होने वाले विश्व हिंदी सम्मलेनों में हिंदी को विश्व भाषा के रूप में स्थापित करने के लिए ठोस एवं परिणामजनक नीतियां तैयार की जानी चाहिए। भारत सरकार द्वारा आयोजित प्रवासी भारतीय दिवस उसी दिशा में उठाया गया एक सराहनीय कदम है। इसके साथ-साथ किये गए प्रयासों का समय-समय पर मूल्यांकन भी नितांत आवश्यक है। हिंदी को विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए मिलजुलकर ही प्रयास करने होंगे। हिंदी को विश्व की अन्य समस्त महत्वपूर्ण भाषाओं के समकक्ष लाकर खड़ा करने में भारत के प्रत्येक नागरिक को अपना योगदान देना आवश्यक है।

परन्तु वैश्वीकरण अपने प्रभाव को लगातार बढ़ा रहा है और भाषा वैश्वीकरण

की चुनौतियों को अथवा विश्व पटलपर कंधे से कन्धा मिलाकर चलने में एक निर्णायक भूमिका अदा करती है। भूमंडलीकरण के इस आरंभिक दौर में हिंदी ने स्वयं को राष्ट्र की बिंदी सिद्ध किया है।

वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय स्वरुप विकसित हो रहा है और डिजिटल मीडिया इस स्वरुप को विकसित करने में अपनी निर्णायक भूमिका निभा रहा है। वो हिंदी को अफ्रीका, मध्य पूर्व यूरोप और उत्तरी अमेरिका में एक चित्तार्कषक ढंग से लगातार पहुँचा रहा है। यह उत्साहजनक है कि वर्ष 2022 के आंकड़ों के हिसाब से विश्व के लगभग 44 प्रतिशत लोगों द्वारा (लगभग 615 मिलियन) हिंदी भाषा बोली जाती है। इस तरह से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओँ में हिंदी का तीसरा स्थान है।

तालिका -2 विश्व में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषाएं[2]

संख्या मिलियन में	
1132	अंग्रेजी
1117	मंदारिन (चीनी)
615	हिंदी
534	स्पेनिश
280	फ्रेंच
274	अरबी
265	बांग्ला
258	रूसी
234	पुर्तगीज
199	इंडोनेशियन

एक अरब से भी अधिक नागरिकों के भारत देश की तेज गति से विकसित हो रही अर्थव्यवस्था ने विश्व को अपनी ओर देखने के विवश कर दिया है, ऐसे में भारत देश की शब्दवाहिनी यानि हिंदी भाषा का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कद बढ़ना स्वाभाविक ही है। आज हम गूगल सर्च इंजन पर देवनागिरी लिपि में अनुवाद एवं हिंदी में बहुत आसानी से टाइप भी कर सकते हैं। बहुत सी अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों ने हिंदी को गले लगाया है। शीतपेय बहुराष्ट्रीय कंपनियां कोका कोला और पेप्सी के हिंदी विज्ञापन महासागर ने अन्य चर्चित एवं मनोरंजन से सम्बंधित कार्यक्रमों को मात दे दी है।

भूमंडलीय आकाश पर पैर पसारती हिंदी अपने अनेक बहुआयामी स्वरूप प्रदर्शित कर रही है। सिंगापुर में हिंदी कक्षाओं वाले स्कूलों की संख्या बढ़कर 53 हो गयी है।3 ब्रिटेन में भी 'हिंगलिश' बहुत अधिक प्रचलित है। रूसी लोगों के हृदय में हिंदी के प्रति आकर्षण का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्होंने रामायण का हिंदी में अनुवाद कराया है और बहुत से रूसी हिंदी लिख-पढ़ रहे हैं। हिंदी भारत में ही नहीं पाकिस्तान में भी बोली जाती है। दोनों देशो के नागरिकों द्वारा हिंदी भाषा को व्यापक एवं सक्षम आधार प्रदान किया जा रहा है। नेपाल के तो आधे हिस्से की पूरी तराई की भाषा हिंदी है। यहाँ तक की वहाँ की लिपि भी देवनागरी ही है। चीनवासियों ने हिंदी प्रेम के चलते पीकिंग विश्वविद्यालय में हिंदी की पढ़ाई की समुचित व्यवस्था की है। अफ्रीका महादेश हो या फिजी द्वीप समूह, मॉरीशस आदि में हिंदी की कीर्ति पताका फहरा रही है। फिजी में तो हिंदी वहां कि राजभाषा घोषित की गयी है।4 बहुत सी नौकरी प्रदाता एजेंसीज हिंदी सीखे हुए भारतीयों की अनुवादक के रूप में रिक्तियां निकाल रही हैं। बी. बी. सी., रेडियो चीन, रेडियो मास्को, जापान रेडियो और डोरचीविल्ले रेडियो जर्मनी आदि बहुत से देश हिंदी में प्रसारण करते हैं। ऑस्ट्रियंस एयर लाइन्स, स्विस एयरलाइन्स, एयर फ्रांस और अलिटालिया एयर लाइन्स ने कहा है कि भारतीय यात्रियों की बढ़ती संख्या को दृष्टिगत रखते हुए वे भारत की अपनी प्रत्येक उड़ान में कम से कम दो क्रू को रखेंगे जो हिंदी भाषा बोलना जानते हों।5

हिंदी में अनुवादकों की मांग है, हिंदी वेबसाइट कि संख्या बढ़ रही है, हिंदी में कई मोबाइल ऐप आ रहें हैं। एक सर्वे से पता चला है कि फेसबुक या ट्विटर पर तमाम लोग देवनागरी भले ही न लिखते हों या लिख पाते हों, हिंदी में अपनी बात शेयर करने का शौक सब पर हावी रहता है। अमेरिकी अखबार वॉल स्ट्रीट जरनल का मानना है कि जबसे 2007 में गूगल ने ट्रांसलेटर को इस्तेमाल करने वालों के बीच उतारा है, हिंदी ने साइबर जगत में तेजी पकड़ी है। ज्यादा - से - ज्यादा लोग सोशल मीडिआ तक पहुँचने लगे हैं और हिंदी लिखने में सहूलियत भी महसूस करने लगे हैं। ऐसा ही कुछ नजारा ट्विटर का भी है। ट्रांसलेटर के आते ही लोगों ने हिंदी में चहचहाना शुरू कर दिया और अब ट्विटर पर ऐसे कई हैंडल मिल जाएंगे, जो अंग्रेजी के साथ हिंदी में भी ट्वीट करते हैं और उनके हजारों फॉलोअर्स भी हैं। हिंदी की प्रतिष्ठा अंतराष्ट्रीय स्तर पर बढ़ रही है। इसका सबसे उत्तम उदाहरण गीतांजलि श्री हैं। उनके हिंदी में लिखे गए उपन्यास "रेत समाधी (Tomb of Sand)" के लिए उन्हें वर्ष 2022 अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार मिला है। गीतांजलि श्री हिंदी की पहली ऐसी लेखिका हैं जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार मिला है। ये हिंदी भाषा के लिए गौरव की बात है।

कई दूसरे देशों में हिंदी कॉलेजों एवं यूनिवर्सिटीज में ओरिएण्टल और साउथ एशियाई या साउथ इंडियन स्टडीज के रूप में पढ़ाई जा रही है। भारतीय अध्यापकों के साथ लोठार लुत्से (जर्मनी), प्रो. वरान्निकोव, औदोलने स्मेकल (चेक रिपब्लिक), प्रो. एन्जो तूरबियानी (इटली), प्रो क्रिस्टोफर किंग (कनाडा), पीटर जेरार्ड फ्रीडलेंडर (ऑस्ट्रेलिया), तोरमेको किकुची (जापान) जैसे कई विदेशी इस काम में सहयोग दे रहे हैं। अभिमन्यु अनत (मॉरीशस) तो हिंदी साहित्य का एक स्थापित नाम बन चुके हैं। ये तो जाने माने विद्वान हैं, प्राइस नाथन जैसे अमेरिकी तो स्वयं हिंदी सीखते हुए हिंदी पढ़ाने भी लगे हैं। उपरोक्त वर्णन यह दर्शाता है कि हिंदी को

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिल रही है।16

हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय महत्व इसी से लगाया जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में भी हिंदी को एक संपर्क भाषा के रूप में अपना लिया गया है। इन प्रयासों के हिस्से के रूप में, 'हिंदी @ यूएन' परियोजना 2018 में शुरू की गई थी, जिसका उद्देश्य हिंदी भाषा में संयुक्त राष्ट्र की सार्वजनिक पहुँच को बढ़ाना और दुनिया भर में लाखों हिंदी भाषी आबादी के बीच वैश्विक मुद्दों के बारे में अधिक जागरूकता फैलाना था।8 हिंदी को सयुंक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषाओ में शामिल करने का प्रयास भी किया जा रहा है। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाये जाने की शुरुआत भारत के नागपुर में 10 जनवरी, 1975 को आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मलेन में हुई थी। श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र संघ में वर्ष 1977 में विदेश मंत्री के तौर पर हिंदी में भाषण दिया था और वर्ष 2002 में प्रधानमंत्री के तौर पर हिंदी में भाषण दिया था। 3 जनवरी, 2018 को लोकसभा में पूछे गए उत्तर में तत्कालीन विदेश मंत्री, श्रीमती सुषमा स्वराज ने बताया कि संयुक्त राष्ट्र संघ की सातवीं आधिकारिक भाषा बनाने के रूप में स्थान दिलाने के लिए कुल 193 सदस्य देशों में से दो तिहाई बहुमत यानी न्यूनतम 129 देशों के समर्थन की आवश्यकता है। इसके साथ ही हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा की मान्यता दिए जाने के बाद होने वाला खर्च भी भारत को उठाना होगा। एक अनुमान के मुताबिक इसके लिए शुरू में लगभग एक अरब रूपए खर्च करने होंगे।15 एक जानकारी के अनुसार हिंदी संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) में भी प्रयोग में लाई जा रही है।10 वे हिंदी भाषा को अपने सोशल मीडिया और न्यूजलेटर में भी प्रयोग कर रहे हैं। भारत सरकार ने इस पहल के हिस्से के रूप में संयुक्त राष्ट्र (यूएन) को 800, 000 अमरीकी डॉलर का योगदान दिया है जिसका उद्देश्य हिंदी में संगठन की सार्वजनिक पहुँच को बढ़ाना है।11 उल्लेखनीय है कि विश्व हिंदी दिवस 2022 के अवसर पर संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) के विश्व विरासत केंद्र ने 10 जनवरी 2022 को अपनी आधिकारिक वेबसाइट पर भारत के यूनेस्को विश्व धरोहर स्थलों के हिंदी भाषा में विवरण प्रकाशित करने पर सहमति दी है। संयुक्त राष्ट्र में अब हमारे प्रधानमंत्री द्वारा संयुक्त राष्ट्र महासभा में हिंदी में भी अभिभाषण दिया गया था।13

"मानस भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती
भगवान पूरे विश्व में गूंजे हमारी भारती।"

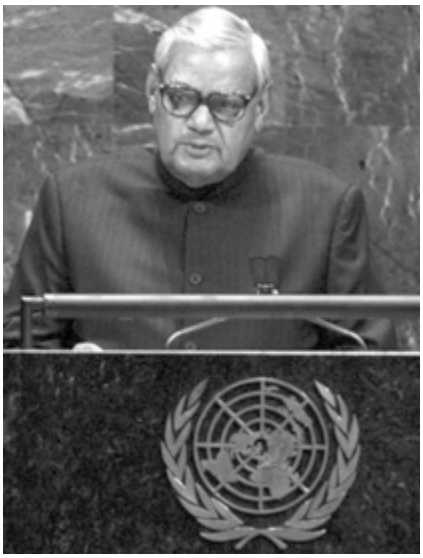

हिंदी हमारी भारतीय संस्कृति का दर्पण भी है। विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रसार भी हिंदी भाषा के कारण हो रहा है। प्रत्येक वर्ष भारत सरकार द्वारा 9 जनवरी को 'प्रवासी भारतीय दिवस' मनाया जाता है जिसमें विश्वभर से प्रवासी भारतीय भाग लेते हैं। इस कार्यक्रम के माध्यम से भी भारतीय संस्कृति को अंतराष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिलती है। जब भारत से किसी क्षेत्र का नागरिक विदेश में कहीं जाता है तो उसकी पहचान किसी क्षेत्र विशेष से नहीं अपितु भारतवर्ष और हिंदी से होती है। करोड़ों अनिवासी भारतीय, मुख्य रूप से वे जिनकी जड़े उत्तर भारत से जुड़ी हुई हैं, ने संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यूजर्सी क्षेत्र के स्थानीय स्कूल अधिकारियों से आग्रह किया है कि उनके बच्चों को हिंदी एक विषय के रूप में पढ़ाया जाए। स्कूल जाने वाले छात्रों के लगभग 100 एनआरआई माता-पिता ने हाल ही में न्यू जर्सी क्षेत्र में स्कूल बोर्ड ऑफ प्लेन्सबोरो को प्रस्तुत एक याचिका में अधिकारियों से आग्रह किया है कि उनके बच्चों को एक वैकल्पिक पाठ्यक्रम के रूप में एक भाषा के रूप में हिंदी उपलब्ध कराई जाए। हालांकि, प्लेन्सबोरो के स्कूल बोर्ड की ओर से अभी तक कोई प्रतिक्रिया नहीं आई है, माता-पिता आशान्वित हैं कि अगले कुछ वर्षों में, उनके बच्चों को स्कूल के दिनों में औपचारिक रूप से एक भाषा के रूप में हिंदी का अध्ययन करने का मौका मिलेगा।9 यूनाइटेड किंगडम में तीन अनिवासी भारतीय और नॉटिंघम स्थित संघठन को हिंदी को बढ़ावा देने के लिए विश्व हिंदी दिवस 2013 के अवसर पर भारतीय उच्चायुक्त द्वारा सम्मानित किया गया। पुरस्कृत होने वाले तीन अनिवासी भारतीय हैं यॉर्क यूनिवर्सिटी के महेंद्र किशोर वर्मा, डॉ. कृष्ण कुमार, गीतांजलि बहुभाषी साहित्य मंडल के अध्यक्ष, बर्मिंघम और नॉटिंघम यूनाइटेड किंगडम से कविता वाचकनवी, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध ब्लॉगर और काव्या रंग जो कि कवियों एवं लेखकों का एक वैश्विक संघ है से सम्बंधित हैं। डॉ. कृष्ण कुमार जो कि आई. आई. टी. मद्रास के ग्रेजुएट हैं ने तो वहाँ के न्यायालय में एक याचिका दायर की है कि यूनाइटेड किंगडम में हिंदी को भी बढ़ावा देना बहुत आवश्यक है अन्यथा देश को भारी कीमत चुकानी पड़ सकती है। जय वर्मा जो कि काव्यरंग, नॉटिंघम के अध्यक्ष हैं तथा जिन्हें हिंदी को बढ़ावा देने के लिए फ्रेडरिक पिनकोट यूके अवार्ड से सम्मानित किया गया है, उन्होंने कहा है की हिंदी न केवल भारत की राष्ट्रभाषा होनी चाहिए अपितु उसे संयुक्त राष्ट्र संघ में भी एक आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए।14 प्रवासियों ने हिंदी साहित्य में भी

श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र संघ में वर्ष 1977 में विदेश मंत्री के तौर पर हिंदी में भाषण दिया था और वर्ष 2002 में प्रधानमंत्री के तौर पर हिंदी में भाषण दिया था। 3 जनवरी, 2018 को लोकसभा में पूछे गए उत्तर में तत्कालीन विदेश मंत्री, श्रीमती सुषमा स्वराज ने बताया कि संयुक्त राष्ट्र संघ की सातवीं आधिकारिक भाषा बनाने के रूप में स्थान दिलाने के लिए कुल 193 सदस्य देशों में से दो तिहाई बहुमत यानी न्यूनतम 129 देशों के समर्थन की आवश्यकता है। इसके साथ ही हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा की मान्यता दिए जाने के बाद होने वाला खर्च भी भारत को उठाना होगा। एक अनुमान के मुताबिक इसके लिए शुरू में लगभग एक अरब रुपए खर्च करने होंगे।

अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है जिसने हिंदी भाषा को समृद्ध बनाया है। प्रवासियों द्वारा निर्मित अपनी सृजनात्मकता साहित्य का छोटा सा किन्तु विश्व के चारों ओर फैला हुआ आकाश निर्मित किया है। उन्होंने हिंदी कि एक छोटी सी दुनिया बनाई है जिसकी आत्मा हिंदी की और भारतीयता की है। आज स्थिति ये है कि मॉरीशस, अमेरिका एवं इंग्लैंड तीन ऐसे प्रमुख ऐसे देश हैं जहाँ प्रवासी भारतीयों की संख्या सबसे अधिक है और सम्भवतः इस कारण हिंदी लेखकों की संख्या भी सबसे अधिक है। इन प्रवासी लेखकों में अनेक ऐसे लेखक हैं जिनकी भारतीय ही नहीं वैश्विक मंच पर भी प्रतिष्ठा है और जिनके पाठकों की संख्या किसी भी लोकप्रिय हिंदी लेखक से कम नहीं है। उदाहरण के लिए उषा वर्मा को 'सिम कार्ड तथा अन्य कहानियाँ' और कृष्णा कन्नहैया को 'किताब ज़िन्दगी की' पुस्तकों के लिए ब्रिटेन के भारतीय उच्चायुक्त से नकद पुरस्कार प्राप्त हुआ है।14

हिंदी को विदेशों में ले जाने पर जोर मुख्य रूप से उन देशों में भारतीय संस्कृति को जीवित रखने के लिए था जहाँ भारतीयों का एक बड़ा अनुपात है। ये मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, गुयाना के साथ-साथ त्रिनिदाद और टोबैगो में पूर्व गिरमिटिया मजदूरों के बच्चे थे। उनके कई पूर्वज हिंदी भाषी थे, इसलिए भारत को इन समुदायों के साथ हिंदी के माध्यम से संबंध स्थापित करने की उम्मीद थी। हिंदी के प्रचार प्रसार को गति देने के लिए भारत सरकार के विदेश मंत्रालय में 'हिंदी एवं संस्कृत प्रभाग' का गठन किया गया है। यह विदेशों में हिंदी के प्रचार प्रसार के लिए विभिन्न गतिविधियां संचालित करता है। यह अपने विदेश स्थित दूतावासों के माध्यम से हिंदी के प्रचार प्रसार में जुटी संस्थाओं को हिंदी कक्षाएं आयोजित करने एवं अन्य गतिविधियों के लिए अनुदान देता है। साथ ही ये विदेशों में अंतराष्ट्रीय क्षेत्रीय हिंदी सम्मेलनों का भी आयोजन करता है। विदेश मंत्रालय की 'भारत परिप्रेक्ष्य' नामक पत्रिका भी अन्य भाषाओँ के साथ-साथ हिंदी में भी प्रकाशित होती है। यह पत्रिका विदेशों में स्थित सभी भारतीय दूतावासों एवं उच्चायोगों में प्रेषित की जाती है जिससे भाषा एवं संस्कृति दोनों का प्रचार एवं प्रसार होता है। अंतराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को प्रतिष्ठित करने के लिए भारतीय संस्कृति सम्बन्ध परिषद् (आई सी सी आर) महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद (आई सी सी आर) विभिन्न विदेशी विश्वविद्यालयों में स्थापित हेड चेयर पर हिंदी शिक्षकों को विश्वविद्यालय स्तर के हिंदी प्रोफेसरों सहित विदेशों में भारतीय सांस्कृतिक केंद्रों में भेजता है। यह भाषा में महारत हासिल करने के इच्छुक विदेशी छात्रों को छात्रवृत्ति भी प्रदान करता है। विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना और उद्घाटन 2008 में मॉरीशस में किया गया था।12

हिंदी को विश्व भाषा बनाने में आने वाली समस्याएँ

हिंदी को विश्व भाषा के रूप में स्थापित करने में बहुत सी समस्याएँ आ रहीं हैं। जैसे विज्ञापन एजेंसियों में विज्ञापन पहले अंग्रेजी में बनते हैं बाद में जैसे तैसे उनका कामचलाऊ अनुवाद कर दिया जाता है। कानून के क्षेत्र में हिंदी की स्थिति खराब है। जो कानूनी पुस्तकें नियम, अधिनियम हिंदी में है उनका उपयोग नहीं हो पा रहा है और न ही अधिनियमों के क्लिष्ट हिंदी शब्द लोगों के समझ में आते हैं। विश्व व्यापार आयात - निर्यात के क्षेत्रों में दस्तावेजों आदि के लिए प्रयुक्त मानक फॉर्म केवल एक दिखावा बनकर रह गए हैं। ऐसे में विश्व बाजार से जुड़ी कानूनी दांव पेंच, विश्व व्यापार संघठन के समझौतों, उनके सम्बद्ध दस्तावेजों और उनसे जुड़ी समस्त प्रक्रियाओं में हिंदी की कल्पना करना भी कठिन है। भारत विश्व बाजार की टेक्नोलॉजी से जुड़ तो रहा है परन्तु अंग्रेजी के माध्यम से। हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओँ की इन आधुनिक संचार साधनों में उपस्थिति काफी कम है। भारत से प्रवजन, पलायन करने वाले युवा बुद्धिजीवियों और श्रमिकों पर यह भाषा आधारित है। किन्तु वे बड़ी तेजी से अंग्रेजियत के रंग में रंगते जा रहे हैं। उनकी अगली पीढ़ी हिंदी से अपरिचित सी है। यहाँ इसके साथ एक अन्य नकारात्मक पक्ष को भी परिलक्षित करना न्यायसंगत होगा। वह है भारत की शिक्षा का माध्यम है। भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ उसके बालकों को विदेशी भाषा में शिक्षा देकर उसकी प्रतिभा का पतन किया जा रहा है। लॉर्ड मैकाले ने भारतीय भाषा को भारत के शिक्षा व्यवस्था के ढाँचे से निकालकर जो अनुचित प्रयास किया वह हमारे दुर्भाग्य से सफल हो गया। इसी का परिणाम है कि सभी तरह से संपन्न होने के बावजूद हिंदी राष्ट्रभाषा के पद पर व्यवहारिक रूप से विद्यमान नहीं है। यह हिंदी को विश्वभाषा के रूप में स्थापित करने की कल्पना को साकार करना बहुत दुष्कर बनाता है। भारतीय संविधान ने इसे बहुत पहले ही यह अधिकार दे दिया था। किन्तु अभी भी व्यवहारिक रूप से अंग्रेजी की ही प्रमुखता हम देखते हैं।

10 जनवरी को विश्व के लगभग 180 देशों में विश्व हिंदी दिवस मनाया जाता है। वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में जब हम विदेश में हिंदी की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य विदेश में हिंदी भाषा के अधिक से अधिक प्रसार के साथ ही विविध क्षेत्रों में हिंदी के उपयोग से है। प्रशंसनीय है कि वर्तमान भारत के प्रधानमंत्री एवं उनकी सरकार हिंदी के उत्थान के प्रति बहुत सजग है। सबसे बड़ी बात तो हमारे प्रधानमन्त्री विदेशों में जाकर भी वे हिंदी में भाषण दे रहे हैं, यह दर्शाता है कि उनको हिंदी के प्रति आस्था है। ये हिंदी को विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में बहुत कारगर सिद्ध होगा। अंतर्राष्ट्रीय जगत में हिंदी भाषा का महत्व बढ़ेगा। नवीन शिक्षा नीति में भी मातृभाषा को शिक्षा का आधार बनाया गया है। क्योंकि कहा गया है कि शैक्षणिक ढाँचे में परिवर्तन अर्थात सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन। भारत सरकार द्वारा हिंदी को प्रोत्साहन देने के लिए तकनीकी स्तर पर भी बहुत प्रयास किये जा रहे हैं, जैसे-'लीला' (लर्न इंडियन लैंग्वेजेज थ्रू आर्टिफीसियल इंटेलिजेंस) एवं 'कंठस्थ' जैसे सॉफ्टवेयर जिनसे हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषायें भी सीखना आसान हो गया है। ये सभी प्रयास हिंदी को अन्य वैश्विक भाषाओं के समकक्ष खड़ा करने में सहायता कर सकेगा।

यानि सारी उन्नति का मूल निज भाषा उन्नति है। निज भाषा के ज्ञान के बिना हृदय तृप्त नहीं होता। अतः हम सभी को हिंदी के ज्ञान के प्रचार - प्रसार, उसके विकास एवं उसकी प्रखरता के लिए नैतिक रूप से प्रतिबद्ध होना चाहिए। हिंदी को विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए देश के अंदर एवं देश के बाहर दोनों ओर से प्रयास करने होंगे। सर्वप्रथम अपने देश के नागरिकों में हिंदी के प्रति एक सम्मान की भावना जगानी होगी, वे इसका सम्मान करें तथा भारत सरकार के समानांतर राज्य सरकारें भी समस्त सरकारी कार्यों को हिंदी में करने हेतु नीतियां तैयार करें ताकि देश के नागरिक हिंदी की उपयोगिता समझ पाएं। जब अपने देश में निज भाषा का सम्मान होगा तो विश्व में भी उसका सम्मान होगा। रूस, जर्मनी, जापान, फ्रांस जैसे प्रगतिशील विकसित देशों का ही हम अगर उदाहरण लें तो इन देशों में अपने देश की भाषा से ही सब कुछ काम होता है। सरकार, शिक्षा, व्यापार या न्यायालय सब कुछ निज भाषा में कार्यान्वित होता है। इन देशों के लोगों को अन्य किसी भाषा की जरुरत नहीं है, वे अपनी भाषा का सम्मान करते हैं। इसलिए दुनिया में इन सभी देशों का एक अलग स्थान है। भारत में भी ऐसा ही वातावरण बनाने की आवश्यकता है। नयी शिक्षा नीति में हिंदी समेत सभी भारतीय भाषाओं पर जोर दिया गया है और इसका असर देखने को मिल रहा है। आज दिल्ली विश्वविद्यालय, अलीगढ़ विश्विद्यालय और जामिया मिलिया विश्विद्यालय में हिंदी विषय में स्नातक करने के लिए सबसे ज्यादा आवेदन आ रहें हैं। ख़ास बात ये है कि नॉर्थ - ईस्ट की यूनिवर्सिटी में भी हिंदी कि पढ़ाई करने वालों की संख्या काफी ज्यादा है।6

आज भारत विश्व की छठी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। अंतराष्ट्रीय बिरादरी को हिंदी और हिन्दुस्तान दोनों के महत्व को स्वीकार करना ही होगा। जहाँ तक देश के बाहर किये जाने वाले प्रयासों की बात है तो समय - समय पर आयोजित होने वाले विश्व हिंदी सम्मलेनों में हिंदी को विश्व भाषा के रूप में स्थापित करने के लिए ठोस एवं परिणामजनक नीतियां तैयार की जानी चाहिए। भारत सरकार द्वारा आयोजित प्रवासी भारतीय दिवस उसी दिशा में उठाया गया एक सराहनीय कदम है। इसके साथ-साथ किये गए प्रयासों का समय-समय पर मूल्यांकन भी नितांत आवश्यक है। हिंदी को विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए मिलजुलकर ही प्रयास करने होंगे। हिंदी को विश्व की अन्य समस्त महत्वपूर्ण भाषाओं के समकक्ष लाकर खड़ा करने में भारत के प्रत्येक नागरिक को अपना योगदान देना आवश्यक है। क्योंकि अपनी भाषा की यदि प्रगति होगी तो स्वयं की प्रगति होगी और यदि स्वयं की प्रगति होगी तो देश की भी उन्नति होगी। परिणामस्वरूप भाषा का वैश्विक कद बढ़ेगा। जैसा कि हिंदी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने भी कहा है7 -

"निज भाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत
न हिय को सूल।"

सन्दर्भ सूची :-

1. आचार्य दंडी (छठी एवं सातवीं शताब्दी), काव्यादर्श, 1/41
2. https://blog.lingoda.com › most-spoken-languages-in-th... (25 july 2022)
3. वेबदुनिया, 25 जुलाई 2022, भाषा
4. विकिपीडिया से ली गयी जानकारी के अनुसार (https://en.wikipedia.org/wiki/Fiji)
5. जीतेन्द्र मोहन शर्मा, वैश्वीकरण एवं हिंदी का विकास, राजभाषा भारती 2017 वर्ष 39 अंक 152
6. भूपेंदर शर्मा, नवभारत टाइम्स, 2022
7. भारतेन्दु हरिश्चंद्र, निज भाषा कविता
8. टाइम्स ऑफ़ इंडिया 11 जून, 2022
9. हिंदुस्तान टाइम्स 24 अगस्त, 2005
10. हितवाद 28 अक्टूबर 2022
11. Adda 247 करंट अफेयर्स 10, जून 2022
12. आउटलुक 29 अक्टूबर 2022
13. आकाशगुप्ता, हिंदी से आगे बढ़ता देश, स्मारिका 2022
14. टाइम्स ऑफ़ इंडिया 20 मार्च 2013
15. राकेश शर्मा 'निशीथ', विश्वभाषा की ओर हिंदी के बढ़ते कदम, राजभाषा भारती 2018, अंक 155
16. नवभारत टाइम्स 14 सितम्बर 2014

• • •

*खान नियंत्रक एवं राजभाषा अधिकारी
भारतीय खान ब्यूरो, नागपुर
**संपादक
भारतीय खान ब्यूरो, नागपुर

राष्ट्रीय चेतना का अलख जगाती कालजयी कहानियाँ

- डॉ. पुरुषोत्तम पाटील

जब हम राष्ट्रीय चेतना की बात करते हैं और इस अखंड भारत वर्ष की बात करते हैं तो हम देखते हैं कि भारतवर्ष के समग्र इतिहास में हर पल कहीं न कहीं इस देश के राजाओं को, इस देश के मूल शासन कर्ताओं को विदेशी आक्रांताओं और विदेशी दुश्मनों से दो-दो हाथ करने पड़े क्योंकि भारत इतना वैभव संपन्न था, सांस्कृतिक - सामाजिक और आर्थिक रूप से इतना प्रबल, इतना उन्नत था कि विश्व की हर छोटी बड़ी शक्ति इसे ईर्ष्या भरी नजर से देखती थी और विश्व के हर छोटे बड़े लुटेरे का यह स्वप्न होता था कि एक बार वह भारतवर्ष जाकर वहां की धनसंपदा का कुछ हिस्सा लूट ले, अत:हम देखते हैं कि पुराने समय से कई लुटेरे कई विदेशी आक्रांता समय-समय पर इस पवित्र भारत भूमि पर आक्रमण करते रहे, हमले करते रहे किंतु भारत की इस पवित्र भूमि ने ऐसे वीरों को जन्म दिया है जिन्होंने अपनी जान की बाजी लगा दी किंतु इस धरती का मस्तक इस, राष्ट्र का मस्तक कभी भी झुकने नहीं दिया।

यह परंपरा महाराजा दाहिर से लेकर आधुनिक समय में नेताजी सुभाष चंद्र बोस तक हमें देखने को मिलती है। इस कालखंड के दौरान अनगिनत वीरों ने, राष्ट्र के अनगिनत सपूतों ने अपनी जान दे कर, अपने परिवार का, अपनी संपत्ति का, अपनी सभी सुख-सुविधाओं का त्याग और सब कुछ समर्पित कर एक सर्वोच्च बलिदान की परंपरा बनाए रखी और सर्वोच्च बलिदान की इस परंपरा का ही फल है कि आज हम यूँ मुक्त हवा में साँस ले पा रहे हैं क्योंकि इन महान वीरों ही ने, इन महान राष्ट्र योद्धाओं ही ने आक्रांताओं से, लुटेरों से इस महान भारत भूमि को बचाए रखा।

हम स्वतंत्रता के बाद आज यहाँ तक कैसे पहुँचे और इस स्वतंत्रता को पाने के लिए किन-किन लोगों ने कितने कष्ट झेले, कितने बलिदान दिए और किस प्रकार से अपना जीवन इस राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए बलि की वेदी पर अर्पण कर दिया, इन सारी बातों को आज के समय में स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव के अवसर पर नए सिरे से देखना, इन बातों को समझना, इन बातों को परखना और समाज के सामने, नई पीढ़ी के सामने इन बातों को इन चुनिंदा कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत करना बहुत ही समीचीन होगा ऐसा हम समझते हैं। इसी उद्देश्य से इस आलेख के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय समर्पण और राष्ट्र के प्रति सर्वोच्च बलिदान का संदेश देती कुछ चुनी हुई कहानियों का विवेचन हम आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

इस देश की आस्था को, राष्ट्र की सनातन परंपरा को, अनाम वीरों के बलिदान को हिंदी साहित्य में साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से समाज के सामने लाने का प्रयास किया है जिससे उन महान योद्धाओं ने जो जीवन जिया, जो समर्पण किया उससे हम आज अपने आपको गौरवान्वित और ऊर्जान्वित महसूस करते हैं। इन कहानियों के माध्यम से वीरों की गाथाओं का वर्णन, वीरता की परंपरा पुरानी पीढ़ी से अगली पीढ़ी और अगली पीढ़ी से उसकी अगली पीढ़ी में निरंतर हस्तांतरित हो रही है ताकि हमारे इन वीर सपूतों की उज्जवल गाथा का कभी

हमें विस्मरण ना हो क्योंकि कहा जाता है कि जो लोग इतिहास को याद नहीं रखते उनका भविष्य दिशाहीन हो जाता है। आज भारतवर्ष जो भी है इन वीरों के बल पर ही है, इनके बलिदानों से गली हुई अस्थियाँ इस राष्ट्र की नींव में पड़ी हैं जिसके ऊपर भारत भुवन की यह विशाल अट्टालिका आज सिर उठाए गर्व से खड़ा है।

हिंदी साहित्य में इन लोगों का गुणगान करती, इन लोगों का महिमा गान करती कहानियाँ हमेशा राष्ट्रीय चेतना और पथप्रदर्शन की दृष्टि से इस देश की नई पीढ़ी को एक नया मार्ग दिखाती हैं, इस दृष्टि से इन कहानियों का, रचनाओं का अध्ययन होना और इन रचनाओं को नई पीढ़ी तक लाना हमारे लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है ताकि हमारी नई पीढ़ी तक, समाज के लोगों तक इन वीरों की, राष्ट्र सपूतों की वीरता की कथा पहुँच सके।

आज जब हम स्वतंत्रता की 75 वीं वर्षगाँठ मना चुके हैं तो यह बहुत आवश्यक हो जाता है कि हम स्वतंत्रता के बाद आज यहाँ तक कैसे पहुँचे और इस स्वतंत्रता को पाने के लिए किन-किन लोगों ने कितने कष्ट झेले, कितने बलिदान दिए और किस प्रकार से अपना जीवन इस राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए बलि की वेदी पर अर्पण कर दिया, इन सारी बातों को आज के समय में स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव के अवसर पर नए सिरे से देखना, इन बातों को समझना, इन बातों को परखना और समाज के सामने, नई पीढ़ी के सामने इन बातों को इन चुनिंदा कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत करना बहुत ही समीचीन होगा ऐसा हम समझते हैं। इसी उद्देश्य से इस आलेख के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय समर्पण और राष्ट्र के प्रति सर्वोच्च बलिदान का संदेश देती कुछ चुनी हुई कहानियों का विवेचन हम आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

'रिहाई तलवार की धार पर' वृंदावनलाल वर्मा की एक ऐसी ही कहानी है। यह कहानी वीर सिखों के अतुलनीय बलिदान और शौर्य की गाथा का एक छोटा सा अंश है, जो वीर सेनानी 'बंदा बैरागी' के जीवन पर आधारित है।

बात उन दिनों की है जब देश में मुग़लों का शासन था और ३०साल का युवा फ़र्रुख़सियर गद्दीनशीन था। यह वही बादशाह था जिसे इतिहास में 'घृणित कायर' के नाम से भी जाना जाता है। गुरु गोविंदसिंहजी के ५ और ७ वर्ष के दो बेटों को सरहिंद के नवाब वजीर ख़ान ने धोखे से पकड़ कर दीवार में ज़िंदा चुनवा दिया। इस घटना से सारा सिख और हिन्दू समाज ग़ुस्से में था, हर कोई इस शहादत का बदला लेना चाहता था। गुरूजी के आदेश पर 'बंदा बैरागी ' पंजाब में आए, १७१० में उन्होंने सरहिंद के नवाब वजीर ख़ान को मौत के घाट उतार कर साहिबज़ादों की शहादत का बदला लिया, लोहगढ़ को अपनी राजधानी बनाकर स्वराज की स्थापना की।

मुग़ल बादशाह फ़र्रुख़ सियर की नींद हराम हो चुकी थी। सन १७१५ में उसने 'बंदा बैरागी' को पकड़ने हेतु अपने सिपहसालार अब्दुल समद ख़ान के नेतृत्व में अपनी सेना को गुरुदासपुर के करीब के धारीवाल क्षेत्र के नंगल गाँव की ओर भेजा। आख़िर रसदपूर्ति के अभाव में दिसंबर के महीने में उन्हें आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। उनके साथ लगभग ८०० सिख सैनिकों को ग़िरफ़्तार कर दिल्ली लाया गया, उन्हें कहा गया कि या तो इस्लाम को चुनें या मौत को, सभी हर्ष मौत का वरण कर अपनी सनातन पहचान को अक्षुण्ण रखने हेतु, अपने जीवन की बलि देने हेतु तत्पर थे। बादशाह ने झल्लाकर रोज १०० लोगों को मौत के घाट उतरने का हुक्म दिया।

'बलिदान और सर्वस्व समर्पण की भावना' ऐसी कि जैसे ही यह फ़रमान क़ैदियों तक पहुँचा उनमें ख़ुशी की लहर दौड़ गई, आलम ये था कि वे सब "हर्ष के साथ प्रतीक्षा करते थे और पहले मारे जाने के लिए एक-दूसरे से लड़-लड़ पड़ते।"[1] भला मौत से डरे वो सिख कैसा वहाँ आपस में इस बात पर झगड़े होने लगे कि पहले फाँसी पर कौन चढ़ेगा, "जल्लाद से हर एक सिख कहता, 'अरे ओ मुक्तिदाता, पहले मुझको मार!"[2] ऐसी दीवानगी के सामने तो स्वयं मौत भी शरमा जाती लेकिन वे निर्दयी मलेच्छ कहाँ पसीजने वाले थे। उनमें कई नाबालिग़ भी थे, लेकिन सभी एक से एक धैर्यवान हर कोई होड़ लगा रहा था कि गुरु के पास तो वह ही पहले जाएगा! उन्हें ना तलवार का डर था ना तलवार की धार का। दारोग़ा उसे भीतर जेल के दूसरे हिस्से में ले गया, वहीं उस बालक को भी बुलाया गया। उससे जब कहा गया कि उसकी रिहाई का हुक्म आया है तो उसे कोई अचरज नहीं हुआ। उसके चहरे के भाव बिलकुल सामान्य थे, मानों कुछ हुआ ही ना हो- ' रिहाई का हुक़्म कागज पर, या तलवार की धार पर!'[3]

उधर सुबह सुबह जेल में सारे क़ैदी ऐसे ख़ुश हो रहे थे मानों कोई त्योहार हो, सभी में होड़ मची थी कि पहले कौन जल्लाद के सामने जाएगा। हाँ! त्यौहार ही तो था वह ? मृत्यु का! इस मातृ भूमि पर न्यौछावर हो जाने का उत्सव ही तो मना रहे थे वे सब।

सुभद्रा कुमारी की राष्ट्रीयता की अलख जगाती कहानी है **"अमराई"**, एक छोटे से गाँव के ठाकुर साहब जिनकी उम्र साठ के क़रीब थी उस गाँव के सर्वे सर्वा थे, नवासे-नवासियों से भरा पूरा परिवार था, सब कुछ ठीक चल रहा था। उन दिनों देशभर में स्वतंत्रता आंदोलन की जो हवा ज़ोर पकड़ चुकी थी वह 'पराधीनता और दमन के विरुद्ध संघर्ष की भावना' का ही प्रभाव कहा जा सकता है। "सत्याग्रह आन्दोलन अपने पूर्ण विकास पर था, सारे भारतवर्ष में समराग्नि धधक रही थी।"[4] और यह हवा क्या जवान-क्या बूढ़े, क्या मर्द-क्या औरतें और क्या बच्चे सभी के दिलों को मदहोश कर रही थी, कोई भी उसके असर से अछूता ना था। सुकुमार हृदयों में भी देश-प्रेम के नन्हें नन्हें पौधे प्रस्फुटित हो

रहे थे। बहादुरी के साथ देश के हित के लिए फाँसी के फंदे से लटक जाने में वे भी शायद गौरव समझते थे।"[5] यह जज्बा 'बलिदान और समर्पण की भावना' का ही परिचायक था। इन स्थितियों में भी बच्चों के मन पर हुए स्वतंत्रता आंदोलन के गहरे असर को देखा जा सकता है, जब वे ठाकुर साहब के सामने आने पर बड़े उत्साह से कहने लगते हैं–

"दादा! देखो मेरे पास भी तलवार है, मैं भी बहादुर बनूंगा।"[6]

इतने ही में उसकी बड़ी बहिन कांती, जिसकी उमर करीब नौ साल की थी धानी रंग की साड़ी पहिने आकर ठाकुर साहब से बोली-

"दादा! ये विजय लकड़ी की तलवार लेकर बड़े बहादुर बनने चले हैं। मैं तो दादा! स्वराज का काम करूँगी और चर्खा चला चलाकर देश को आजाद कर दूंगी, फिर दादा बतलाओ, मैं बहादुर बनूंगी कि ये लकड़ी की तलवार वाले ?"[7]

विजय की तलवार का पहिला वार कान्ती पर ही हुआ, उसने कान्ती की ओर गुस्से से देखते हुए कहा-

"देख लेना किसी दिन फाँसी पर न लटक जाऊँ तो कहना। लकड़ी की तलवार है तो क्या हुआ मारा कि नहीं तुम्हें?"[8] यह इस बात की ओर संकेत करता है कि तत्कालीन साहित्यकार किस तरह से राष्ट्रीय विचारों एवं चेतना की भावना को अपनी अगली पीढ़ी में हस्तांतरित कर रहे थे।

मूर्धन्य साहित्यकार **विष्णु प्रभाकर** की **'बहादुर सेनापति'** एक विशेष कहानी है जो स्वतंत्रता आंदोलन में भारत के वीर सेनानी नेताजी सुभाषचंद्र बोस तथा उनकी 'आज़ाद हिंद सेना' के अतुलनीय बलिदान को अधोरेखित करती है। किस प्रकार नेताजी के नेतृत्व में आज़ाद हिन्द फ़ौज के वीर सैनिक भारत माता को दासता की बेड़ियों से मुक्त करवाने हेतु जी-जान से लड़ रहे थे, यही फ़र्क़ था उनमें और दुश्मन सैनिकों में क्योंकि वे मानते थे -

"पेट के लिए कहीं लड़ा जाता है?

एक सैनिक पूछ बैठा, 'तो किसके लिए?

जीतसिंह ने राइफल तोलकर जवाब दिया, 'देश के लिए।"[9]

एक बार फिर गर्व से सबके मस्तक ऊँचे उठे, "हाँ! हम देश के लिए लड़ते हैं; उस देश के लिए लड़ते हैं, जिसकी मिट्टी से हम बने हैं, और तब तक लड़ते रहेंगे, जब तक यह आज़ाद नहीं हो जाता, 'हाँ, हमने दिल्ली पहुँचने की प्रतिज्ञा की है!' 'हमें लाल क़िले पर अपना प्यारा झंडा फहराना है।"[10]

यही वो जज़्बा था जो उम्मीद को प्रबल करता था कि स्वतंत्रता अब अधिक दूर नहीं है, क्योंकि ध्येय पवित्र था। एक ऐसा ध्येय जो सर्वस्व समर्पण के लिए प्रेरित करता था - "घबराओ नहीं। मैं जानता हूँ कि तुम यहीं मरना चाहते हो। हम सब यही चाहते हैं और विश्वास रखो, मैं भी तुम लोगों के साथ यहीं इसी मिट्टी में अपने देश के लिए लड़ते-लड़ते सो जाना चाहता हूँ।"[11] जो इस मिट्टी के लिए मिट्टी में मिलने को आतुर था। यह वर्तालाप उन लोगों के बलिदान और सर्वस्व समर्पण की भावना को प्रदर्शित करता है।

दुश्मनों के हथियारों के ज़ख़ीरे और अपार संख्या भी उनके इरादों को डिगा नहीं पा रही थी -"दुश्मन के सैनिक बहुत थे, परंतु आज़ाद हिंद फौज के सैनिकों का उत्साह संख्या की परवाह नहीं कर रहा था। उनके क़दम बढ़ना जानते थे, उनकी आँखें दुश्मन पर थीं, उनके हाथों में बायोनेट थी। वे नारा लगाते— नेताजी की जय, और दुश्मन पर टूट पड़ते।"[12] क्योंकि उनको ना ज़िंदगी की परवाह थी और ना मौत का डर, उन्हें फ़िक्र थी तो केवल इस बात की कि कहीं उनके नेताजी के नाम पर धब्बा ना लग जाए - "वे संख्या में कम हैं, पर वे पीछे नहीं हटेंगे, और वे नहीं हटे। वह चिल्लाया—'शाबाश वीरों! बढ़े चलो, नेताजी के नाम पर धब्बा न लगने पाए।"[13]

इसके लिए जो चाहे करना पड़े उनको उस समरांगण में, गोला बारूद और अग्नि की लपटों के बीच भी एक ही चित्र दिखाई देता था बेड़ियों में जकड़ी भारतमाता का, तिरंगे का, दिल्ली का, हिन्दुस्तान का ... "वह उनका कमांडर जो था; चिल्ला रहा था- 'नेताजी की जय! इनकलाब ज़िंदाबाद! आज़ाद हिंदुस्तान ज़िंदाबाद! चलो दिल्ली! जय हिंद!' सैनिक उन नारों को दूने उत्साह से दोहराते और परवानों की तरह आगे बढ़ जाते।"[14]

सारी युद्ध भूमि में हाहाकार मचा था, आज़ाद हिन्द फ़ौज का एक एक सैनिक दुश्मनों के दस-दस पर भारी था, मानों उनके कानों में एक ही मंत्र गूँज रहा हो – 'चिड़ियाँ नाल मैं बाज लड़ावाँ, गिदरांनुं मैं शेर बनावाँ, सवा लाख से एक लड़ावाँ' .... और वे आगे बढे जा रहे थे, दुश्मन को खदेड़ रहे थे, कमांडर स्वयं आगे – आगे बढ़ता हुआ सैनिकों का हौसला बढ़ा रहा था...'वह फिर चिल्लाया, 'नेताजी की जय! आज़ाद हिंद फौज ज़िंदाबाद, शाबाश! बहादुरों जीत तुम्हारी है...।'[15]

सैनिक तेजी से आगे बढ़े। उसके आधे साथी धरती पर लेट गए थे, पर वे आँखें मूँदे कमांडर के शब्दों पर आगे बढ़ रहे थे...। तभी नियती ने अपना दाँव खेला -"एक गोली उड़ी और कमांडर के मस्तिष्क में घुसती चली गई। वह काँपा, लड़खड़ाया और फिर गिर पड़ा। वह सैनिकों के बीच में, दुश्मन के सिपाहियों की लाशों पर गिरा था। उसका हाथ राइफल पर था, उसके होंठ खुले थे, मानो मुसकराते हों, आज़ाद हिंद ज़िंदाबाद!"[16] चारों और स्तब्धता छा गई, एक भयावह सी शांति..... किंतु तभी अचानक कहीं से दूसरा सिपाही उठ खड़ा हुआ और चिल्लाया - "शाबाश, मेरे बहादुर साथियों! जीत तुम्हारी है। दुश्मन भाग रहा है! नेताजी की जय! आज़ाद हिंद ज़िंदाबाद, इनकलाब ज़िंदाबाद...!"[17] फिर एक नया उत्साह, फिर एक नई ऊर्जा, फिर

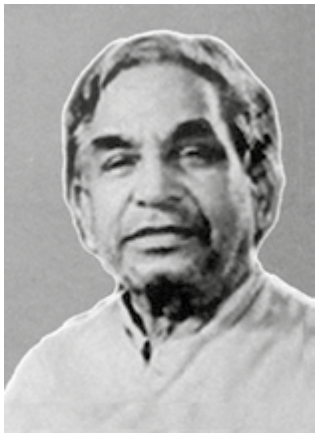

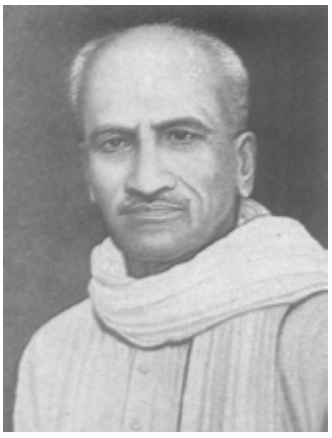

एक नया हौसला और कुछ पल को ठिठके सैनिक फिर आगे बढ़ने लगे क्योंकि उन्होंने अपने नेताजी को वचन जो दिया था।

पांडेय बेचैन शर्मा 'उग्र' की कहानी **'उसकी माँ'** स्वतंत्रता आंदोलन के उस दौर में युवाओं के जोश और उनके जुनून को तथा उस काल के सारे सामाजिक वातावरण को हमारे सामने बयां करती है। यह वो दौर था जब देश के युवा अपने देश के लिए उसकी स्वतंत्रता के लिए सब कुछ कर गुजरने के लिए तत्पर थे। जो अभावों में जीते हैं इसके बावजूद वे केवल अपनी ही नहीं सोचते अपितु अपने समाज और देश के लिए कुछ कर गुजरने की उनके मन में एक ललक होती है और इस बात को वे छिपाते भी नहीं। ऐसा ही एक पात्र है 'लाल' जो बेरोजगार है, ग़रीब है, पिता का देहांत हो चुका है, घर में केवल एक बूढ़ी माँ है, लेकिन इन सारे अभावों के बावज़ूद उसकी चिंता देश की परतंत्रता है, जो उसे रात दिन बेचैन किए है, वह कहता है "मेरे विचार स्वतंत्र अवश्य हैं, मैं जरूरत-बेजरूरत जिस-तिस के आगे उबल अवश्य उठता हूँ। देश की दुरवस्था पर उबल उठता हूँ, इस पशु-हृदय परतंत्रता पर।"[18] यही तो व्यक्ति की जीवंतता का प्रतीक है।

लेकिन इतना होने के उपरांत भी स्वार्थी चाचा उसे ही सुधरने का उपदेश देने लगते हैं "तुम्हारी इस बक-बक से न तो देश की दुर्दशा दूर होगी और न उसकी पराधीनता।"[19] किन्तु मतवाला भारत माता का लाल कहाँ मानने वाला था, उसे कहाँ फ़िक्र थी अपने भले बुरे की, उसके पास था ही क्या खोने के लिए ? उसका का तो लक्ष्य तय था "मेरी कल्पना यह है कि जो व्यक्ति समाज या राष्ट्र के नाश पर जीता हो, उसका सर्वनाश हो जाए!"[20] लाल तो लाल उसके सारे हमउम्र साथियों के मन में भी यही भावना है उनको तो बस अपने देश और अपनी भारतमाता ही दिखाई देती है। लाल का दोस्त लाल की माता जानकी की सूरत देख कहता है -"'माँ! तू तो ठीक भारत माता-सी लगती है। तू बूढ़ी, वह बूढ़ी। उसका उजला हिमालय है, तेरे केश"[21] उन सभी युवाओं के दिलों में भी तत्कालीन दमनकारी अंग्रेज सत्ता के विरुद्ध घृणा और चिढ़ का भाव था।

"रात की कालिमा को भोर की किरणें मिटाने लगीं थीं किन्तु स्मृति पटल से लाल की छवि मिटते नहीं मिटती थी। "अँधेर धूमिल हुआ, फीका पड़ा, मिट चला। उषा पीली हुई, लाल हुई। रवि रथ लेकर वहाँ क्षितिज के उस छोर पर आकर पवित्र मन से खड़ा हो गया।"[22] और फिर जानकी माँ उस रवि रथ पर आरूढ़ हो निकल पड़ी अपने लाल से मिलने, उसने बुलाया जो था उसे, कहता ना था "यहाँ से थोड़ी ही देर का रास्ता है, माँ! एक साँस में पहुँचेगी। वहीं हम स्वतंत्रता से मिलेंगे, तेरी गोद में खेलेंगे।"[23] वह भी किसके लिए रुकती यहाँ पर, उसका कौन था यहाँ, वह किसी की कोई ना थी, वह तो केवल माँ थी, उसकी माँ.....।

राहुल सांस्कृत्यायन भारतीय साहित्य की ही नहीं अपितु भारतीय सांस्कृतिक विरासत के महान प्रवक्ताओं में से हैं। ईसा पूर्व 6000 से लेकर सन 1942 ईसवी तक के भारत की संस्कृति और राष्ट्रीय इतिहास को राहुल सांस्कृत्यायन के कहानी संग्रह 'वोल्गा से गंगा' की कहानियाँ सटीक रूप से बयान करती हैं यह एक प्रकार से भारत की सांस्कृतिक चेतना का दस्तावेज ही है।

'मंगलसिंह' कहानी है काशीराज महाराजा चैतसिंह के पौत्र मंगलसिंह की, किस तरह अंग्रेजों द्वारा अपने दादा की सत्ता हथिया लिए जाने के बाद मंगलसिंह अपनी माँ के साथ, माँ के सानिध्य में अपना जीवन व्यतीत करता है और युवा मंगलसिंह के ऊपर किस तरह परिस्थितिवश इसाईयत के संस्कार होने लगते हैं, फिर उच्च शिक्षा के लिए इसाई पादरी की मदद से मंगल का केंब्रिज विश्वविद्यालय में दाखिला पाकर उच्च शिक्षा हेतु विदेश चले जाना।

इधर माँ का केवल एक ही सपना होता है कि किसी तरह महाराजा चैतसिंह की गद्दी वापस उनके पौत्र मंगल सिंह को मिले और उनके जीवन में फिर वही पुराना वैभव लौट आए जिसे अंग्रेजों ने हमेशा की तरह छल से हथिया लिया था, जिसकी टीस वह व्यक्त भी करता है कि - 'मेरे दादा महाराज चैतसिंह को लुटेरे वारेन हेस्टिंग्स ने नाहक पामाल किया'[24]। किंतु नियति को कुछ और ही

मंज़ूर था, मंगलसिंह पर वहां के ईसाइ धर्म के संस्कारों का गहरा प्रभाव होने लगता है।

जब हम 'राष्ट्रीय एकता और अखंडता की भावना' के तत्व के आधार पर इस कहानी को देखते हैं तो हम पाते हैं कि इस कहानी की पार्श्वभूमि 1857 की प्रथम क्रांति के लगभग दो वर्ष पूर्व की है जिसका आरम्भ फरवरी 1856 ईसवी को अंग्रेजों द्वारा अवध राज्य को अपने साथ में मिलाए जाने से होता है और आगे जब भारतीय सैनिकों को अंग्रेजी सेना के अफसरों द्वारा जानबूझकर चर्बी लगे कारतूस दिए जाते तो हैं ताकि सेना में काम करने वाले हिंदू और मुसलमानों का धर्म भ्रष्ट हो जाए, सैनिक विद्रोह कर मंगलसिंह के नेतृत्व में साथ आ जाते हैं, उसकी 'इस छोटी टुकडी में ब्राह्मण - राजपूत जाट - गुर्जर, हिंदू- मुसलमान का भेद जाता रहा'[25] सब एक साथ रोटी पकाते एक ही साथ खाते क्योंकि मंगलसिंह "चेतसिंह के सिंहासन को पाने के लिए नहीं लडने आया था, वह आया था समानता, स्वतंत्रता और भ्रातृभाव के शासन को स्थापित करने जिसमें जात-पात हिंदू मुसलमान का भेद भाव भी वैसा ही वांछनीय नहीं था जैसा कि अंग्रेज पूँजीपतियों का शासन।"[26]

नायक मंगलसिंह लंदन जाकर ईसाई धर्म अवश्य अपना लेता है किंतु उसके ख़ून में जो भारतीयता बहती थी वह उसे मिटा नहीं पाया और 'राष्ट्र के प्रतीक' अब भी उसे आंदोलित करते थे, क्योंकि वह अपनी विदेशी मित्र एनी से कहता है कि 'जान पड़ता है गंगा मेरे ख़ून में है।'[27]

मंगल सिंह के समझाने पर और उसके द्वारा लोगों में 'देशप्रेम की तीव्र भावना' जागृत करने के चलते कई लोग 1857 की युद्ध क्रांति हेतु सेना में शामिल होने लगे। उनके समझाने की वजह से 'झुंड के झुंड तरुण आज़ाद हिंद सेना में भर्ती होने के लिए आने लगे।'[28]

देश के प्रति 'बलिदान और सर्वस्व समर्पण की' दृष्टि से जब हम देखते हैं तो पाते हैं कि नायक मंगलसिंह के 'इशारे पर जान देने के लिए पल्टन का एक-एक जवान तैयार था।'[29] और अंत में वही हुआ जो इतिहास में देश के अनगिनत वीरों के साथ हुआ, वही गंगा माँ जिसकी गोद में वह पैदा हुआ, पला-बढ़ा, जिसका जल उसकी धमनियों में रुधिर बन बहता था, एक दिन अपनी मातृभूमि की सेवा करते-करते वह उसी माँ के आँचल में लहू लुहान हो कर निस्तेज हो गया- 'आख़िरी बार गंगा में नाव पर दोनों ओर से घिर गए.गंगा में पाँच-छ: लाशें लेकर नाव जब बह चली तो उसे पकड़ा गया.अंग्रेजों ने उस समय भारत की वीरता की पूजा की!'[30] और शत्रुओं को भी उसकी इस वीरता को नमन करना पड़ा!

इस तरह हम देखते हैं कि उपरोक्त समस्त कहानियों में राष्ट्रीय चेतना का भाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है, ये कहानियाँ हमें आज भी उतनी ही ताजी, उतनी ही महकती हुई, उतनी ही ऊर्जावान प्रतीत होती हैं जितनी वे उस दौर में रहीं होंगी जिस दौर में स्वतंत्रता का यह संघर्ष जारी था। देश के लोगों, युवाओं, बच्चों के मन में इन कहानियों के माध्यम से एक नव चेतना जागृत हो, एक नया उत्साह जागृत हो, और जगे एक अलख जिससे भारत जन सदैव प्रेरित होकर राष्ट्र कर्म और राष्ट्र धर्म के प्रति समर्पित हो इस देश के सर्वांगीण विकास की दिशा में सोचे और वह तत्पर रहे सदैव अपनी इस भूमि की रक्षा हेतु जिसे पाने के लिए, बनाने के लिए बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ी है हमें।

संदर्भ ग्रंथ:-

1. शरणागत (कहानी संग्रह)-ले. वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी, चतुर्थ संस्करण-1959- पृ.-73
2. --------- वही --------- पृ.- 73
3. --------- वही --------- पृ.- 77
4. बिखरे मोती (कहानी संग्रह) - ले. सुभद्राकुमारी चौहान, प्रकाशक- सुभद्राकुमारी चौहान, 36-राइट टाउन, जबलपुर - 1932 - पृ. -154
5. --------- वही --------- पृ.- 155
6. --------- वही --------- पृ.- 157
7. --------- वही --------- पृ.- 157
8. --------- वही --------- पृ.- 158
9. मेरा वतन (विष्णु प्रभाकर संपूर्ण कहानियाँ) - ले.विष्णु प्रभाकर, प्रभात प्रकाशन, 4/19- आसफ अली रोड, नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण-2010 - पृ.81
10. --------- वही --------- पृ.-81
11. --------- वही --------- पृ.-83
12. --------- वही --------- पृ.-83
13. --------- वही --------- पृ.-83
14. --------- वही --------- पृ.-85
15. --------- वही --------- पृ.-86
16. --------- वही --------- पृ.-86
17. --------- वही --------- पृ.-86-87
18. कला का पुरस्कार (कहानी संग्रह)- ले. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' - आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, नई दिल्ली, सं. 1955 - पृ. – 77
19. --------- वही --------- पृ.- 77
20. --------- वही --------- पृ.- 78
21. --------- वही --------- पृ.-80
22. --------- वही --------- पृ.-89
23. --------- वही --------- पृ.-85
24. वोल्गा से गंगा (कहानी संग्रह)-ले. राहुल सांस्कृत्यायन-दीक्षित प्रेस, प्रयाग-संस्करण 1942-पृ.-324
25. --------- वही --------- पृ.-341
26. --------- वही --------- पृ.-333
27. --------- वही --------- पृ.-324
28. --------- वही --------- पृ.-339
29. --------- वही --------- पृ.-340
30. --------- वही --------- पृ.-341

• • •

सहायक प्राध्यापक, कवयित्री बहिणाबाई चौधरी उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, जलगाँव, महाराष्ट्र - 425001

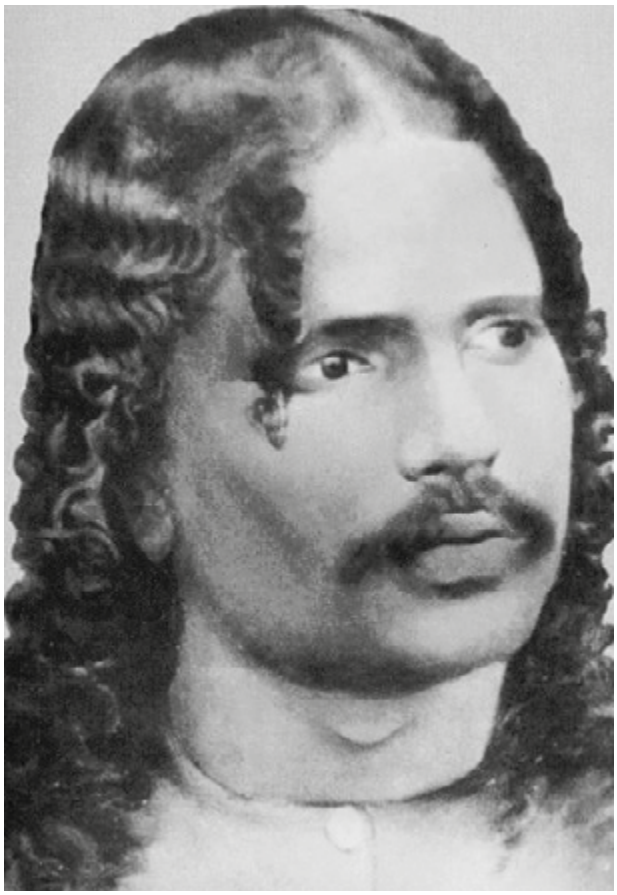

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की शिक्षा-नीति

– डॉ. बिजय कुमार रबिदास

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र मध्यकाल और आधुनिक काल के बीच की कड़ी हैं। उनके पीछे दरबारी संस्कृति की एक विराट काली छाया है और सामने आधुनिकता की दहलीज़ पर खड़ा हिन्दी-प्रदेश है। इस हिन्दी-प्रदेश की उन्नति और प्रगति के लिए उन्होंने अपना पूरा जीवन खपा दिया। उनके लिए साहित्य और समाज दो अलग-अलग धुरी नहीं है। साहित्य के माध्यम से उन्होंने विशाल हिन्दी समाज की सेवा की, लोगों में जातीय चेतना का विकास किया और उन्हें नए-नए ज्ञान-विज्ञान के विषयों से अवगत कराया। उनकी शिक्षा सम्बन्धी सुधार कार्य हिन्दी नवजागरण की ही एक कड़ी है। उन्होंने अपनी शिक्षा-नीति में समाज के सभी वर्गों के लोगों को शामिल किया हैं। असल में वह शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाना चाहते थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को पैंतीस साल की बहुत कम आयु मिली थी। उस अल्पायु में उन्होंने हिन्दी-प्रदेश की जनता के उत्थान के लिए जो कार्य किया, वह अविस्मरणीय है। हिन्दी साहित्य में उनका प्रादुर्भाव किसी युगांतकारी घटना से कम नहीं है। साहित्य जगत में प्रवेश करते ही उन्होंने सबसे पहले हिन्दी साहित्य को दरबारी संस्कृति से बाहर निकाला और उसे सामान्यजन के साथ जोड़ दिया। वह साहित्य और जनता के अंतर्संबंधों को भली-भांति समझते थे। यही कारण है कि उन्होंने साहित्य को कभी जनता से अलग करके नहीं देखा। उनकी गिनती हिन्दी के उन प्रमुख साहित्यकारों में की जाती है, जिन्होंने अपनी व्यक्तिगत पूँजी लगाकर हिन्दी भाषा, साहित्य और समाज की सेवा की। वह सही अर्थों में हिन्दी भाषी-प्रदेश में नवजागरण के अग्रदूत हैं। उन्होंने अपनी प्रतिभा के दम पर हिन्दी साहित्य में नई-नई गद्य विधाओं की शुरुआत की, खड़ी बोली हिन्दी को गद्य की भाषा बनाया, पत्र-पत्रिकाओं का सफलतापूर्वक सम्पादन किया और हिन्दी साहित्यकारों की एक ऐसी मण्डली तैयार कर दीं, जिनसे लोग आज भी प्रेरणा लेते हैं।

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी-प्रदेश में शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। यहां प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा के विकास के लिए बड़े-बड़े स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय की स्थापना हुई है। प्रायः हर छोटे-बड़े शहरों में मेडिकल और इंजीनियरिंग की शिक्षा के लिए नए-नए संस्थान स्थापित किये गए हैं। अब यहां के छात्र उच्च शिक्षा के लिए दूसरें राज्यों में बहुत कम पलायन कर रहे हैं क्योंकि उन्हें सारी सुविधाएँ अपने ही शहर में मिल जा रही हैं। दूसरी तरफ सरकार भी शिक्षा को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचाने के लिए तरह-तरह की योजनाएं चला रही हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि हिन्दी-प्रदेश में शिक्षा का स्तर दिन-प्रति-दिन ऊँचा और बेहतर होता जा रहा है। लेकिन आज से डेढ़ सौ वर्ष पहले हिन्दी-प्रदेश की स्थिति ऐसी नहीं थी। शिक्षा के मामलें में इसे सबसे पिछड़ा प्रांत माना जाता था। इसका सबसे बड़ा कारण यहां के लोगों की रूढ़िवादी मानसिकता है। जिसने यहां के लोगों को बहुत दिनों तक शिक्षा कार्य से दूर रखा। वहीं दूसरी तरफ यहां की जाति-प्रथा ने इस कार्य में आग में घी डालने का काम किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षा-व्यवस्था पर कुछ जाति विशेष के लोगों का अधिकार हो गया और समाज का बहुत बड़ा वर्ग शिक्षा के अधिकार से सदा के लिए वंचित हो गया। बहरहाल, भारतेन्दु के ज़माने में हिन्दी-प्रदेश में तीन तरह की शिक्षा-व्यवस्था प्रचलन में थी। पहली, हिन्दू पुनरुत्थानवादी आधारित शिक्षा थी। इसके अन्तर्गत वेद, पुराण, उपनिषद ज्योतिषशास्त्र के साथ-साथ

संस्कृत भाषा और साहित्य की शिक्षा दी जाती थी। इसे बढ़ावा देने के लिए गुरुकुल परम्परा के अनुरूप कई विद्यालय एवं संस्थाएं स्थापित की गयी थी। इस तरह की शिक्षा के प्रति हिन्दुओं का झुकाव अधिक था। दूसरी, इस्लाम धर्म एवं संस्कृति पर आधारित शिक्षा थी। इसके अन्तर्गत अरबी, फ़ारसी, उर्दू और कुरआन की शिक्षा दी जाती थी। ऐसी शिक्षा के प्रति मुस्लिम समाज की रूचि सबसे ज्यादा थी। हालांकि फ़ारसी उस समय प्रशासन की भाषा थी लेकिन हिन्दू भी इसे सीखते थे और अपने व्यवाहारिक जीवन के कार्यों में काम में भी लाते थे। और तीसरी, यूरोपीय साहित्य एवं विज्ञान पर आधारित पाश्चात्य शिक्षा थी, जो यहां के लोगों के लिए बिल्कुल नई और आधुनिक थी।

इस नई शिक्षा की शुरुआत कलकत्ता से हुई थी। जहां डेविड हेयर, हिन्दू कॉलेज (वर्तमान में प्रेसिडेंसी विश्वविद्यालय) हिन्दू स्कूल, बेथुन कॉलेज, स्कॉटिश चर्च कॉलेज, फोर्ट विलियम कॉलेज जैसे बड़े-बड़े शिक्षण संस्थान स्थापित किये गए थे। इसके अलावा अंग्रेजी शिक्षा को राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ावा देने के लिए सन 1857 में तीनों प्रेसीडेंसियों (बंगाल प्रेसीडेंसी, बॉम्बे प्रेसीडेंसी और मद्रास प्रेसीडेंसी) में एक-एक विश्वविद्यालयों (कलकत्ता विश्वविद्यालय, बॉम्बे विश्वविद्यालय और मद्रास विश्वविद्यालय) की भी स्थापना हुई थी। असल में ब्रिटिश साम्राज्य पूरे देश में अंग्रेजी शिक्षा को लागू करना चाहती थी। इसलिए उन्होंने जगह-जगह पर शिक्षण-संस्थान खोलना शुरू किया था। आगे चलकर लार्ड रिपन ने अंग्रेजी शिक्षा नीति को व्यवस्थित ढंग से पूरे देश में लागू करने के लिए 1882 में एक कमीशन का गठन किया।

प्रसिद्ध इतिहासकार विलियम हंटर इसके अध्यक्ष बनाए गए थे। हंटर की अध्यक्षता में आयोग का गठन होने के कारण इसका नाम हंटर कमीशन पड़ा। हंटर आयोग ने विभिन्न प्रांतो में जाकर तत्कालीन शिक्षा-व्यवस्था की जांच की फिर उस पर विचार-विमर्श करने के लिए देश के बड़े-बड़े शिक्षाविदों और विद्वानों को आमंत्रित किया। जिसमें सर सैय्यद अहमद खां, राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र मुख्य रूप से शामिल थे। हालांकि भारतेन्दु शारीरिक अस्वस्थता के कारण उस बैठक में उपस्थित नहीं हुए लेकिन आयोग द्वारा दिए गए सत्तर प्रश्नों का उत्तर सरकार के पास लिख भेजा था। उनका वक्तव्य मूल रूप से अंग्रेजी में है, जिसे बाद में 'एजुकेशन कमीशन एविडेंस ऑफ़ बाबू हरिश्चन्द्र' के नाम से प्रकाशित किया गया। इसका हिन्दी अनुवाद रामगोपाल जी ने किया हैं और अपनी पुस्तक 'स्वतंत्रता-पूर्व हिन्दी के संघर्ष का इतिहास' में संकलित किया हैं।

भारतेन्दु इस तरह की भाषागत विषमता के खिलाफ़ हैं, जहां भाषा अज्ञान के कारण लोगों को गुमराह और लूटने का काम किया जाता है। उनकी दृष्टि में हिन्दी को राजकाज (राजभाषा) की भाषा का दर्जा न देना एक तरह से बहुसंख्यक लोगों के साथ अन्याय है। स्वाधीनता के बाद भी हिन्दी-प्रदेश की अदालती भाषा में बहुत ज्यादा परिवर्तन नहीं हुआ है। यहां हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया गया लेकिन उसके साथ अंग्रेजी को भी रखा गया है। परिणाम यह हुआ कि प्रदेश के न्यायालय, उच्च न्यायालय एवं बड़े-बड़े शिक्षण संस्थानों में सारा कामकाज अंग्रेजी में होने लगा और हिन्दी नाम मात्र की राजभाषा बनकर रह गयी। इस प्रकार भारतेन्दु ने हिन्दी को राजभाषा बनाने का जो सपना देखा था वह अभी तक पूरी तरह साकार नहीं हो पाया है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तत्कालीन शिक्षा-व्यवस्था के तीनों रूपों से परिचित थे। यहां एक बात ध्यान देनेवाली है, भारतेन्दु आयोग के गठन होने के बहुत पहले से हिन्दी-प्रदेश की शिक्षा-व्यवस्था पर सोचना-समझना शुरू कर दिया था। आयोग के गठन होने से उन्हें सरकार तक अपनी शिक्षा संबंधी सुझाव पहुंचाने का एक जरिया मात्र मिल जाता है। उन्होंने अपने लेखों एवं भाषणों में कई बार स्पष्ट किया हैं कि वर्तमान समय में जिस तरह की शिक्षा लोगों को दी जा रही है, वह पर्याप्त नहीं है। उसमें मूलभूत परिवर्तन करने की आवश्यकता है और साथ ही उसे ऐसा बनाये जाने की जरूरत है, जिससे उसका लाभ साधारण से साधारण व्यक्ति भी आसानी से उठा सके। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि भारतेन्दु तत्कालीन शिक्षा-व्यवस्था से बहुत संतुष्ट नहीं थे। वह उसमें बदलाव चाहते थे और यह बदलाव अंग्रेजी शिक्षा के जरिये पूरा करना चाहते थे। उनका झुकाव अंग्रेजी शिक्षा की ओर था। अंग्रेजी शिक्षा का समर्थन करते हुए उन्होंने कहा था, "अंग्रेजी सरकार के शुभ शासन और उसकी प्रौढ़ शिक्षा-पद्धति से भारत के बच्चें सभ्यता, स्वतन्त्रता और स्वावलम्बन के साये में ढल जायेंगे।"[1] भारतेन्दु अंग्रेजी शिक्षा के महत्व को समझ रहे थे। इसलिए उन्होंने खुले मन से अंग्रेजी शिक्षा का स्वागत किया हैं।

भारतेन्दु एक साथ कई मोर्चों पर काम कर रहे थे। शिक्षा-संबंधी सुधार कार्य उनके महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है। उनके सामने हिन्दी-प्रदेश और वहां की जनता हैं। वह हिन्दी-प्रदेश के लोगों को आधुनिक एवं वैज्ञानिक शिक्षा के साथ जोड़ना चाहते थे। हिन्दी-भाषा और साहित्य की समृद्धि पर विचार करते हुए उन्होंने कहा था, "अपने देश-वासियों के शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठाना, इस प्रान्त की भाषा में सुधार करना तथा इस भाषा में साहित्य-वृद्धि करना सदैव से मेरा ध्येय रहा है। अपने देशवासियों की शैक्षिक उन्नति से मुझे सदैव हर्ष प्राप्त होता है।"[2] भारतेन्दु के इस वक्तव्य से पता चलता है कि वह हिन्दी-प्रदेश के लोगों के लिए बहुत चिन्तित थे और उनके

शैक्षणिक स्तर में सुधार लाने के लिए गंभीरता से विचार कर रहे थे। उन्होंने देश शब्द का प्रयोग हिन्दी प्रांत के लिए किया हैं।

भारतेन्दु ने अपनी शिक्षा-नीति में सबसे पहले हिन्दी-प्रदेश की भाषाई-समस्या पर विचार किया हैं। उन्होंने अंग्रेजी सरकार को ध्यान दिलाया हैं कि यहां शिक्षा और अदालत (कानून और प्रशासन) की दो अलग-अलग भाषाएं हैं। एक तरफ फ़ारसी लिपि व उर्दू है, जो अदालत और दफ़्तर की भाषा है और दूसरी तरफ हिन्दी है, जो यहां की बहुसंख्यक जनता की भाषा है। ऐसे में जब कोई छात्र हिन्दी माध्यम से पढ़कर नौकरी के लिए आता है तब उसे भाषागत समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस विषय पर सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हुए उन्होंने लिखा, "इस प्रान्त की प्राथमिक पाठशालाओं में हिन्दी भाषा की लिपि का प्रयोग प्रायः पूर्णतया किया जाता है परन्तु अदालतों और दफ्तरों में फ़ारसी भाषा की लिपि का प्रयोग होता है;

अतः उस प्राथमिक शिक्षा का जो एक ग्रामीण लड़का अपने गाँव में प्राप्त करता है, कोई मूल्य नहीं है, कोई फल नहीं है..... अपने पूर्वजों की भाँति वह भी बिल्कुल अज्ञान है, तथा वह उस घसीट लिपि (उर्दू) को पढ़ने में बिल्कुल असमर्थ है जो अदालत का अमला प्रयोग में लाता है।"[3] भारतेन्दु ऐसी भाषा के पक्ष में नहीं हैं, जो साधारण जनता की समझ से परे है। उनकी दृष्टि में शिक्षा और अदालत की भाषा में असमानता होने के कारण यहां के छात्रों को अनेक तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है, आगे वह लिखते हैं, "सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग किया जाता है। यही ऐसा देश है जहां अदालती भाषा न तो शासकों की मातृभाषा है और न प्रजा की।"[4] भारतेन्दु शिक्षा और अदालत की भाषा में सामंजस्य बैठाने की कोशिश कर रहे थे और यह सामंजस्य भाषागत एकरूपता के जरिए वह पूरा करना चाहते थे। उनकी दृष्टि में सभ्य देश के नागरिकों की जो भाषा होती है, उसे ही शिक्षा और अदालत की भाषा बनाया जा सकता है और हिन्दी-प्रदेश में सभ्य जनों की भाषा हिन्दी है। इसलिए इसे ही शिक्षा और अदालत की भाषा बनाया जा सकता है। हिन्दी-प्रदेश में इस तरह की भाषाई-समस्या आज भी वैसी ही बनी हुई है। यहां के छात्र स्कूल तक की शिक्षा हिन्दी माध्यम से पूरा करते हैं लेकिन प्रशासन और कानून की उच्च शिक्षा अंग्रेजी में होने के कारण उन्हें भाषागत समस्याओं से गुजरना पड़ता है। यहां के विश्वविद्यालयों में अभी तक उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी नहीं बन पाई है। यह एक बड़ी समस्या है।

भारतेन्दु ने अपने वक्तव्य में भरसक प्रयास किया हैं कि फ़ारसी लिपि व उर्दू को राजकाज की भाषा के पद से अपदस्थ किया जाए और उसके स्थान पर देवनागरी लिपि व हिन्दी को बैठाया जाए। उनके अनुसार यहां हिन्दी जानने वालों की संख्या बहुत अधिक है जबकि फ़ारसी लिपि व उर्दू कुछ थोड़े से पढ़े लिखे लोगों की भाषा है। ऊपर से इसके शब्द इतने कठिन है कि अर्थ समझ में आते नहीं हैं। जिसके कारण हर छोटे-छोटे कामों के लिए लोगों को पैसे चुकाने पड़ते हैं, वह लिखते हैं, "यदि हिन्दी को मान्यता मिल जाय तो फिर अदालतों के लगुए बंधुए लोग जिन्होंने प्रचलित लिखावट को स्थायी आय का साधन बना लिया है, अपनी जेबें न भर पावेंगे। ऐसे बड़े और कठिन फ़ारसी शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो जमींदारों, किसानों तथा व्यापारियों ने कभी सुने ही नहीं। उद्देश्य यह है कि इनका अर्थ समझाने वाले उर्दू ज्ञाता लोग खूब खाते कमाते रहे। यदि हिन्दी अदालती भाषा हो जाय तो सम्मन पढ़वाने के लिए दो-चार आने कौन देगा, और साधारण सी अर्जी लिखवाने के लिए कोई रुपया-आठ आने क्यों देगा।"[5]

भारतेन्दु ने स्पष्ट किया है कि फ़ारसी लिपि व उर्दू को आय का एक जरिया बना लिया गया है, जहां समन पढ़ने और अर्जी लिखवाने तक के लिए रिश्वत देनी पड़ती है। उन्होने इस बात का भी खुलासा किया हैं कि फ़ारसी लिपि व उर्दू के ज्ञान के अभाव में लोग ठगे जाते हैं और उनके साथ धोखाधड़ी होती है। यदि हिन्दी अदालती भाषा बन जाती है तो इस तरह के लूट खसोट बंद हो जाएंगे, वह लिखते हैं, "नागरी लिपि को सरकारी मान्यता मिलने से, वे उस अवसर से पूर्णतया वंचित हो जायेंगे जिसके द्वारा वे लूट खसोट करते हैं- वे अनभिज्ञ व्यक्तियों को कुछ का कुछ पढ़ कर सुना देते हैं, और इस युक्ति से लिखित बात का तथ्य बदल देते हैं। फ़ारसी लिपि को विशेषकर शिकस्त को जिसके माध्यम से आज कल अदालती काम होता है, मुख्तारों, वकीलों तथा धूर्तों ने निश्चित आय

का साधन बना लिया है।"[6] भारतेन्दु इस तरह की भाषागत विषमता के खिलाफ़ हैं, जहां भाषा अज्ञान के कारण लोगों को गुमराह और लूटने का काम किया जाता है। उनकी दृष्टि में हिन्दी को राजकाज (राजभाषा) की भाषा का दर्जा न देना एक तरह से बहुसंख्यक लोगों के साथ अन्याय है।

स्वाधीनता के बाद भी हिन्दी-प्रदेश की अदालती भाषा में बहुत ज्यादा परिवर्तन नहीं हुआ है। यहां हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया गया लेकिन उसके साथ अंग्रेजी को भी रखा गया है। परिणाम यह हुआ कि प्रदेश के न्यायालय, उच्च न्यायालय एवं बड़े-बड़े शिक्षण संस्थानों में सारा कामकाज अंग्रेजी में होने लगा और हिन्दी नाम मात्र की राजभाषा बनकर रह गयी। इस प्रकार भारतेन्दु ने हिन्दी को राजभाषा बनाने का जो सपना देखा था वह अभी तक पूरी तरह साकार नहीं हो पाया है। ध्यान दें, भारतेन्दु-युग में राजभाषा (फ़ारसी लिपि व उर्दू) बहुसंख्यक लोगों की नहीं थी और आज अंग्रेजी यहां की बहुसंख्यक लोगों की भाषा नहीं है, फिर भी उसे राजभाषा के पद पर बैठाया गया है। इस तरह अंग्रेजी के ज्ञान के अभाव में लोग आज वैसे ही ठगे जा रहे हैं जैसे भारतेन्दु-युग में फ़ारसी लिपि व उर्दू के ज्ञान के अभाव में ठगे जा रहे थे।

भारतेन्दु के समय में कई तरह के देशी प्रणाली के स्कूल चलते थे। इन स्कूलों को किसी तरह का सरकारी संरक्षण प्राप्त नहीं था। इन स्कूलों में जिस तरह की शिक्षा दी जाती थी, उस पर भारतेन्दु ने विस्तार से लिखा हैं। उनके अनुसार देशी प्रणाली के चटसालों में "पहाड़े, जबानी हिसाब, गणित के चार नियम तथा नागरी, कैथी या महाजनी-लिपि की शिक्षा देते हैं।"[7] इन स्कूलों में अध्यापक बहुत सीमित योग्यता के कायस्थ होते थे। इनका ज्ञान मात्र बच्चों को देने भर तक सीमित होता था। इनकी भर्ती के बारे में भी कोई विशेष नियम नहीं होता था। यह पेशा पैतृक संपत्ति की तरह पिता से होते हुए पुत्र को मिल जाता था। इसी तरह संस्कृत पाठशालाएं थी, जहां संस्कृत के द्वारा विभिन्न विषयों (व्याकरण, तर्कशास्त्र, साहित्य, ज्योतिष, खगोलशास्त्र आदि) की शिक्षा मिलती थी। कुछ धार्मिक स्कूल थे, जहां वेदों के विभिन्न भाष्यों (मीमांसा, वेदांत) की शिक्षा मिलती थी। व्यवहार गणित के भी स्कूल थे, इनका सञ्चालन मुनीम लोग करते थे। उपरोक्त सभी स्कूलों में केवल हिन्दू ही पढ़ने आते थे। इसी तरह 'मकतब' में फ़ारसी साहित्य की शिक्षा मिलती थी। मौलवी अध्यापक नियुक्त किये जाते थे। इन स्कूलों में हिन्दू और मुसलमान दोनों पढ़ने आते थे। 'अरबी स्कूल' में अरबी साहित्य, व्याकरण, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र के विषय पढ़ाए जाते थे। इन स्कूलों का उद्देश्य इस्लाम को समृद्ध करना था। 'कुरआन स्कूल'

भी थे, जहां धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। भारतेन्दु की दृष्टि में उपरोक्त सारे स्कूल विशेष महत्त्व के नहीं है। उनके अनुसार इन स्कूलों पर सरकारी खर्च करना एक तरह से फिजूल की खर्ची है। इनमें से किसी भी स्कूल में अच्छे अनुशासन की पढ़ाई नहीं होती है और न ही यहां कोई निश्चित पाठ्यक्रम चलाया जाता है। यहां की पढ़ाई का स्तर भी बहुत नीचा है। शिक्षकों कि नियुक्ति से लेकर बच्चों की पढ़ाई तक में कहीं कोई नियम नहीं अपनाया जाता है। पुरानी परिपाटी पर आधारित "इन स्कूलों को राष्ट्र की शिक्षा का अंग नहीं बनाया जा सकता"[8] है। भारतेन्दु शिक्षा का आधुनिक एवं नवीन रूप लागू करना चाहते थे। वह सदियों से चली आ रही एक ही तरह की शिक्षा पद्धति में संशोधन करना चाहते थे।

भारतेन्दु देशी प्रणाली के स्कूलों के पक्ष में नहीं हैं। वहां उन्हें बहुत सारी कमजोरियां दिखाई देती हैं। लेकिन वहां कुछ ऐसे विषय जरुर पढ़ाए जाते हैं, जिसे उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा से भी बेहतर बताया हैं। उसका उन्होंने समर्थन किया हैं और उसे सीखने के लिए भी कहा हैं, "पहाड़े सिखाने का वह ढंग जो चटसाल स्कूलों में प्रचलित है, अपनाया जाय; वह निस्संदेह इस विषय के यूरोपीय ढंग से अधिक उत्तम है। मौखिक गणित पर अधिक ध्यान दिया जाय, इससे बुद्धि में तीव्रता आती है। गणित में ये विषय सिखाये जायं- जोड़, घटाना, गुणा, भाग, साधारण व मिश्रित भिन्न, अनुपात व समानुपात, साधारण ब्याज, दस्तूरी, लाभ, हानि, साझा, प्रतिशत और बहीखाता। लेखन- सुलेख, इमला, और सरल निबन्ध। पठन- रामायण के खंड, भारत में प्रचलित कृषि के ढंग पर निबन्ध, नैतिकता पर पाठ, राजस्व और भूमिकर सम्बन्धी नियम, पटवारी के कागजात के विवरण पर निबन्ध तथा जिले का नक्शा"[9] जैसे विषय छात्रों को पढ़ाया जाना चाहिए। इसके अलावा क्षेत्रमिति, भूमि सर्वेक्षण, रेखागणित, भारत का इतिहास, भूगोल जैसे विषय भी बच्चों को सीखाने चाहिए। भारतेन्दु ने उपरोक्त जिन विषयों को सीखने के लिए सुझाव दिया हैं, वह आज भी स्कूलों में पढ़ाए जाते है।

इसी क्रम में भारतेन्दु ने घरेलू शिक्षा का भी उल्लेख किया हैं। वह उसे बहुत उपयोगी नहीं मानते हैं। उस समय सेठ, महाजन, राजा, जमींदार अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजते थे बल्कि घर पर ही उनके पढ़ने का इंतज़ाम कर देते थे। भारतेन्दु इस तरह की शिक्षा को बहुत तुच्छ मानते थे। उनके अनुसार ऐसी शिक्षा "कुछ संकुचित ढंग की होती है; वह यूरोपीय सिद्धान्तों से भिन्न होती है।"[10] ऐसी शिक्षा से छात्र अपना भविष्य नहीं बना सकते हैं और न ही किसी दूसरे छात्रों के साथ प्रतिस्पर्धा ही कर सकते हैं। इस तरह की शिक्षा एक या दो भाषाओं के साहित्य तक सीमित रह जाती है,

वह लिखते हैं, "घर पर पढ़ा हुआ लड़का उन लड़कों का मुकाबला नहीं कर सकता जिन्होंने सार्वजनिक स्कूल में शिक्षा पायी है। कलकत्ता विश्वविद्यालय की परीक्षाओं से मेरे कथन की सत्यता सिद्ध हो जायगी।"[11] भारतेन्दु की दृष्टि में सरकारी प्रबंधनों से चलाये जा रहे स्कूलों एवं विश्वविद्यालयों की स्थिति अच्छी है और यहां पढ़कर छात्र किसी भी प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठ सकता है।

भारतेन्दु ने सरकार के सामने प्रस्ताव रखा था कि प्राथमिक स्तर पर सभी लोगों के लिए शिक्षा अनिवार्य कर देनी चाहिए। उन्होंने अपने आस-पास और दूर-दराज़ के गांवों-कस्बों को बहुत करीब से देखा था और महसूस किया कि यहां के लोगों में शिक्षा की भारी कमी है और यह एक विकराल समस्या का रूप धारण करती जा रही है। उस समय निरक्षरता हिन्दी-प्रदेश की एक बहुत बड़ी समस्या थी और यह समस्या आज़ादी के कई वर्षों बाद तक भी बनी रही। बाद में भारत सरकार ने बड़े पैमाने पर साक्षरता अभियान चलाकर इसे कम करने की कोशिश की। अब ग्रामीण जनों में कम से कम अक्षर ज्ञान हो गया है और वे अपना नाम लिख-पढ़ लेते हैं। भारतेन्दु के समय स्थिति एकदम उलट थी। निक्षरता से निपटने के लिए ही उन्होंने प्राथमिक स्तर पर अनिवार्य शिक्षा की मांग उठाई थी। उन्होंने इंग्लैंड और यूरोपीय देशों का हवाला देकर सरकार को समझाया कि उन देशों की भांति भारत में भी सभी लोगों के लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर देनी चाहिए। उनके अनुसार लोगों में धीरे-धीरे शिक्षा के प्रति जागरूकता फ़ैल रही है। उनमें शिक्षा के प्रति रूचि बढ़ रही है, अंग्रेजी सरकार को वह लिखते हैं, "शिक्षा की चाह सामान्यतः सब लोगों में है, वह किसी वर्ग विशेष तक सीमित नहीं है।"[12] आगे लिखते हैं, "जनता के किसी भी वर्ग के लिए प्रारम्भिक शिक्षा का दरवाजा बंद नहीं है। जनता के प्रभावशाली वर्ग, विशेषरूप से हिन्दू, जो नगरों और बड़े कस्बों में बसे हुए हैं- वे भी जो प्रान्तों में रहते हैं- मन से चाहते हैं कि सब लोग, चाहे वे उच्च कोटि के हों या निम्न कोटि के, प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करें।"[13] स्पष्ट है, भारतेन्दु समाज के सभी वर्गों के लोगों को प्राथमिक शिक्षा के साथ जोड़ना चाहते थे।

भारतेन्दु ने सरकार के सामने शिक्षा को निःशुल्क बनाने की भी मांग उठाई थी। वह हिन्दी-प्रदेश के ज्यादा से ज्यादा लोगों को शिक्षित करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने सरकार के सामने निःशुल्क शिक्षा की मांग रखी थी। वर्तमान समय में शिक्षा का रूप बहुत बदल गया है। एक तरह से उसका बाजारीकरण हो चुका है। माता-पिता अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए बहुत पैसा खर्च कर रहे हैं। दूसरी तरफ स्कूलों एवं विश्वविद्यालयों में भी लगातार फ़ीस वृद्धि हो रही है। जिसके कारण किसान, मजदूर और दलित के बच्चें पढ़ने से वंचित रह जाते हैं। आज से वर्षों पहले भारतेन्दु ने इस समस्या पर विचार करना शुरू किया था और अपने प्रस्ताव में निःशुल्क शिक्षा के लिए जोर दिया था। वह चाहते थे कि सरकार शिक्षा को पूरी तरह से निःशुल्क बनाए, जिससे सरकारी संस्थानों में पढ़ रहे छात्रों को किसी तरह का शुल्क न देना पड़े। असल में भारतेन्दु शिक्षा का जनवादी रूप विकसित करना चाहते थे। वह अच्छी तरह समझते थे कि यदि शिक्षा पर शुल्क रखा गया तो बहुत कम लोग इससे जुड़ पाएंगे। साधारण जनता आर्थिक बदहाली से पहले ही परेशान है और ऊपर से शिक्षा पर शुल्क रखा गया तो वह इसका भार नहीं उठा पायेगी, जिससे शिक्षा कार्य प्रभावित होगा। ऐसे में भारतेन्दु का सरकार के सामने निःशुल्क शिक्षा की मांग रखना बहुत सही था।

शिक्षा के अभाव में लोग अपने अधिकारों को नहीं समझ पाते हैं। भारतेन्दु के अनुसार अंग्रेजी सरकार यहां के लोगों से खूब सारा कर वसूलती है। उस कर का एक हिस्सा शिक्षा पर भी खर्च करना पड़ता है लेकिन

भारतेन्दु देशी प्रणाली के स्कूलों के पक्ष में नहीं हैं। वहां उन्हें बहुत सारी कमजोरियां दिखाई देती हैं। लेकिन वहां कुछ ऐसे विषय जरुर पढ़ाए जाते हैं, जिसे उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा से भी बेहतर बताया हैं। उसका उन्होंने समर्थन किया हैं और उसे सीखने के लिए भी कहा हैं, "पहाड़े सिखाने का वह ढंग जो चटसाल स्कूलों में प्रचलित है, अपनाया जाय; वह निस्संदेह इस विषय के यूरोपीय ढंग से अधिक उत्तम है। मौखिक गणित पर अधिक ध्यान दिया जाय, इससे बुद्धि में तीव्रता आती है।

यहां के लोगों को इस बात का ध्यान ही नहीं रहता है। उन्हें कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि उनके जिले में कितने नये स्कूल खोले गए और पुराने स्कूल क्यों बंद किये गए ? वह शिक्षा कर को भी सरकारी कर समझकर देते हैं और भूल जाते हैं। जबकि इस कर के साथ उनका हित भी जुड़ा रहता है। हिन्दी-प्रदेश के लोगों पर अपनी खिन्नता प्रकट करते हुए भारतेन्दु लिखते हैं, "यद्यपि इस देश के लोग प्राथमिक शिक्षा के लिए स्थानीय टैक्स (कर) देते हैं, परन्तु उन्हें इस बात की कोई ख़ास परवाह नहीं है कि उनके गाँव में कोई स्कूल खोला जा रहा है या बन्द किया जा रहा है। वे शिक्षा कर का भुगतान यह समझकर करते हैं कि यह सरकारी कर है। उनमें यह विचार पैदा नहीं होता कि इसके साथ उनका हित भी संबद्ध है।"[14] वर्तमान समय में भी जनता की कुछ ऐसी ही मानसिकता है। सरकार उनसे भारी मात्रा में कर वसूलती हैं। प्रायः हर वस्तु के ऊपर पहले से ही कर लगा देती है, फिर उसे बाजार में बेचती है। इस प्रकार जनता प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सरकार को कर देती है लेकिन वह इस बात से अनभिज्ञ रहती हैं कि सरकार उनके कर का कितना हिस्सा शिक्षा पर खर्च करती है ?

भारतेन्दु दलितों की दयनीय स्थिति से अच्छी तरह परिचित थे। दलितों के प्रति

भारतेन्दु के अनुसार अंग्रेजी सरकार यहां के लोगों से खूब सारा कर वसूलती है। उस कर का एक हिस्सा शिक्षा पर भी खर्च करना पड़ता है लेकिन यहां के लोगों को इस बात का ध्यान ही नहीं रहता है। उन्हें कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि उनके जिले में कितने नये स्कूल खोले गए और पुराने स्कूल क्यों बंद किये गए ? वह शिक्षा कर को भी सरकारी कर समझकर देते हैं और भूल जाते हैं। जबकि इस कर के साथ उनका हित भी जुड़ा रहता है।

सहानुभूति प्रकट करते हुए उन्होंने कहा था, "जाति में कोई चाहे ऊँचा हो चाहे नीचा हो सबका आदर कीजिए जो जिस योग्य हो उसे वैसा मानिए० छोटी जाति के लोगों का तिरस्कार करके उनका जी मत तोड़िए० सब लोग आपस में मिलिए०।"[15] भारतेन्दु दलितों को समाज का एक अभिन्न अंग समझते थे। वह सभी जाति के लोगों को आपस में मिलजुलकर रहने की सलाह देते हैं। उन्होंने अपनी शिक्षा-नीति में दलितों के ऊपर ध्यान देते हुए यह स्पष्ट किया है कि दलितों में शिक्षा की अपार कमी है और उन्हें इससे वंचित रखा गया है। उनकी दृष्टि में एक तरफ दलित आर्थिक रूप से कमजोर है और दूसरी तरफ जाति के नाम पर प्रताड़ित है। जिसके कारण यह समाज शिक्षा से बहुत दूर हो गया है। कुछ दलितों में शिक्षा के प्रति जागरूकता आई है। वे पढ़ने-लिखने की कोशिश करते हैं लेकिन समाज के तथाकथित ऊँची जाति के लोग उन्हें जाति के नाम पर पढ़ने नहीं देते हैं। दलितों की ऐसी स्थिति पर अंग्रेजी सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हुए वह लिखते हैं, "डोम और मेहतर जैसे निम्न श्रेणी के लोग शिक्षा से लाभान्वित अवश्य नहीं हो पाते, क्योंकि वे दरिद्र हैं।"[16] आगे लिखते हैं, "हाँ क्षत्री और ब्राह्मण जातियों के जमींदारों में कुछ ऐसे लोग हैं, जिनके विषय में यह कहा जा सकता है कि वे अपनी निम्न श्रेणी की रिआया के लड़कों को शिक्षा से वंचित रखना चाहते हैं, ताकि वे उनके अज्ञान से लाभ उठा सकें।"[17] भारतेन्दु की यह टिप्पणी महत्वपूर्ण है। उन्होंने साहस के साथ सवर्ण जातियों का नाम लेकर बताया हैं कि दलितों को शिक्षा से वंचित रखने के पीछे इन ऊँची जाति के लोगों की बहुत बड़ी भूमिका है। इन ऊँची जाति के लोगों ने अपने फायदे के लिए दलित समाज के लोगों को कभी शिक्षित होने नहीं दिया। अतएव भारतेन्दु हिन्दी-प्रदेश के आधुनिक साहित्यकारों में पहले ऐसे लेखक हुए, जिन्होंने अपनी शिक्षा-नीति में दलितों के ऊपर भी ध्यान दिया हैं।

भारतेन्दु स्त्री-शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने 1874 ई. में स्त्रियों की शिक्षा के लिए 'बालाबोधिनी' पत्रिका का प्रकाशन किया था। यह हिन्दी-प्रदेश की पहली पत्रिका थी, जिसे उन्होंने स्त्रियों को ध्यान में रखकर निकाली थी। इस पत्रिका के जरिए उन्होंने स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार किया। भारतेन्दु-युग में स्त्रियों की दशा में कोई ख़ास परिवर्तन नहीं हुआ था। उन्हें सारे अधिकारों से वंचित रखा गया था। उनके साथ लैंगिक भेद-भाव किया जाता था। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि उनकी स्थिति दलितों से बहुत अच्छी नहीं थी। भारतेन्दु हिन्दी समाज की इस पिछड़ी मानसिकता से बहुत क्षुब्ध थे। इसलिए स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए वह खुद आगे आते हैं और उनकी शिक्षा के लिए आवाज़ उठाते हैं। भारतेन्दु की दृष्टि में स्त्रियों को शिक्षा से दूर रखने के पीछे दो कारण थे। पहला, स्त्रियों के प्रति समाज की संकीर्ण मानसिकता और दूसरा, लोगों में ईसाई धर्म का खौफ़। भारतेन्दु ने इन दोनों कारणों को अंग्रेजी सरकार के संज्ञान में लाया हैं। उनकी दृष्टि में शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है, जिससे स्त्रियाँ अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो सकती हैं और अपनी दशा सुधार सकती हैं। इसलिए उन्हें शिक्षित करना बहुत जरुरी है।

भारतेन्दु लोगों की सोच बदलने और उन्हें जागरूक करने के लिए अंग्रेजी सरकार से आगे आने के लिए कहते हैं, "यह तो सच है कि इस देश के लोग अपनी कन्याओं को सार्वजनिक स्कूलों में पढ़ाना ही नहीं चाहते, परन्तु सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह इस प्रकार की अज्ञानता उनके मस्तिष्क से दूर करे।"[18] अर्थात सरकार की जिम्मेदारी है कि वह साधारण जनता को लड़कियों की शिक्षा के लिए जागरूक और प्रोत्साहित करें। भारतेन्दु बंगाल में कई तरह के सामाजिक परिवर्तन देख चुके थे। वहां राममोहन रॉय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने अंग्रेजी सरकार की मदद से स्त्रियों के अधिकारों के लिए कई तरह के कानून बनवाए थे। हिन्दी-प्रदेश में कुछ इसी तरह के परिवर्तन की उम्मीद उन्हें अंग्रेजी सरकार से थी। इसलिए वह स्त्रियों की शिक्षा के लिए अंग्रेजी सरकार से हस्क्षेप करने के लिए कहते हैं।

भारतेन्दु के अनुसार लड़कियों को स्कूल नहीं भेजने के पीछे एक कारण यह भी था कि उस समय ईसाई मिशनरियां अपने धर्म का खूब प्रचार-प्रसार करती थी और लोगों को तरह-तरह का प्रलोभन दिखाकर धर्म परिवर्तन करा लेती थी। जिसकी वजह से लोग अपनी लड़कियों को स्कूल भेजने से घबराते थे। इन मिशनरियों में ईसाई महिला शिक्षिका होती थी। जिनका ध्यान शिक्षा पर कम धार्मिक शिक्षा पर ज्यादा रहता था। भारतेन्दु उनके इस खेल को देख रहे थे तभी तो वह कहते हैं, "ईसाई धर्म प्रचारक महिलाओं ने कुछ रूचि दिखलाई है; परन्तु जनाने में इनके जाने को बहुत ही कम उपयोगी माना जाता है। उनकी स्वाभाविक वृत्ति धार्मिक सिद्धान्तों और मुक्त विचारों का प्रचार करने की ओर होती है, न कि भारतीय स्त्रियों के मस्तिष्क में शिक्षा के प्रति चाह उत्पन्न करने की ओर। इसीलिए परिणाम प्रतिकूल होता है और यह भावना पैदा हो जाती है कि इन महिलाओं का एकमात्र ध्येय धर्म परिवर्तन कराना है; अतः भारतीय नारियाँ इन्हें अपने धर्म का शत्रु समझकर इनके संपर्क से बिल्कुल अलग रहना पसन्द करती हैं।"[19] भारतेन्दु के अनुसार ईसाई धर्म-प्रचारक

भारतेन्दु के अनुसार लड़कियों को स्कूल नहीं भेजने के पीछे एक कारण यह भी था कि उस समय ईसाई मिशनरियां अपने धर्म का खूब प्रचार-प्रसार करती थी और लोगों को तरह-तरह का प्रलोभन दिखाकर धर्म परिवर्तन करा लेती थी। जिसकी वजह से लोग अपनी लड़कियों को स्कूल भेजने से घबराते थे। इन मिशनरियों में ईसाई महिला शिक्षिका होती थी। जिनका ध्यान शिक्षा पर कम धार्मिक शिक्षा पर ज्यादा रहता था। भारतेन्दु उनके इस खेल को देख रहे थे तभी तो वह कहते हैं, "ईसाई धर्म प्रचारक महिलाओं ने कुछ रुचि दिखलाई है; परन्तु जनाने में इनके जाने को बहुत ही कम उपयोगी माना जाता है। उनकी स्वाभाविक वृत्ति धार्मिक सिद्धान्तों और मुक्त विचारों का प्रचार करने की ओर होती है, न कि भारतीय स्त्रियों के मस्तिष्क में शिक्षा के प्रति चाह उत्पन्न करने की ओर। इसीलिए परिणाम प्रतिकूल होता है और यह भावना पैदा हो जाती है कि इन महिलाओं का एकमात्र ध्येय धर्म परिवर्तन कराना है; अत: भारतीय नारियाँ इन्हें अपने धर्म का शत्रु समझकर इनके संपर्क से बिल्कुल अलग रहना पसन्द करती हैं।"

महिलाओं का मुख्य उद्देश्य धार्मिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार करना था। उनके ऐसे ही कार्यों को देखकर भारतीय स्त्रियां उनसे दूर रहती थी।

भारतेन्दु नहीं चाहते थे कि शिक्षा के इस व्यापक मुहीम में धर्मांतरण कहीं कोई रोड़ा बनें। स्त्रियों की शिक्षा पहले से ही दयनीय है। ऊपर से धर्मांतरण के मुद्दे ने उनका बहुत अहित किया है। ऐसे में जो लोग स्त्रियों को पढ़ने के लिए भेजना भी चाहते थे, वे यह सब देखकर भेजने से मना कर देते थे। भारतेन्दु की कोशिश थी कि यदि सरकार इस विषय पर ठोस कदम उठाती है तो स्त्रियों के लिए भी पढ़ने-लिखने के लिए दरवाजें खुल जाएंगे।

अंततः, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र मध्यकाल और आधुनिक काल के बीच की कड़ी हैं। उनके पीछे दरबारी संस्कृति की एक विराट काली छाया है और सामने आधुनिकता की दहलीज़ पर खड़ा हिन्दी-प्रदेश है। इस हिन्दी-प्रदेश की उन्नति और प्रगति के लिए उन्होंने अपना पूरा जीवन खपा दिया। उनके लिए साहित्य और समाज दो अलग-अलग धुरी नहीं है। साहित्य के माध्यम से उन्होंने विशाल हिन्दी समाज की सेवा की, लोगों में जातीय चेतना का विकास किया और उन्हें नए-नए ज्ञान-विज्ञान के विषयों से अवगत कराया। उनकी शिक्षा सम्बन्धी सुधार कार्य हिन्दी नवजागरण की ही एक कड़ी है। उन्होंने अपनी शिक्षा-नीति में दलितों एवं स्त्रियों के साथ समाज के सभी वर्गों के लोगों को शामिल किया हैं। असल में वह शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाना चाहते थे। इसलिए वह अंग्रेजी सरकार के सामने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने की मांग उठाते हैं। उनका पूरा ध्यान अंग्रेजी शिक्षा पर था। वह अंग्रेजी शिक्षा के समर्थक थे।

उनका ध्यान शिल्प और कौशल विद्या पर सबसे ज्यादा था। कागज बनाना, रेल बनाना, फोटो खींचना आदि विद्या को वह अंग्रेजों से सीखने के लिए कहते हैं। वह हिन्दी-प्रदेश में एक शिल्प विद्या का कॉलेज भी खोलना चाहते थे, जहां हिन्दी भाषियों को ज्ञान-विज्ञान के विषय अंग्रेजी में नहीं हिन्दी माध्यम से पढ़ाये जाते। भारतेन्दु ने अंग्रेजी शिक्षा के साथ देशी शिक्षा का भी समर्थन किया हैं। अंग्रेजी शिक्षा की ललक में उन्होंने देशी-शिक्षा को अपने चिंतन से बाहर नहीं रखा है। उन्होंने देशी प्रणाली के स्कूलों में पढ़ाये जानेवाले विषयों (इमला, गणित, निबन्ध, सुलेख, इतिहास, भूगोल आदि) को उपयोगी बताया हैं और उसे सीखने के लिए जोर दिया हैं। इस प्रकार भारतेन्दु ने हिन्दी-प्रदेश में शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए आज से वर्षों पहले जिन बिन्दुओं को रेखांकित किया था, वह आज भी प्रासंगिक है। उनकी शिक्षा सम्बन्धी सुझाव पढ़ने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वह आज की शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर विचार कर रहे थे।

सन्दर्भ-सूचि

1. रामगोपाल, स्वतंत्रता-पूर्व हिन्दी के संघर्ष का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागराज, पृष्ठ सं. 104
2. वही, 83
3. वही, 85-86
4. वही, 99
5. वही, 98-99
6. वही, 98
7. वही, 87
8. वही, 89
9. वही, 96
10. वही, 91
11. वही, 91
12. वही, 86
13. वही, 86
14. वही, 92
15. शर्मा, रामविलास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएं, संस्करण 2012, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 81
16. रामगोपाल, स्वतंत्रता-पूर्व हिन्दी के संघर्ष का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागराज, पृष्ठ सं. 86
17. वही, 86
18. वही, 110
19. वही, 111

• • •

लेखक हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में सहायक प्राध्यापक हैं।

और तिलिस्म टूट गया..

- महावीर राजी

पीयूषजी ने स्कूटर कंपाउंड में पार्क करते हुए घड़ी की ओर देखा। सात बज रहे थे। ऊफ, आज फिर देर हो गयी! ट्रैफिक जाम की वजह से हमेशा देर हो जाती है। ऊपर से हर दस कदम पर सिग्नल की फटकार! रेड सिग्नल पर फंसे तो समझिए कि सिग्नल के ग्रीन होने में जितना समय लगेगा उतने में आप आराम से एक कप कॉफ़ी सुड़क सकते है। मेन रोड की जाम से पिंड छुड़ाने के लिए आस पास की गलियों-उपगलियों को भी आजमाया। वहाँ समस्याएं अजब तरह की मिलीं। रास्ते के बीचोंबीच गाय, भैंस और सांड जैसे मवेशी बेखौफ हांकते दिखे, मानो गलियां संसद का गलियारा हों जहाँ नेतागण छुट्टे मटरगश्ती करते रहते हैं। किसी मवेशी को जरा छू भी गयी गाड़ी कि बवाल शुरू!

एक महीने पहले तक पीयूषजी को शाम को घर लौटने की इतनी हड़बड़ी नही रहती थी।ऑफिस समय के बाद भी साथियों से गप्पशप्प चलती रहती। ऑफिस से दस कदम पर तिवाड़ी की चाय गुमटी थी। जायके वाली स्पेशल चाय के लिए मशहूर! चाय के बहाने मिलने जुलने का शानदार अड्डा! आफिस से निकल कर खास साथियों के साथ वहां चाय के साथ ठहाके चलते!

पीयूषजी पीडब्लूडी में काम करते हैं। काम का अधिक दबाब नहीं। पुरानी बस्ती में घर है। पति पत्नी और छः साल का बेटा आयुष! छोटा परिवार! पत्नी तीखे नाक नक्श और छरहरे बदन की सुंदर युवती। शांत और संतुष्ट प्रकृति की घरेलू जीव! दोनो के बीच अच्छी केमिस्ट्री थी। शाम को घर लौटने पर पीयूष जी के ठहाकों से घर खिल उठता। पत्नी के इर्दगिर्द बने रहने और उससे चुहल करने के ढेरों बहाने जेहन में उपजते रहते।

सोशल मीडिया से जुड़ते ही पीयूष जी की जिंदगी में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया। फेसबुक पर मित्रों की संख्या देखते ही देखते हनुमान की पूंछ की तरह बढ़ने लगी। विभिन्न रुचि व क्षेत्र के मित्र बने। कई ललनाओं ने ललक कर उनकी ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाया जिन्हें बड़ी नजाकत से उन्होंने थाम लिया। कईयों से खुद अपनी पहल पर दोस्ती कर ली। फेसबुक के न्यूज़ फीड को ऊपर खिसकाते घंटों बीत जाते। न मन भरता और न पोस्ट का ही अंत होता।

मसलन.. पत्नी चौके में ब्यस्त रहती, वे बैठक से आवाज लगाते -'उर्मि.. एक मिनट के लिए आओ, जरूरी काम है..!' पत्नी का जबाब आता -'अभी टाइम नही। सब्जी बना रही हूँ।' वे तुर्की ब तुर्की हुंकारते -'ठीक है मैं ही वहाँ आ जाता हूँ। दोनो मिलकर राग भैरवी में गाते हुए सब्जी बनाएंगे।' फिर लपकते हुए चौके में आते और उर्मि को बांहों में समेट लेते। उर्मि पति के प्रेमिल जुनून पर निहाल हो उठती। टीवी देखते, बंटी के साथ खेलते बतियाते और उसका होम वर्क कराते समय कब बीत जाता पता ही नहीं चलता। सुबह उठते और स्वयं बाजार जाकर घर का सौदा सुलफ के अलावा दूर सब्जी मंडी से ताजा सब्जी भी लाते! शौक से बिना ऊबे!!

सब कुछ ठीक चल रहा था कि एक महीने पहले ऐसा क्या हो गया कि उनकी सारी दिनचर्या ही उलट पुलट हो गयी! पीयूष जी की शिक्षा दीक्षा कस्बे में हुई थी। कस्बाई संस्कार से अभी तक मुक्त नहीं हो पाए थे। शहर के लटके झटके से पूरे अभ्यस्त भी नहीं। सोशल मीडिया का नाम सुना था, ये होता क्या है बिल्कुल नहीं जानते थे। सहकर्मियों के बीच आपसी बातचीत में फेसबुक व्हाट्सएप्प जैसे जुमले उड़ते हुए कानों में पड़ते जरूर पर उन्होंने इन सब पर कभी ध्यान देने की कोशिश नहीं की। उनके पास मोबाईल भी छोटा वाला था।

ऑफिस में मिश्रा से उनकी ज्यादा पटती। एक दिन शाम को ऑफिस से निकलते हुए उन्होंने मिश्रा से कहा - 'आज पुचका खाने का मन कर रहा। चलो, पुचका खाते हैं। अहा हा हा, इमली के खट्टे मीठे पानी की याद आते ही मुंह मे पानी भर आया।' मिश्रा हिनहिनाते

हुए हँसा - 'सॉरी सर.. फिर कभी। आज जरूरी काम है।'

'ऐसा क्या जरूरी काम आ गया कि दस मिनट भी स्पेयर नहीं कर सकते ?'

'सुगंधा को चैटिंग का टाइम दिया हुआ है छ बजे का।' मिश्रा खींसे निपोरा।

'सुगंधा ..?'

''फेसबुकिया फ्रेंड..! कल विस्तार से समझाऊंगा सोशल मीडिया के बारे में..ठीक ?' मिश्रा बाइक पर बैठ कर फुर्र हो गया।

दूसरे दिन आफिस ऑवर के बाद तिवाड़ी की गुमटी में एक भांड चाय की गुरु दक्षिणा के एवज में मिश्रा ने पीयूषजी को फेसबुक, व्हाट्सअप, मैसेंजर, ट्विटर आदि सोशल मीडिया की विस्तार से दीक्षा दी तो पीयूषजी के ज्ञान चक्षु खुल गए।

'देश के हर कोने से दोस्त मिलेंगे। मित्र भी और मित्राणियाँ भी!' मिश्रा खिलखिलाया -' परिवार के सीमित दायरे के कुएं को हिन्द महासागर का विस्तार मिलेगा। यथार्थ से परे किंतु उसके समानांतर एक और विलक्षण दुनिया ... जिसकी बात ही निराली है! उसमें एक बार प्रवेश करें तभी जान सकेंगे सर..!'

पीयूषजी को एहसास हुआ, मिश्रा के सामने सामान्य ज्ञान के स्तर पर अबोध बच्चे जैसे हैं वे। इलेक्ट्रॉनिक तकनीक कितनी उन्नत हो गयी उन्हें पता ही नहीं। लोग घर बैठे विराट दुनिया का भ्रमण कर रहे हैं, वे अभी भी कुंए के मेढ़क हैं।

दूसरे दिन ही मिश्रा के संग जाकर बढ़िया मॉडल का एंड्रॉयड फोन खरीद लाए। फोन क्या, जादुई चिराग ही था जैसे.. बटन दबाते ही कहाँ कहाँ के तरह तरह के लोगों से संपर्क होते निमिष मात्र लगता। चिराग के ब्यापक परिचालन की ट्रेनिंग भी वाकायदा मिश्रा ने उन्हें दे दी।

सोशल मीडिया से जुड़ते ही पीयूष जी की जिंदगी में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया। फेसबुक पर मित्रों की संख्या देखते ही देखते हनुमान की पूंछ की तरह बढ़ने लगी। विभिन्न रुचि व क्षेत्र के मित्र बने। कई ललनाओं ने ललक कर उनकी ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाया जिन्हें बड़ी नजाकत से उन्होंने थाम लिया। कईयों से खुद अपनी पहल पर दोस्ती कर ली। फेसबुक के न्यूज़ फीड को ऊपर खिसकाते घंटों बीत जाते। न मन भरता और न पोस्ट का ही अंत होता। ऊपर ठेलते रहो, नीचे से पोस्ट द्रौपदी के चीर की तरह निकलते रहते। व्हाट्सअप और मैसेंजर पर चैट का सिलसिला भी खूब जमने लगा।

कुछ ही समय मे आलम यह हो गया कि हर समय 'खुले' मोड में मोबाईल उनके हाथ मे रहने लगा। राह में चल रहे हैं, नजरें मोबाईल पर! खाना खा रहे हैं नजरें मोबाईल पर! किसी से बात कर रहें हैं, नजरें मोबाईल पर। न सूचनाओं का अंत होता न चैट पर विराम! हर दो मिनट पर न्यूजफीड को देर तक ऊपर सरकाने और हर तीसरे मिनट 'नोटिफिकेशन' चेक करते की लत लग गयी। पता नहीं किस मित्र का कब और कैसा मेसेज या कमेंट आ गया हो। अपडेट रहना जरूरी है।

दोपहर ढलते ही नजरें बेसब्री से बार बार घड़ी की ओर उठ जाती। ऑफिस समय खत्म होने का इंतजार रहता। लगता जैसे किसी षड्यंत्र के तहत घड़ी के कांटे जानबूझ कर धीमी चाल से चल रहे हैं। कोफ्त से मन फनफना उठता। ऑफिस से निकल कर सीधे घर की ओर दौड़ते। घर आकर हड़बड़ करते फ्रेश होते और मोबाईल लिए सोफे पर जो ढहते तो शाम के चाय-नाश्ता से लेकर रात के डिनर तक का सारा काम वहीं लेटे-बैठे होता। पत्नी से संवाद सिर्फ हां-हूँ तक सिमट गया। ठहाके और चुहल तो पता नहीं कहाँ अंतर्ध्यान हो गए थे।

पीयूषजी के पास अब घर के कामकाज के लिए समय नहीं रहा। पहले वे शाम को ऑफिस से लौट कर चाय पीते टीवी देखते आयुष का होम वर्क करा देते थे। होम वर्क कराते हुए उर्मि के साथ चुहल भी चलती रहती। अब उर्मि से साफ कह दिया कि तीन लोगों का खाना बनाने में ऐसा थोड़े ही है कि शाम का सारा समय खप जाय। उन्हें डिस्टर्ब न करे और आयुष का होमवर्क खुद करा दे। सब्जी बाजार व मेन मार्किट घर से दूर पड़ता था। पहले वे स्वयं स्कूटर से जाकर ताजा सब्जी तथा अन्य सामान ले आते थे। अब उनका सारा ध्यान सोशल मीडिया के एप्स पर रहता और ये काम भी उर्मि के जिम्मे आ गया।

बैड पर भी मोबाईल उनकी 'कंगारू-गोद' में दुबका रहता। उर्मि चौके का काम समेट कर और बेटे को सुलाकर पास आ लेटती और इंतजार करती कि हुजूर को इधर नजरें इनायत करने की फुरसत मिले तो दो चार प्यार की बातें हों। पर बहुधा ऐसा नहीं हो पाता। उस समय पीयूषजी कुछ खास ललनाओं से चैट में मशगूल रहते। सूखे इंतजार के बाद आखिर उर्मि की आंखें ढलक जातीं।

कई बार ऐसा होता कि रात के ग्यारह बजे किसी मित्र से वीडियो चैट कर रहे होते। उधर से मित्र गर्म कॉफ़ी की चुस्कियां लेता दिखता। कॉफ़ी से उड़ती भाप आभासी होने बावजूद नथुनों में घुस कर खलबली मचाने लगती। वह खलबली कैसे शांत होती! आभासी कॉफ़ी हवा से निकलकर तो नमूदार होने से रही। बगल में थकी हारी लेटी उर्मि को जगाते और कॉफ़ी बना लाने का आदेश फनफना देते। पति परायण उर्मि को मन मार कर उठना ही पड़ता।

घड़ी की ओर नजर गयी..साढ़े छः! तेजी से कंपाउंड में स्कूटर खड़ा किया और पांच मिनट में फ्रेश होकर सोफे पर चले आए। उर्मि चाय-नाश्ते की तैयारी में लग गयी।

पीयूषजी ने मोबाईल ऑन करके पहले फेसबुक पर क्लिक किया। स्क्रीन पर गोल गोल घूमता छोटा वृत्त उभर आया। वृत्त एक लय में घूम रहा था..और घूमे जा रहा था! निर्बाध! ओह, एप्प खुलने में इतनी देर! उन्होंने

मोबाईल को बंद करके पुनः ऑन किया। 'प्रकट भये कृपाला' की तर्ज पर फिर वही वृत्त! खीज कर ऑफ ऑन की क्रिया को कई बार दुहरा दिया। वृत्त का नृत्य बरकरार रहा। इस्स! झटके से फेसबुक बंद करके व्हाट्सएप्प पर अंगुली दबायी। मन मे सोचा, फेसबुक बाद में देखेंगे। व्हाट्सएप्प पर भी पहले जैसा वृत्त अवतरित हो आया। ये क्या हो रहा है आज! उत्तेजना में एक एक करके मैसेंजर और ट्विटर से भी नूरा कुश्ती की। पर हाय.. लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल! हर जगह मुंह चिढ़ाता वही चक्र मौजूद!

उनका ध्यान इंटरनेट चेक कर लेने की ओर गया। धत्त तेरे.. नेट तो सिंग-पूंछ समेट कर कुम्भकर्णी नींद में सोया पड़ा है। बिना नेट के कोई भी एप्प खुले तो कैसे! लेकिन.. नेट गायब क्यों हो सकता है! पिछले हफ्ते ही तीन महीने का पैक भराया था। कोई तकनीकी अड़चन है शायद। बचपन के दिनों की याद हो आयी जब घर मे ट्रांजिस्टर हुआ करता था। अक्सर ट्रांजिस्टर अड़ियल घोड़ी की तरह स्टार्ट होने से इनकार कर देता। तब पिताजी उस पर दाएं बांए दो चार थाप लगाते और रेडियो बज उठता। पीयूषजी ने उत्तेजना से भर कर मोबाईल के बटनों को बेतरतीब टीपा कि शायद नेट जुड़ जाय। पर सब बेकार।

उन्होंने आग्नेय नेत्रों से मोबाईल को घूरा। पंद्रह हजार का नया सेट! इतनी जल्दी फुस्स! हंह! फनफना कर मिश्रा को फोन लगाया -' कैसा मोबाईल दिलाये मिश्राजी, नेट नहीं पकड़ रहा।'

'मोबाईल चंगा है सर! नेट कहाँ से पकड़ेगा, पूरे शहर की इंटरनेट सर्विस तीन दिन के लिए बंद कर दी है सरकार ने।'

'अरे..!' पीयूषजी घोर आश्चर्य से भर गए।

'जामा मस्जिद के पास दंगा हो गया। रैफ बुलानी पड़ी।'

'जामा मस्जिद तो शहर के धूर उत्तरी छोर पर है।'

'हां सर, खबर है कि एक समुदाय विशेष के दो गुटों में आपसी रंजिश से मामूली मारपीट हुई। दंगा की आशंका से सरकार बहादुर का कलेजा कांप उठा। बस, आव देखा न ताव.. ब्रह्मास्त्र चलाकर नेट ससपेंड!''

इंटरनेट बंद! यानी डेटा बंद! डेटा बंद तो मोबाईल कोमा में जाना ही है क्योंकि इसकी जान तो डेटा नाम के अबूझ से जीव में बसती है न।

अब ..?

'अब' सलीब की तरह जेहन में टंग गया। समय देखा.सिर्फ छः पैंतालीस! ग्यारह से पहले नहीं सोते। कैसे कटेगा समय ? सामने टेबल पर कछुए सा सिंगपूँछ समेटे पड़ा था सेट। पीयूषजी की आह निकल गयी - हाय, तुम न जाने किस जहां में खो गए, हम भरी दुनिया मे तन्हा हो गए..! आभासी दुनिया में विचरण करते समय कब बीत जाता, पता ही नहीं चलता था। यथार्थ में क्या है..! वही घर गृहस्थी, वही पत्नी-बच्चे, वही चिंता तनाव! सब कुछ बासी बेस्वाद! मन सूखे कुएं सा सांय सांय करने लगा। कुछ पल शून्य में देखते हुए निश्चल बैठ रहे।

फिर बुझे मन से उठे। पूरे घर का बेवजह चक्कर लगाकर वापस सोफे पर आ बैठे। रिमोट दबा कर टीवी ऑन किया। जल्दी जल्दी न्यूज़ व शो के पांच सात चैनल बदल डाले। मन नहीं रमा। चार पांच एप्प्स के सिवाय मोबाईल के अन्य उपयोग की न तो जानकारी थी, न ही उनमें रुचि। दिमाग बैचेन और जी उदास हो गया। उदासी पलकों तक चली आयी तो दबाब से कुछ पल के लिए पलकें ढलक गयीं। वे अबूझ चिंतन में चले गए!

तभी उर्मि नाश्ता ले आयी। बेसन के चिल्ले, साथ मे गर्मागर्म चाय।

'कहाँ खो गए जनाब? नाश्ता हाजिर है!' उर्मि चहकी। उसकी चहक से तंद्रा टूटी तो पलकों की यवनिका धीरे से ऊपर उठ गयी। सामने उर्मि खड़ी थी। खिलखिलाने से मुंह की फांक खुली तो भीतर करीने से दुबके मुक्ता दाने चिलक उठे। मुक्त दानों के संग कदमताल मिलाती हिरणी सी आंखें भी भरतनाट्यम कर रहीं थीं।

उन्होनें गहरी नजरों से पत्नी को निहारा। निहार में घोर आश्चर्य घुला था। सांचे में ढला गोरा बदन और खिला खिला चेहरा! देर तक टिकीं रहीं नजरें चेहरे पर। फिर मांग और बिंदी को छू कर अधरों से टपकती गले के नीचे की उपत्यका पर ठहर गयीं। पीयूषजी पत्नी की रूपराशि देख कर चमत्कृत थे। उर्मि ही है या कोई मायावी यक्षिणी!

'ऐसे क्या देख रहे हैं, जैसे पहले कभी देखा नहीं।' उर्मि खिलखिलायी तो जैसे नूपुर की नन्ही घंटियां बज उठी हों। घंटियों की आवाज पीयूष जी के दिल मे झंकार भर गयीं।

'सचमुच यार! ये रूप..ये हंसी..! पहली बार ही देख रहा हूँ। कहाँ छुपाया हुआ था इस खजाने को!' पीयूषजी की आवाज खुशी से थरथरा रही थी। रोज ही तो देखते हैं पत्नी को, आज उसका सौंदर्य इतना नया इतना जादुई क्यों लग रहा है?

उर्मि अवाक थी.. यह कैसा परिवर्तन आया जनाब में.! सुखद और रोमांचक!

'सब कुछ सामने ही था, पर आपको दिखाई न दे तो मैं क्या करती ?' शोख हंसी में लिपटे लफ्ज! दिखाई देता तो कैसे ..! जब से मोबाईल लिया है, आंखें ही नहीं पूरी बॉडी-लैंग्वेज में रोबोट की तासीर घुल गयी। आप के भीतर से आपके खुद को बेदखल करके एक रोबोट आ बैठा और आपको पता भी नहीं। भाव और स्पंदनहीन रोबोट!

पीयूषजी एक पल के लिए ठगे से रह गए। नजरें उर्मि के चेहरे से हट ही नहीं रही थीं। भावावेश में उसे बाहों में खींच लिया। देह स्पर्श बिल्कुल नया लगा.. पहली रात का पहली छुवन जैसा! अद्भुत! पति के

अप्रत्याशित आलिंगन से उर्मि रोमांच से भर गई। ऐसे उत्तप्त आलिंगन के लिए किस कदर तरस गयी थी इन दिनों! आलिंगन ही क्यों, बेड पर के आंतरिक क्षणों की सारी क्रियाएं भी तो जिनमे पहले एक उत्तेजित नशा घुला रहता था, कितनी यांत्रिक व बेरस हो गईं थीं। आंखें खुशी से छलकीं तो हंसी में नमी घुल आयी। पीयूषजी ने थरथराते होंठ उस आर्द्र हंसी पर धर दिए। मन रुई सा हल्का हो गया।

''वाह, चिल्ले! एक अरसे बाद बना मेरा फ़ेवरिट स्नैक ..!' पीयूषजी बच्चों से चहके।

'परसों ही तो बनाई थी..!' उर्मि तुनक कर बोली। पीयूषजी एक बार फिर चौंके। अरे..! परसों खाया था तो याद क्यों नहीं आ रहा ?

''याद नहीं आ रहा कमबख्त!' पीयूषजी खीज से भर गए। ऐसा स्मृति लोप पहले तो कभी नहीं होता था। इन सारे बदलावों के पीछे मोबाईल में दुबके आभासी दुनिया का तिलिस्म तो नहीं ? वे सहम से गए। चाय पीते हुए हुलस कर उर्मि से हंसी मजाक करने लगे। तभी उनका ध्यान उर्मि के टॉप पर गया। गुलाबी पृष्ठ भूमि पर गहरे हरे रंगों के बेल बूटे! गौर वर्ण पर खूब खिल रहा था।

'ये टॉप तुम पर खूब फब रहा है। कब खरीदा ?' पीयूष जी प्रशंसात्मक भाव से बुदबुदाए।

'हे भगवान, पिछले दो महीने से यूज कर रही हूँ। कितनी बार तो इस में देखा, फिर भी ...?' उर्मि खिलखलाती हुई गंभीर हो गयी - 'टॉप को ध्यान से देखते भी तो कैसे ? नया मोबाइल लेने के बाद सारा ध्यान और सारी चेतना मोबाईल ऍप्स के ब्लैकहोल में समा गयी है।! घर परिवार से कटकर आभासी दुनिया में विचरने वाले रोबोट जैसे हो गए हैं आप। कई बार टोकने का मन किया, पर ..'

कुछ पलों का मौन छाया रहा दोनो के बीच। उर्मि सामने के सोफे पर जा बैठी। पीयूषजी अपराधबोध से भर गए। उर्मि के उलाहने में कडुवा सच नहीं था क्या ? सोशल मीडिया और आभासी दुनिया के पीछे विक्षिप्त दीवाने की तरह ही दौड़ रहे हैं। इस अंधी बेलगाम दौड़ ने संवेदना और सोच को छीज कर उन्हें घर परिवार के इमोशन्स से किस कदर रिक्त कर दिया, उफ्फ! आज नेट बंद रहने से वे उसके सम्मोहन से मुक्त हैं तो सब कुछ कितना नया और आकर्षक लग रहा है!

कुछ ही समय मे आलम यह हो गया कि हर समय 'खुले' मोड में मोबाईल उनके हाथ मे रहने लगा। राह में चल रहे हैं, नजरें मोबाईल पर! खाना खा रहे हैं नजरें मोबाईल पर! किसी से बात कर रहें हैं, नजरें मोबाईल पर। न सूचनाओं का अंत होता न चैट पर विराम! हर दो मिनट पर न्यूज़फीड को देर तक ऊपर सरकाने और हर तीसरे मिनट 'नोटिफिकेशन' चेक करते की लत लग गयी। पता नहीं किस मित्र का कब और कैसा मेसेज या कमेंट आ गया हो। अपडेट रहना जरुरी है।

आहिस्ते से उठे और उर्मि के बगल में आ गए। उसकी हथेली को दोनो हथेलियों में भर कर सहलाते हुए फुसफुसाए -'तुमने ठीक कहा डार्लिंग..! आभासी दुनिया के छद्म सम्मोहन के पीछे की अंधी दौड़ में ढेर सारे नायाब सुख और तरल एहसास छूटते चले गए। ये सुख, एहसास, प्रेम पगे पल भले छोटे दिखते हैं, जिंदगी में कितनी ऊर्जा कितना रस और संजीवनी भरते हैं आज पता चला। मन कितना खाली कितना तन्हा हो गया था इनके बिना। पर अब नहीं! अब एक एक करके इन सारे छूटे हुए एहसासों को जी भर कर जीऊंगा!'

उर्मि की नजरें उठीं और पीयूषजी की नजरों से गूंथ गयीं। अवगुंठन में प्यार लबलबा रहा था।

'अब ये मत कहना कि नाक की ये लोंग भी पुरानी है..! मानो चांद का नन्हा सी कणिका छिटक कर ठिठौना सी आ चिपकी हो चेहरे पर!' नाक के लोंग में नन्हा सफेद एडी जड़ा था जो चेहरे को अद्भुत चमक दे रहा था। लोंग को मुग्ध भाव से देखते हुए पीयूषजी हंसे तो उर्मि इठलायी -'पुराना है और पिछले छः महीने से पहनी हुई हूँ जनाब!'

'अरे ? इतने दिनों से नथुने में है, फिर भी नजर नहीं गई इस पर! कमाल है। हमारा बेटा कहाँ है यार ? बहुत दिनों से देखा नहीं उसे।' रूम में चारों ओर देखते हुए ललक कर पूछा।

'बेटे को देखा नहीं? बहुत दिनों से? क्या कह रहे हैं? रोज ही तो सामने बैठा होमवर्क करते रहता है जी।' उर्मि विस्मय से बोली।

'आभासी दुनिया की तंद्रा में दृष्टि ससुरी यंत्रीकृत सी हो गयी थी। तुम, वो, ये सारा परिवेश सामने होते हुए भी आंखों से ओझल रहते। आज तंद्रा टूटी तो तुम्हें देखा। आज ही उसे देखूंगा। उसका होम वर्क मैं कराऊंगा, ठीक ?'

'पड़ोस में खेलने गया है, आता होगा। अब किचेन में चलती हूँ, बहुत काम है।' उर्मि उठती हुई बोली तो पीयूषजी मनुहार कर उठे -'प्लीज.. कुछ देर रुको न..! जी नहीं भरा देखने से..!'

'अब छोड़िए भी। रात के खाने की तैयारी करनी है..!' उर्मि उनकी बाहों से छूटने के प्रयास करती बोली।

'देर हो जाएगी। बहुत काम है..!', उर्मि हंसी -' देखने के लिए ढेर समय मिलेगा मि. अग्रवाल!'

पर पीयूषजी के भीतर का प्रेमी आज वियोग सहने को तैयार नहीं था। उर्मि के साथ के एक एक पल को जी लेने को मचल रहा था।

'तो ऐसा करते हैं कि मैं भी किचेन में चलता हूँ। तुम सब्जी बनाना, मैं आटा गूंथ

पीयूषजी उर्मि की बांह थाम कर थरथराती आवाज में बोले -'बेशक आज के युग में सोशल मीडिया से दूर रहना संभव नहीं। पर मेरे लिए वह 'कीप' की तरह होगी। सिर्फ कुछ देर का लाड़, बस! उसे ड्रैकुला की तरह अनुभूतियों व इमोशन्स का खून नहीं चुसने दूंगा। उस दुनिया के सैर के दौरान भी तुम सब को .. तुमको, आयुष को, घर परिवार को और सारे सेंटीमेंट्स को साथ लिए रखूंगा !'

दूंगा।' पीयूषजी ने भोलेपन से कहा। उर्मि पति की अदा पर फिदा हो गयी। पहले वाले दिन याद हो गए जब पीयूषजी उसके इर्दगिर्द बने रहने और चुहल करने का कोई बहाना नहीं छोड़ते थे।

'आपका मन नहीं लगेगा इन कामों में..!' उर्मि ने आंखें नाचते हुए व्यंग्य किया।

'लगेगा और खूब लगेगा। उस पिशाच को कंधे से उतार कर पेड़ पर उल्टा लटका दिया है ..!' पीयूष जी की आवाज आत्मविश्वास से लबरेज थी।

फिर परात में आटा.. आटे में पानी..! पानी मे थोड़ी चुहल और थोड़े ठहाके! फेंटते हुए देर तक मनोयोग से आटा गूँथते रहे। ऐसा मजा जीवन मे पहले कभी नहीं आया।

इसी बीच आयुष पड़ोस से खेल कर आ गया। पीयूषजी ने लपक कर उसे गोद में उठा लिया। मानो अरसे बाद गोद मे लिया हो, वात्सल्य के विलक्षण फुहार से भींग गया मन। बेटा भी थिरक कर चूजे की तरह चिपक गया उनसे। फिर होमवर्क कराते हुए उसकी मासूम बातों व हरकतों में खूब आनंद मिला।

डिनर के बाद उर्मि को लेकर छत पे चले आये। काफी दिनों के बाद छत पर आये थे। सब कुछ नया नया लग रहा था। आंगन, डोली, पिछवाड़े खड़ा अमरूद का छतनार पेड़! विभिन्न किस्मो के फूलों और शो पत्तों के छोटे बड़े बीसेक गमले! कलेक्शन उन्हीं का तो किया हुआ था। चाव से! देखरेख के अभाव में कुछ अधखिले थे तो कुछ मरणासन्न! जैसे उन्हें उलाहना दे रहे हों - ' नन्हें दोस्तों को भूल क्यों गए सर ?' ग्लानि से भर गया मन। कल से तुम्हारी सेवा में हाजिर रहूंगा दोस्तों!

आकाश में इस छोर से उस छोर तक विशाल स्याह चंदोबा तना था! चंदोबे पर एक ओर न्यून कोण में टिका चतुर्दसी का चांद! दोनो की नजरें उस पर टिक गयीं।

'चौदहवीं का चांद..!' उर्मि किलक कर बोली -' कितना प्यारा लग रहा न ?'

'हां..! एक अंतराल के बाद देख रहा हूँ उस चांद को भी और इस चांद को भी। आभासी दुनिया की सनक भरी दौड़ में ऐसे रोमांचकारी अनुभूतियों से रूबरू नहीं हो सका कभी ..!' पीयूषजी उर्मि की बांह थाम कर थरथराती आवाज में बोले -'बेशक आज के युग में सोशल मीडिया से दूर रहना संभव नहीं। पर मेरे लिए वह 'कीप' की तरह होगी। सिर्फ कुछ देर का लाड़, बस! उसे ड्रैकुला की तरह अनुभूतियों व इमोशन्स का खून नहीं चुसने दूंगा। उस दुनिया के सैर के दौरान भी तुम सब को .. तुमको, आयुष को, घर परिवार को और सारे सेंटीमेंट्स को साथ लिए रखूंगा!'

सुबह यथा समय नींद खुल गयी। पहले नींद खुलते ही बेताल जेहन में प्रकट हो जाता और हाथ मोबाइल ढूंढने लगते। आज दिल और दिमाग शांत थे। चाय पीकर छत पर चढ़ गए। खुरपी, संडासी, ट्रिमर, वाटर केन आदि निकाला। दो घंटे की बेसुध सेवा! एक एक पौधे को सहलाया। सहलाते हुए मन रोमांच से सरबोर होता रहा। ऐसे अनिवचनीय सुख से क्यों कर विमुख रहे अब तक! गमलों का काम करके सब्जी बाजार गए। सारा परिवेष नया सा लग रहा था। रामखेलावन, मंगरु साव और पिंटू के पुराने ग्राहक थे। सभी लोग उलाहना देते हुए चहक उठे -'भले ही कुच्छो ना खरीदो साहेब पर दु चार दिनन पर आकर मिल लो तो दिल जुड़ा जात है..!' इन अनजान लोगों के मूर्त अपनापन के आगे आभासी मित्रों के छद्म सहानुभति कितनी खोखली है! पीयूषजी उन लोगों के स्नेह से भीतर तक भींग गए।

आफिस में इंटरनेट बंद होने से सभी के चेहरे क्षुब्ध थे.. मानो कोई नायाब खजाना लुट गया हो। सभी पानी पी पी कर सरकार को कोस रहे थे। ये भी कोई बात हुई कि शहर के किसी ओने कोने में जरा सा फसाद हुआ नहीं कि इंटरनेट बंद! नेट के बिना जनता की जान हलक में आ जाती है, ये नहीं सोचते।

कल के ढेर सारे नायाब अनुभवों से गुजरने के बाद पीयूषजी का मन शांत था। उनकी टिप्पणियां को सुनकर मजा आ रहा था। देखते देखते दो दिन बीत गए। दो दिन में 'सदियों को जी लिया हो जैसे'! शाम को ऑफिस से लौट कर घर मे प्रवेश करते ही मिश्रा का फोन आ गया -'नेट चालू हो गया सर, छः बजे गूगल मिट में जुड़ना है।'

इंटरनेट जीवित हो जाने की बात पर निमिष में फेसबुकिया मित्र और चैट की बातें जेहन में कौंध गयीं। घड़ी की ओर देखा - साढ़े पांच बजे रहे थे। कलेजे के भीतर सुरसुरी उठने लगी। चाय पीते बार बार घड़ी की नजरें चली जातीं।

छः बज गए तो हाथ स्वयमेव मोबाईल खोलने को उतावले हो उठे। तभी उर्मि पास आकर बैठ गयी। वे उससे नजर चुराते बेडरूम में आ गए। क्या हो रहा है उन्हें ? मन विचलित क्यों है ? आंखें मुंदी तो दो दिन पहले के अनुभव याद आते गए। सांसें तेज तेज चलने लगीं।

दस मिनट बाद..! मोबाईल को कुछ देर तीखी नजरों से घूरते रहे। फिर हंसी छूट गयी - कीप..! दरवाजा खोलते हुलस कर पत्नी से कहा -'तैयार हो जाओ। घूमने निकलेंगे। पहले मल्टीप्लेक्स में फ़िल्म, फिर किसी बढ़िया रेस्टुरेंट में शानदार डिनर! तुम सब को वापस हासिल कर लेने का सेलिब्रेशन!ओ के!!'

• • •

लेखक साहित्यकार हैं।

वास्तुकला का अद्भुत नमूना त्रिलोकीनाथ मंदिर

– शकुन्तला देवी

त्रिलोकीनाथ मंदिर हिमाचल प्रदेश के चम्बा जिले के सुरम्य पहाड़ी पर 9563 फुट की ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ दो मन्दिर हैं। एक शिखरदार है और दूसरा पहाड़ी शैली में बना हुआ है। शिखरदार मन्दिर ही दोनों धर्म वालों के लिए पूज्य है। यहां बौद्ध और हिन्दू धर्मावलम्बी फूल और प्रसाद चढ़ाकर सिर नवाते है। यह बहुत पुराना मन्दिर है। इसे कब से दोनों धर्मावलम्बी अपने इष्ट के रूप में पूजते हैं, इसे कोई नहीं जानता है। यहां जो मूर्ति स्थापित है, वह भगवान बुद्ध की है। इस नज़रिए से दोनों धर्म के लोग पूजते हैं। वस्तुत: भगवान बुद्ध हिन्दू के दस अवतारों में एक अवतार हैं। इस लिए सदियों से बुद्ध की मूर्ति पर हिन्दू और बौद्ध दोनों सिर नवाते रहे हैं। लेकिन हिमाचल का यह मंदिर एक तरह से बौद्ध मठ और मंदिर दोनों है।

हिमाचल प्रदेश उत्तर भारत का ऐसा राज्य है जहां प्रकृति ने अपने चित्रात्मक हाथों से उसकी चित्रकारी की है। यह राज्य पूर्व एंव पश्चिम में पंजाब से और उत्तर में जम्मू-कश्मीर से घिरा है। मंदिरों की अधिकता और अनेक पौराणिक संदर्भ जुड़े होने के कारण इसे देवभूमि कहा जाता है। यहां की हरियाली, बर्फ से ढकीं चोटियां, बर्फीले ग्लेशियर और झीलें मन मोह लेते हैं। प्रदेश की राजधानी शिमला विश्वभर में प्रसिद्ध है। शिमला का हिल स्टेशन देखने दुनियाभर से लोग आते हैं। इसके अलावा पर्यटन स्थल के रूप में खूबसूरत कहा जाने वाला रोहतांग दर्रा हिमाचल की अलग पहचान देता है। यह मनाली से 150 किमी दूर है। पर्यटन स्थल के रूप में काली बाड़ी लोगों के आकर्षण का केंद्र है। यह मंदिरों का शहर कहा जाता है। यहां स्थित श्यामला देवी मंदिर लोगों को लिए दर्शनीय रही है। कुल्लू जिले की सुन्दरता और यहां का रामलीला दुनियाभर में प्रख्यात है। यहां हिमालय की बर्फ से ढकीं विशाल चोटियां दूर से दिखाई देती हैं। कांगड़ा का महल जिसमें चित्रकारी का नमूना आज भी लोगों को आश्चर्य में डालते हैं, हिमाचल प्रदेश की महान् विरासतों में एक है। एशिया का सबसे ऊँचा गो कर्ट ट्रैक यहां है। यहां की रेलवे लाइन को विश्व धरोहर में दर्जा दिया गया है।

हिमाचल मंदिरों का प्रदेश भी कहा जाता है। हिमाचल के बारह जिलों में विश्व प्रसिद्ध मंदिर स्थापित हैं जिनमें चिन्तपुण, ज्वालादेवी, चामुण्डा देवी प्रसिद्ध हैं। इन मंदिरों में वास्तुकला का प्रयोग दर्शनीय है। त्रिगर्त नाम से कांगड़ा हिमाचल की सबसे सुन्दर घाटियों में से एक है। हिमाचल में स्थित राजवंशों के महल और मंदिरों में हुई चित्रकारी राजवंशों के सम्बंध में जहां जानकारी देते हैं वहीं पर वास्तुकला की सूक्ष्मताओं को भी प्रकट करते हैं। ऐसी ही लोगों के आकर्षण और दर्शनीय चित्रकारी त्रिलोकपुर मंदिर की है जो अत्यंत अद्भुत है। विश्व पर्यटन स्थल पर त्रिलोकपुर का त्रिलोकीनाथ मंदिर को देखने से लगता है इसमें कांगड़ा शैली और शिमला शैली का अद्भुत प्रयोग किया गया है। वास्तुकला के जानकारों के अनुसार इस मंदिर की चित्रकला प्रदेश के दूसरे मंदिरों की चित्रकला से भिन्न और विशिष्ट प्रकार की है।

राज्य का सम्पूर्ण क्षेत्र मनोरम, आकर्षक, सुन्दर, अद्भुत और शांति प्रिय है। यहां कई ऐतिहासिक स्थान हैं जो अपनी महानता को कहते हैं। इसी तरह धार्मिक रूप से महत्व रखने वाले स्थल भी हमेशा लोगों के लिए आकर्षण का केंद्र बनें रहते हैं। प्रदेश में ऐसे अनेक तीर्थ स्थल हैं, जहां अनेक मतों के लोग मूर्ति दर्शन के लिए आते हैं। ऐसा ही एक तीर्थ स्थल है त्रिलोकनाथ गांव में स्थित त्रिलोकनाथ मंदिर। हिमाचल प्रदेश के चम्बा जिले के सुरम्य पहाड़ी पर 9563 फुट की ऊँचाई पर यह स्थित है। यहाँ दो मन्दिर हैं। एक शिखरदार है और दूसरा पहाड़ी शैली में बना हुआ है। शिखरदार मन्दिर ही दोनों धर्म वालों के लिए पूज्य है। यहां जो मूर्ति स्थापित है उसे बौद्ध और हिन्दू धर्मावलम्बी फूल और प्रसाद चढ़ाकर सिर नवाते है। यह बहुत पुराना मन्दिर है। इसे कब से दोनों धर्मावलम्बी अपने इष्ट के रूप में पूजते हैं, इसे शायद कोई नहीं जानता

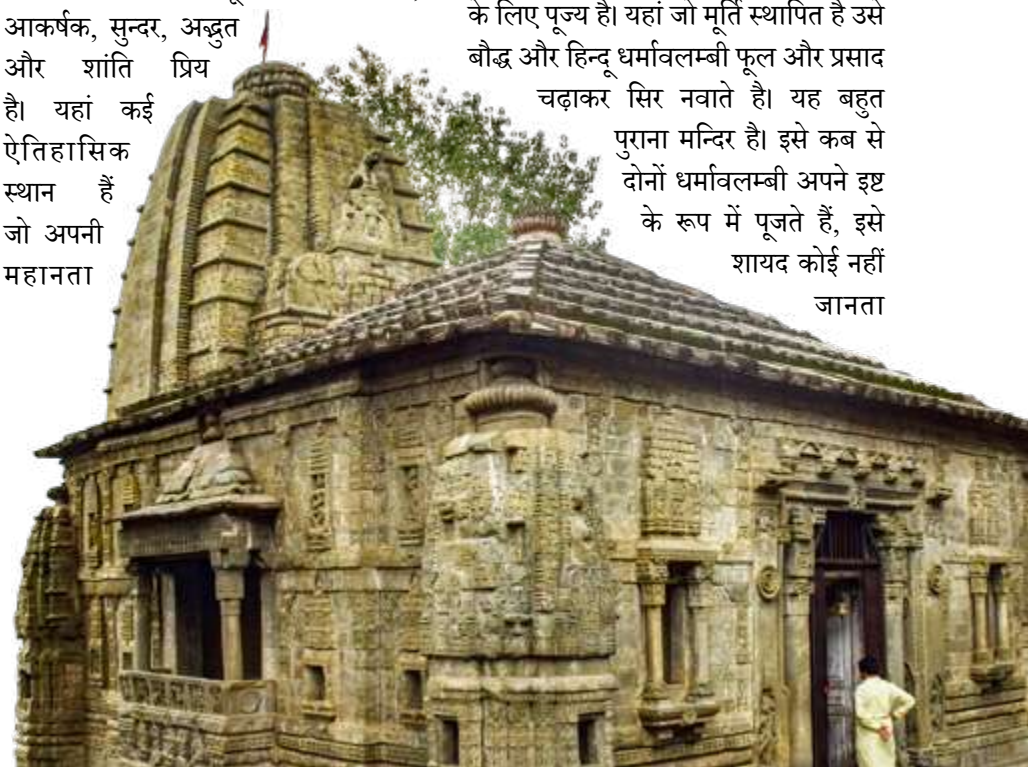

है। यहां जो मूर्ति स्थापित है वह भगवान बुद्ध की है। इस नजरिए से दोनों धर्म के लोग पूजते हैं। वस्तुतः भगवान बुद्ध हिन्दू के दस अवतारों में एक अवतार हैं। इसलिए सदियों से बुद्ध की मूर्ति पर हिन्दू और बौद्ध दोनों सिर नवाते रहे हैं। लेकिन हिमाचल का यह मंदिर एक तरह से बौद्ध मठ और मंदिर दोनों है।

सबसे अजरज की बात यह है कि यहां सिर नवाने के लिए महज सामान्य जनता ही नहीं आती है, बल्कि देश-विदेश से साधु-संत और अनुसंधान करने वाले शोधार्थी भी आते हैं। सभी भक्त बड़ी श्रद्धा और भक्ति से आपस में मिलकर यहां के कर्मकाण्डों में भाग लेते हैं। सबसे दिलचस्प बात यह है कि यहां पुजारी के रूप में कोई हिन्दू या बौद्ध नहीं, बल्कि एक लामा होता है। यह लामा ही सारे कर्म काण्ड बड़े सलीके से कराता है। इस जगह का नाम त्रिलोकनाथ पड़ने की वजह भगवत् सत्ता का चमत्कार है। कहते हैं जो यहां बड़े विश्वास के साथ भगवान बोधिसत्त्व की पूजा करता है, उसकी कामनाएं पूरी होतीं हैं। वैसे तो देखने में यह मूर्ति आधी भगवान शंकर की दिखाई पड़ती है और आधे हिस्से में भगवान बुद्ध उत्कीर्ण हैं। लेकिन मुख्यतः इसे मूर्ति के रूप में दोनों धर्मों के लोग मिलकर इसकी पूजा-अर्चना करते हैं। तीन फुट ऊंची और छह हाथों वाली भगवान त्रिलोकनाथ की यह मूर्ति सफेद संगमरमर की बनी हुई है जो देखने में बहुत ही आकर्शक लगती है। बहुत से लोग इसे मन्दिर कहते है तो, तमाम लोग इसे बौद्ध मठ भी कहते हैं।

मन्दिर को बाहर से देखने पर बहुत से आकर्षक चित्र दिखाई पड़ते हैं। दरवाजा दो खम्भों पर बनाया गया है। जैसे ही दरवाजे से अन्दर जाते हैं, कई छोटे आकार के मन्दिर जो देखने में आकर्शक दिखाई पड़ते हैं, द्रश्टव्य होते हैं। भारत में तरह-तरह के पाषाण मन्दिर हैं, सब की अपनी अलग खूबी है। लेकिन इस मन्दिर की जो खूबी है वह सबसे हटकर है। वह यह है कि मन्दिर के सबसे ऊंचे भाग पर कई लकड़ी के छोटे मन्दिर हैं, जिसमें किसी देवी या देवता की मूर्ति नहीं स्थापित है, बल्कि एक पुरुष, दूसरी स्त्री और तीसरी मूर्ति राक्षस की है। यह किस बात को दर्शातीं हैं, इसका कोई एक प्रमाण नहीं हैं। जनश्रुतियां इस सम्बंध में तरह-तरह की प्रचलित हैं। लेकिन यह समझ में आता है कि इंसान यदि अपने कर्मों से गिर जाए तो वह राक्षस बन जाता है, वह चाहे स्त्री हो या पुरुष। इसलिए हर इंसान को हमेशा अच्छे कर्म ही करने चाहिए, जिससे मरने के बाद उसे सद्गति मिले। दूसरी मान्यता यह है कि स्त्री और पुरुष जाड़े को भगाने के लिए वसंत के महीने में उत्सव मनाते हैं और जाड़े को राक्षस मानकर इसे हमेशा के लिए भगाने के कर्मकाण्ड करते हैं। इसमें एक आदमी को जाड़ा (राक्षस) मानकर मेले में मौजूद सभी लोग खदेड़ते जाते हैं और वह राक्षस यानी जाड़ा बना आदमी त्रिलोकनाथ की एरिया से बाहर भागता जाता है। गांव से बाहर भगा देने के बाद भक्त गण खूब आंनद मनाते हैं।

पर्यटन स्थल के रूप में काली बाड़ी लोगों के आकर्षण का केंद्र है। यह मंदिरों का शहर कहा जाता है। यहां स्थित श्यामला देवी मंदिर लोगों को लिए दर्शनीय रही है। कुल्लू जिले की सुन्दरता और यहां का रामलीला दुनियाभर में प्रख्यात है। यहां हिमालय की बर्फ से ढकीं विशाल चोटियां दूर से दिखाई देती हैं। कांगड़ा का महल जिसमें चित्रकारी का नमूना आज भी लोगों को आश्चर्य में डालते हैं, हिमाचल प्रदेश की महान् विरासतों में एक है। एशिया का सबसे ऊँचा गो कर्ट ट्रैक यहां है। यहां की रेलवे लाइन को विश्व धरोहर में दर्जा दिया गया है।

त्रिलोकनाथ मंदिर परिसर में यूं तो बारहो महीने भक्तों की भीड़ लगी रहती है, लेकिन सावन और भादों में लगने वाला मेला विशेष होता है। इस माह में जहां हिन्दू भक्त भगवान त्रिलोकनाथ की पूजा बड़े श्रद्धा-भक्ति के साथ करते हैं, वहीं पर बौद्ध धर्मानुयायी भी भगवान बुद्ध की पूजा बड़े कर्मकाण्डीय

विधानों के साथ करते हैं। यहां पर आने वाला हर अनुयायी पूरे मनोयोग से अपनी कामना की पूर्ति के लिए आता है। यहां पर चढ़ने वाला प्रसाद भक्तों और साधु-संतोंके लिए बहुत अत्यंत श्रद्धा से युक्त होता है। कहते हैं चम्बा जिले के लिए त्रिलोकपुर गांव सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है। इस लिए आम जनता और सरकार दोनों यहां अपनी शक्ति के मुताबिक व्यय भी करते हैं। यह एक तीर्थ स्थल के रूप में प्रसिद्ध है ही, पर्यटक स्थल के रूप में भी बहुत प्रसिद्ध है। यदि यहां घूमने जाना हो तो जाने में कोई दिक्कत नहीं होती है। बड़े आराम से यहां जाकर घूमा और ठहरा जा सकता है।

हिमाचल की मंदिरों और मठों में हुई चित्रकारी चम्बा, कांगड़ा, हमीरपुर, कुल्लू और मनाली में शंलियों स्थित मंदिरों में अनेक हैं, वे त्रिलोकपुर स्थिति त्रिलोकीनाथ मंदिर की चित्रकला से भिन्न नटराज शैली की चित्र-कलाएं है। हिमाचल के मंदिरों में की गई चित्रकारी विश्व पर्यटकों के लिए कुतूहल का विषय रहा है। यही वजह है कि गांव में स्थित होने के बावजूद बड़ी तादात में पर्यटक और श्रद्धालु यहाँ आते हैं। गांव का विकास और चर्चा इस मंदिर के कारण विश्व मानचित्र पर आ गई है। वास्तुकला का बेजोड़ नमूना वाले इस मंदिर के प्रति हिंदू और बौद्ध दोनों धर्मों के लोगों का होना निश्चित ही इस मंदिर की खूबियों और महत्ता को बताता है।

• • •

लेखिका स्वतंत्र स्तंभकार हैं।

मणिपुर के एकल नृत्य में जयदेव कृत 'गीत-गोविन्द': गुरु मैसनम अमूबी सिंग का योगदान

– डा.खंगेम्बम खोनी

गीत-गोविंद प्रख्यात कवि जयदेव द्वारा लिखी गई एक प्रसिद्ध कविता है जिसकी रचना 12वीं शताब्दी में राजा लक्ष्मणसेन के शासनकाल के दौरान की गई थी। कृष्ण भक्ति की भावना और वैष्णववाद का प्रसार करते समय चैतन्य महाप्रभु ने गीत-गोविंद का व्यापक उपयोग किया था जो जयदेव का भगवान कृष्ण के लिए भक्तिपूर्ण गीत है। चैतन्य महाप्रभु के अनुसार गौरिया संस्कृति के निर्माण में गीत गोविंद का बड़ा प्रभाव रहा है। यह 'पदावली' में रचित है जिसका अर्थ है कि यह भगवान कृष्ण की स्तुति करने वाली कविताओं का एक गुलदस्ता है। कवि जयदेव, विद्यापति, चंडीदास और नरोत्तम दास की भगवान की स्तुति करने वाली कविताएँ बांग्लादेश और उसके आसपास के वैष्णव समाज में फैलती रही हैं और इसी तरह मणिपुर में वैष्णव संस्कृति को अपनाने के दौरान इन भक्ति गीतों का आज के अनुष्ठानों और उत्सवों में उपयोग किया जाने लगा।

18वीं शताब्दी के दौरान वसंत रास की रचना करने वाले महाराज भिग्यचंद्र के समय गीत-गोविंद व्यवस्था का अभिन्न हिस्सा था। गुरुओं तथा पंडितों से गहन परामर्श के बाद रासलीला के राधा-मन क्षेत्र को विस्तृत रूप से व्याख्यायित किया गया। महाराज चूड़ाचंद के शासनकाल में नरोत्तम ठाकुर का 'लालसा' गाया जाता था। 19वीं शताब्दी में, महाराज गंभीर सिंह के शासनकाल के दौरान जयदेव के गीत गोविंद को रथ-यात्रा में गाया जाता था। बाद में महाराज चंद्रकीर्ति (1850-86) के शासनकाल के दौरान एक गीत का उपयोग

कृष्ण और राधिका की लीला प्रेम और श्रृंगार रस का स्वरुप है। प्रेम-मिलन, विरह और पुनर्मिलन काव्य का यह रस राजाश्रय से फैला है। गीत-गोविंद का अंग्रेजी, लैटिन और जर्मनी में बहुत अच्छा अनुवाद किया गया है। इसका अनुवाद अन्य भारतीय भाषाओं में भी किया गया है। गीत गोविंद मणिपुरी में अनुवादित होने से पहले ही मणिपुरियों द्वारा उनके नृत्य, गीत और पुंगलोन में उपलब्ध था।

जब गुरु अमुबी ने पहली बार मणिपुरी नृत्य में गीत-गोविंद की रचना की, तो उन्होंने नृत्य महाविद्यालय में पर्यवेक्षक बनने के बाद 1960 में पहले अध्याय का दूसरा गीत चुना, जिसे "सिट्टा कमला कुचामंडला" कहा जाता है। श्रीमती टंडन और श्रीमती थम्बलनग्गौबी ने पहली बार यह नृत्य प्रस्तुत किया।

रास के समय किया गया था, जो बाद में नित्य-रास तथा पदकल्पतर गीत में बड़े पैमाने पर उपयोग किया गया था।

मणिपुर के वैष्णव समाज में गुरु अथवा ओझा द्वारा चुने गए पदावली गीत का उपयोग विभिन्न अनुष्ठानों, खुबक एशेई, बसोक, नाट्य-संकीर्तन, मृत्यु/जन्म अनुष्ठान, यज्ञ कर्म एशेई, श्रद्धा आदि कर्मकांडों में किया जाता है। गोपी चरण दास का "नील कमल" विभिन्न समारोह में गाया जाता है। गाय चराने की लीला वृन्दा की भगवान कृष्ण की खोज भी गाई जाती है।

ऐसे महान कवि जयदेव का सबसे महत्वपूर्ण विचार कृष्ण की स्तुति और उनके प्रति भक्ति है। भगवान कृष्ण और गोपियों के साथ राधिका गीत-गोविंद के रास के हिस्सा हैं। यह गीत की प्रस्तुति के साथ अद्भुत गीतिकाव्य अथवा वैष्णव समाजों और भक्त के लिए आदर्श-जीवन की ताल और राग पर आधारित कविता का एक गीतात्मक उदाहरण है।

गीत गोविंद को शास्त्रीय कविता भी कहा जाता है। यह राग पर आधारित एक उत्तम संगीत, लय और रस के साथ लयबद्ध पिच जो कि अनुभूति और खुशी का उच्चतम स्तर है, राधाकृष्ण के मिलन, उनके अलगाव और पुनर्मिलन, आत्मा और परम आत्मा के मिलन को व्यक्त करने वाले समय के उत्साह और खुशी को प्रकट करने वाली कविता है। पंडितों और गुरुओं ने बताया है कि भगवान कृष्ण और राधिका के शाश्वत प्रेम का उल्लेख पहले से ही विष्णु पुराण, भागवत पुराण और ब्रह्म वैवर्त्य पुराण जैसे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में किया गया है। हालाँकि, विशेषज्ञों का मत है कि जयदेव के "गीत गोविंद" का अपना एक अलग और नया दृष्टिकोण है। जयदेव की अभिव्यक्ति में राधिका द्वारा भगवान कृष्ण के प्रति प्रेम और इच्छा पहले के ग्रंथ की तुलना में अधिक सुंदर और गहन है। राधिका भगवान कृष्ण का हिस्सा हैं और देवी लक्ष्मी का अवतार हैं। उनकी नारीत्व की शक्ति स्वयं भगवान से है। यह शक्ति स्वयं भगवान से भी अधिक महान है। इसके लिए कृष्ण ने अंततः उनके समक्ष समर्पण कर दिया। हालाँकि, राधिका कृष्ण को अधिक कीमती और सबसे प्रिय मानती है। इसलिए, भगवान कृष्ण और राधिका के बीच का रिश्ता भावना के उच्चतम स्तर पर है जो भक्ति में बदल जाता है और सामान्य पुरुष और महिला वाले प्रेम से दूर हो जाता है। यह ईश्वर के प्रति मानव प्रेम और आत्मा की भक्ति के प्रति है। एक इंसान के जीवन काल के बाद भी एक सुंदर और हमारी सोच से परे स्नेह और वैराग्य और आगे एक साथ खुशी से रहते हुए एक दूसरे की देखभाल करना, इसमें अच्छी तरह से व्यक्त किया गया है।

कृष्ण और राधिका की लीला प्रेम और श्रृंगार रस का स्वरूप है। प्रेम-मिलन, विरह और पुनर्मिलन काव्य का यह रस राजाश्रय से फैला है। गीत-गोविंद का अंग्रेजी, लैटिन और जर्मनी में बहुत अच्छा अनुवाद किया गया है। इसका अनुवाद अन्य भारतीय भाषाओं में भी किया गया है। गीत गोविंद मणिपुरी में अनुवादित होने से पहले ही मणिपुरियों द्वारा उनके नृत्य, गीत और पुंगलोन में उपलब्ध था।

मणिपुरी गुरु हमें सिखाते रहे हैं कि समूह-नृत्य सबसे महत्वपूर्ण नृत्य शैली है, परंतु वहाँ एकल नृत्य भी पर्याप्त प्रचलित रहे हैं। कृष्ण अभिसार, राधा अभिसार, कृष्ण नर्तन, राधा नर्तन, मकोचिंगबी नर्तन के बावजूद, एक एकल नर्तक के रूप में उसकी पहचान, उसकी लोकप्रियता, उसके नृत्य के अन्य रूपों और शैली के साथ बहुत देर से सामने आयी है। एकल प्रदर्शन को भी एक नृत्य शैली माना जाता है जो ब्रिटिश शासन काल के दौरान और उसके बाद भी प्रचलन में थी।

पश्चिम में समूह नृत्य की शैली लंबे समय से अस्तित्व में थी। हालाँकि, एशिया में समूह नृत्य के महत्व के बावजूद, एशिया, चीन, कोरिया, दक्षिण पूर्व एशिया में धार्मिक मामलों, शाही संरक्षण में एकल प्रदर्शन शुरू से ही प्रचलन में रहा है। उदाहरण के लिए, चीन में लंबे कपड़े पहनकर नर्तक अपनी भुजाओं की गति के साथ एकल प्रस्तुति देता है। भारत में देवदासी मंदिर के सामने एकल नृत्य करती हैं। मणिपुर में भी पुजारिन माईबी प्रदर्शन के दौरान भगवान से संवाद करते हुए एकल नृत्य किया करती थीं।

पहला मणिपुरी नृत्य प्रदर्शन वर्ष 1939 में गुरु अमुबी द्वारा उदय शंकर इंडिया कल्चर सेंटर, अल्मोड़ा में प्रस्तुत किया गया था। यह एकल नृत्य गोपी चरणन दास की कविता "नील कमल" की पदावली में था। कलाकार उदय शंकर व पत्नी अमला शंकर ने एकल नृत्य प्रस्तुत किया। इस एकल नृत्य को उदय शंकर मंडली द्वारा भारत के अन्य स्थानों जैसे लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर, बॉम्बे में भी प्रदर्शित किया गया और दर्शकों द्वारा बहुत सराहा गया। जीवन की लय, श्रम तथा मशीनरी का भी मंडली में प्रयोग किया गया।

यह चर्चा करना दिलचस्प होगा कि मैसनाम गुरु अमुबी ने एकल नृत्य की रचना करने के बारे में कैसे सोचा। यह जानने के लिए हम उनकी जीवन की कहानी पर दृष्टिपात करते हैं। गुरु अमुबी ने छोटी उम्र से ही अपनी बड़ी बहन से मैतेई जगोई सीख ली थी। उनके पिता कर्नल सामू ने वर्ष 1891 में बीर टिकेंद्रजीत का समर्थन करते हुए एंग्लो मणिपुरी युद्ध लड़ा था जिसके लिए उन्हें अंडमान निकोबार द्वीप में निर्वासन में भेज दिया गया था। निर्वासन के बाद उन्होंने अपने शेष दिन वृन्दावन में बिताए। युवा गुरु अमुबी ने वृन्दावन में अपने पिता की सेवा में कुछ समय बिताया था। अपने पिता के निधन के बाद गुरु अमुबी मणिपुर वापस आ गए और अपनी बहन के साथ रहने लगे जहां उन्होंने फिर से नृत्य और संगीत की दुनिया में प्रवेश किया। उन्होंने सनाख्या सनाजाओबा जैसे विद्वान गुरु से नट-संकीर्तन सीखना शुरू किया। उन्होंने वैष्णवी धर्म और सदियों पुरानी मैतेई पारंपरिक संस्कृति के मानदंडों की अधिक समझ के साथ गुरु हुइड्रोम झूलोन माचा से नृत्य सीखा, विशेष रूप से भंगि-मंगा नृत्य।

दुर्भाग्य से, गुरु झूलन माचा की वर्ष 1921 में बाढ़ के दौरान बीमारी के कारण मृत्यु हो गई। दो महीने के बाद दिसंबर के महीने में महाराज चूड़ाचंद ने गुरु अमूबी के नेतृत्व में एक नृत्य समूह को प्रिंस एडवर्ड के सामने प्रदर्शन के लिए कोलकाता भेजा। महारास प्रस्तुति को संक्षिप्त कर दिया गया और केवल 15 मिनट की अवधि के लिए प्रदर्शन करने दिया गया। गुरु अमुबी खुश नहीं थे क्योंकि प्रदर्शन में सभी अनुष्ठानों को कम कर दिया गया था। हालाँकि, महत्वपूर्ण भागों को लिया गया और किसी तरह महारास प्रस्तुत किया गया। 15 मिनट के महारास प्रदर्शन को कोई भी रिकॉर्ड नहीं कर सका।

इसके बाद महाराज चूड़ाचंद ने गुरु अमूबी को फिर से अमीर उद्योगपति हाथी सिंह की बेटी को मणिपुर नृत्य सिखाने के लिए अहमदाबाद भेजा। मैतेई नर्तक और भारत के अन्य हिस्सों के गैर-मैतेई नर्तकों के बीच शारीरिक संरचना में अंतर था, जिसके कारण गुरु अमूबी के लिए गैर-मैतेई नृत्य सिखाना मुश्किल था। मणिपुरी नृत्य पहले से ही गुजरात और दिल्ली में गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर के कारण लोकप्रिय था, जिन्होंने 1919 में शांति निकेतन में मणिपुरी नृत्य की शुरुआत त्रिपुरा के मणिपुर नृत्य गुरु को नियुक्त करके की थी।

मणिपुर के वैष्णव समाज में गुरु अथवा ओझा द्वारा चुने गए पदावली गीत का उपयोग विभिन्न अनुष्ठानों, खुबक एशेई, बसोक, नाट्य-संकीर्तन, मृत्यु/जन्म अनुष्ठान, यज्ञ कर्म एशेई, श्रद्धा आदि कर्मकांडों में किया जाता है। गोपी चरण दास का "नील कमल" विभिन्न समारोह में गाया जाता है। गाय चराने की लीला वृन्दा की भगवान कृष्ण की खोज भी गाई जाती है।

वर्ष 1937 में फिर से महाराज चूड़ाचंद ने गुरु अमुबी और टीम को कोलकाता के न्यू एम्पायर हॉल में प्रदर्शन के लिए कोलकाता भेजा। प्रोसेनियम थिएटर में मणिपुरी नृत्य के अनुप्रयोग के रूप में उनकी टीम थियाम तरुण कुमार, एबेम टोम्बी, थम्बल सना ने मिलकर 30 मिनट की अवधि के साथ रासलीला प्रस्तुत की। प्रदर्शन के दौरान सरोजिनी नायडू जैसी राजनीतिक नेता मौजूद थीं। उदय शंकर भी मौजूद थे और गुरी अमुबी को बधाई देने आए। उन्होंने कहा कि प्रदर्शन शानदार था लेकिन रोशनी की व्यवस्था अच्छी नहीं थी। दो दिनों के बाद उदय शंकर ने अपने इम्प्रेसारियो हरेन घोष को गुरु अमुबी से मिलने के लिए भेजा। उन्होंने कहा कि मणिपुर नृत्य सुंदर है लेकिन धीमा है। उन्होंने नृत्य के आंतरिक विचार को व्यक्त करते हुए नृत्य, नाटक सामग्री में अधिक नृत्य रचना और कहानी का सुझाव दिया। गुरु अमुबी इस नए रचनात्मक विचार को मन में

यह चर्चा करना दिलचस्प होगा कि मैसनाम गुरु अमुबी ने एकल नृत्य की रचना करने के बारे में कैसे सोचा। यह जानने के लिए हम उनकी जीवन की कहानी पर दृष्टिपात करते हैं। गुरु अमुबी ने छोटी उम्र से ही अपनी बड़ी बहन से मैतेई जगोई सीख ली थी। उनके पिता कर्नल सामू ने वर्ष 1891 में बीर टिकेंद्रजीत का समर्थन करते हुए एंग्लो मणिपुरी युद्ध लड़ा था जिसके लिए उन्हें अंडमान निकोबार द्वीप में निर्वासन में भेज दिया गया था। निर्वासन के बाद उन्होंने अपने शेष दिन वृन्दावन में बिताए। युवा गुरु अमुबी ने वृन्दावन में अपने पिता की सेवा में कुछ समय बिताया था। अपने पिता के निधन के बाद गुरु अमुबी मणिपुर वापस आ गए और अपनी बहन के साथ रहने लगे जहां उन्होंने फिर से नृत्य और संगीत की दुनिया में प्रवेश किया। उन्होंने सनाख्या सनाजाओबा जैसे विद्वान गुरु से नट-संकीर्तन सीखना शुरू किया। उन्होंने वैष्णवी धर्म और सदियों पुरानी मैतेई पारंपरिक संस्कृति के मानदंडों की अधिक समझ के साथ गुरु हुइड्रोम झूलोन माचा से नृत्य सीखा, विशेष रूप से भंगि-मंगा नृत्य।

लेकर घर चले गए। गुरु अमूबी के लिए उदय शंकर के सुझाव और प्रचलित दुनिया के नृत्य परिदृश्य के बीच सामंजस्य बैठाना अपनी 12 सदस्यों की टीम के साथ एक बड़ी चुनौती थी। उन्होंने नाटक भाग को हटाकर "संसेनबा यशोदा कृष्ण" की रचना शुरू की। उन्होंने वसंत रास को छोटा करने का प्रयास किया। वसंत रास को मंचीय प्रस्तुति बनाने में अरंबम याइमालेई का योगदान रहा है। 1939 में फिर से कई बदलावों के साथ टीम ने कोलकाता, टाटा नगर और बंगाल के अन्य हिस्सों में प्रदर्शन किया। इसके अलावा, बॉम्बे में गुरु अमुबी की मुलाकात हरेन घोष से हुई और उदय शंकर ने उन्हें अल्मोडा में अपने इंडिया कल्चर सेंटर में मणिपुर डांस गुरु की नौकरी की पेशकश की। उस दौरान उनकी उम्र 58 साल थी।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, अल्मोड़ा में अमला शंकर का पहला एकल प्रदर्शन था और गुरु अमूबी ने पुंग बजाया था। द्वितीय विश्व युद्ध से पहले और बाद में गुरु अमुबी ने अपना समय मणिपुरी के साथ-साथ गैर मणिपुर छात्रों को पढ़ाने में समर्पित किया। इतना ही नहीं, आगे उन्होंने मणिपुर में एक बाकायदा संस्थान की स्थापना की, जिसमें युवा कलाकारों को पढ़ाया जाता था और उन्हें मणिपुरी नृत्य का प्रदर्शन करने के लिए मणिपुर से बाहर भेजा जाता था। उनके कई छात्रों में से संविता बेन मेहता, कपिला वात्स्यायन, अमेरिकी लेखक और विद्वान शांति वर्धन विशेष उल्लेखनीय हैं।

वर्ष 1967 में गुरु अमुबी ने मणिपुर नृत्य महाविद्यालय में पर्यवेक्षक के रूप में काम किया, जिसका उद्घाटन 1954 में नेहरू ने किया था। 76 वर्ष की आयु में गुरु अमुबी को गीत गोविंद उत्सव के लिए संगीत नाटक अकादमी और ललित कला अकादमी से निमंत्रण मिला। भारत के विभिन्न शास्त्रीय नृत्यों को प्रदर्शित करने वाले एक उत्सव में गुरु अमुबी को गीत गोविंद प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया गया था। उस 45 मिनट की प्रस्तुति में श्रीमती टंडन और श्रीमती सूर्यमुखी सहित चार साथियों ने अपनी प्रस्तुति दी थी।

गीत-गोविंद की महान कविता में 12 अध्याय हैं और इसमें 24 गीत हैं। शुरुआत में नंद बाबा ने भगवान कृष्ण के संरक्षक राधिका से भयानक तूफान के दौरान बाल कृष्ण की सुरक्षा का ख्याल रखने का अनुरोध किया। यमुना नदी के किनारे भगवान कृष्ण और श्रीमती राधिका का मिलन पृथ्वी पर भगवान और मानव के मिलन का आदर्श उदाहरण है। मंगलाचरण के बाद दशावतार का उल्लेख किया गया है। इसके बाद श्री कृष्ण वंदना है जो भगवान कृष्ण के स्वरूप पर आधारित है। अगले अध्याय में गोपियों के साथ समागम के बाद वसंत के नैसर्गिक सौंदर्य को बहुत अच्छी तरह अभिव्यक्त किया गया है। मणिपुरी एकल नृत्य में इन सभी तत्वों का अच्छी तरह से उपयोग किया जाता है। दूसरे अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण वर्णन एवं राधिका के अनुराग की व्याख्या की गयी है। तीसरे अध्याय में श्रीकृष्ण विहार अर्थात राधिका से वियोग की भली-भांति व्याख्या की गई है। चौथे अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण को दुखी राधा के बारे में जानकारी मिलने का उल्लेख किया गया है। पांचवें अध्याय में भगवान कृष्ण ने अपने मित्र को राधिका से अलग होने की सूचना दी।

जब गुरु अमुबी ने पहली बार मणिपुरी नृत्य में गीत-गोविंद की रचना की, तो उन्होंने नृत्य महाविद्यालय में पर्यवेक्षक बनने के बाद 1960 में पहले अध्याय का दूसरा गीत चुना, जिसे "सिट्टा कमला कुचामंडला" कहा जाता है। श्रीमती टंडन और श्रीमती थम्बलनौबी ने पहली बार यह नृत्य प्रस्तुत किया। कुमारी थियाम सूर्यमुखी ने पहली बार मणिपुरी नृत्य में दशावतार का अभिनय प्रस्तुत किया।

• • •

भारतीय साँस्कृतिक मूल्यपीठिका के सुमेरु

गोस्वामी तुलसीदास की जन्मस्थली है सोरों शूकर क्षेत्र

– प्रो. योगेंद्र मिश्र

सोरों शूकरक्षेत्र भारत के उत्तर प्रदेश राज्य के कासगंज जिले में स्थित एक धार्मिक पवित्र नगर है। यह गंगा नदी के समीप स्थित पुराण प्रसिद्ध एक तीर्थस्थल है। इसका उल्लेख वाराहपुराण, पद्मपुराण, श्रीमद्देवीभागवत, स्कन्दपुराण आदि में वर्णित है। स्कन्दपुराण के वैष्णवखण्ड में इसे तीर्थराज कहा गया है। यहाँ 108 सिद्धपीठों में एक जयापीठ व प्राचीन वराहमंदिर सहित सैकड़ों मन्दिर स्थित हैं।

शूकर क्षेत्र सोरों एक सनातन तीर्थ है। यह पुण्य-तीर्थ भारत के उत्तर प्रदेश के कासगंज जिला मुख्यालय से 12 किमी दूर मथुरा-बरेली राजमार्ग पर, सातवें- वैवस्वत-मन्वन्तर में अवतरित भागीरथी गंगा के तट पर अवस्थित है। यह पावन तीर्थ पृथ्वी उत्पत्ति स्थल, वैश्विक संकल्प-'श्री श्वेत वराह कल्पे, आदि वराह श्री शूकर क्षेत्रे' की उद्घाटन भूमि, श्री वेदव्यास प्रणीत विविध पुराणों में अनेक विधि रूपेण वर्णित भगवान वराह के आदि वराह, महावराह, यज्ञवराह, श्वेत वराह, नर वराह, लिंग वराह आदि अवतारों का प्रादुर्भाव एवं तिरोभाव भूमि, छठवें चाक्षुष मन्वन्तर में आदि गंगा की प्राकट्य भूमि, मासानाम मार्गशीर्षोऽहम्'(गीता-१०.३५) 'एकाहम मार्गशीर्ष्याम च द्वाद्श्याम सितवैष्णवम् (व0 पु 0 १७९)' से एकादशी उत्पत्ति भूमि, इसी दिन उपोसित भगवान वराह का द्वादशी के दिन लीलाधाम गमन भूमि, सांख्य शास्त्र प्रणेता महर्षि कपिलमुनि तथा सहस्रों देव -ऋषि गणों की तपोभूमि, भगवान श्रीकृष्ण, बुद्ध, पांडवों, सिखों के छठवें गुरु हिन्दू पद सच्चा पातशाह हरगोविंद साहब, पुष्टिमार्ग प्रवर्तकविष्णु, स्वामीप्रज्ञाचक्षुस्वामीबिरजानन्द, महाकवि पद्माकर, चैतन्य महाप्रभु की यात्रा एवं विहारभूमि, आचार्य वल्लभ की २३ वीं भागवत भूमि, श्रीरामचरितमानस के कालजयी कवि, सनातन धर्म के चल विश्वविद्यालय गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी, उनकी पत्नी रत्नावली, उनके चचेरे भाई अष्टछापकवि नन्ददास की जन्म-क्रीडा एवं विद्या भूमि रही है।

आर्यसमाजप्रवर्तक स्वामी दयानन्द व बदरियानिवासी पंडित अंगदराम शास्त्री की शास्त्रार्थ भूमि, पांडव पौत्र राजा जनमेजय की साधना भूमि, भारत के साढ़ेतीन वटों में से एक 'गृद्धवट', भारतके साढ़ेतीन श्मशानोंमें सेएक महाश्मशान (जहाँ नित्य लगभग एक हजार श्मशानों से अस्थियाँ विसर्जन हेतु आती हैं), भारत के सप्तक्षेत्रोंमें से एक परमपावन शूकर क्षेत्र, मुगलसम्राट अकबरको पीने हेतु गंगाजल की निर्यात भूमि, थानेश्वराधिपति राज्यवर्धन का शशांक के साथ शरीरांत भूमि, कन्नोजाधिपति जयचंद व दिल्लीसम्राट पृथ्वीराज चौहान औरसंयोगिता की स्वयम्वर भूमि, नाथ सम्प्रदाय से अनुस्यूत तथा सनातनकाल से अनेकानेक ऐतिहासिक, पौराणिक, पुरातात्विक, साहित्यिक, सांस्कृतिक-महानताओं से ओतप्रोत गंगातटवर्ती शूकर क्षेत्र सोरों सनातन तीर्थ ललाट धरती पर एकमेव है, जहाँ आजभी घोर कलिकाल में विसर्जित अस्थियाँ ७२ घंटोंमें रेणु रूप होती हैं, ऐसा विज्ञान सम्मत प्रयुक्त है।

ऐसे दिव्य मुक्त तीर्थ 'परम् सौकरवमस्थानम् सर्वसंसारम मोक्षणम्', (व.पु.१३७) में लगभग एक हजार तीर्थयात्रियों द्वारा पिंडदान-श्राद्ध-तर्पण कर्म आदि नित्य होते हैं। जहां नेपालनरेश द्वारा जीर्णोद्धारित श्रीवराहमंदिर शोभित है, तथा वराहपुराणोक्त चौंसठ मोहल्ले आज भी हैं।

'यत्र भागीरथी गंगा मम सौकरवेस्थिता'

मेवाड़ नरेश महाराणा प्रताप ने सोरों में तुलादान किया था। जयपुरनरेश ने पितृदोष निवृति हेतु हरिपदीगंगा के घाटों का जीर्णोद्धार कराया था, ऐसे 'युगयुगीन शूकरक्षेत्रसोरों 'में भारतीय सांस्कृतिक रिक्थ का अपरिमेय भंडार है, सामाजिक इतिहास की सुदीर्घ थाती है, पौरोहित्य कर्म का प्रधान केंद्र है, आगम-निगम, हिंदी-संस्कृत वांग्मय के शताधिक ग्रन्थों में सोरों का सविस्तार उल्लेख है।

श्री अटल बिहारी वाजपेयी का सोरों से आत्मीय लगाव था। उनके हाथों पश्चिमी तटोंके घाटों का उद्घाटन हुआ था। राजमाता सिंधियाने जनसंघ संस्थापक श्यामा प्रसाद मुखर्जी की प्रतिमा का अनावरण किया था। दीनदयाल उपाध्याय का भी सोरों से नैकट्य रहा। संघ के चतुर्थ व पंचम सरसंघचालक का इस तीर्थ से नेह रहा। रज्जू भैया व अटल जी की तो अस्थियाँ भी यहीं विसर्जित हुईं। प्रधानमन्त्री निवास में अटल जी ने लेखक की पुस्तक 'कथा सु सूकरखेत' का विमोचन किया था।

ऐसे सनातन तीर्थ को सरकार यथाशीघ्र पर्यटनतथा तीर्थ सूची में समायोजित करने का शासनादेश जारी करे। साथ ही कासगंज जिला का नामकरण 'तुलसीदास नगर', शूकरक्षेत्र सोरों शोध संस्थान, गोस्वामी तुलसीदास अकादमी, रत्नावली राजकीय कन्या महाविद्यालय, शूकरक्षेत्र सोरों विकास प्राधिकरण का गठन, पंचक्रोशी-परिक्रमा मार्ग का समग्र गिरिराज परिक्रमा की तर्ज पर विकास, पुरोहित प्रशिक्षण केंद्र, तुलसीदास वेद-वेदांग पाठशाला, रामायण सर्किट के अधीन समायोजन, इंडोनेशिया की तरह रामकथाकेंद्र, रूस की तरह दैनिक रामलीला केंद्र, मारीशस की तरह रामायण सेंटर की स्थापना, संस्कृति विभाग द्वारा' वार्षिक कुम्भ : शूकरक्षेत्र महोत्सव 'मेला मार्गशीर्ष, का संयोजन हो।'व्रज तीर्थ विकास परिषद'के साथ सन्नद्ध हो, गर्ग सहिंता में यह तीर्थ मथुरा व्रज प्रदेशान्तर्गत उपव्रज में ही है।

'16वीं'सदीमें तुलसीदास सनातनधर्मके प्रचारार्थही विरक्त हुए। उन्होंने जनभाषामें "श्रीरामचरितमानस" लिखकर समूची मानवताको एक सूत्रमें पिरोया। उनकी विरक्ति एवं'मानस'की नींव हैं-उनकी धर्मपत्नी रत्नावली, जिनके त्यागके प्रकाशसे तुलसी और 'मानस'प्रकाशित है।

तुलसी एवं उनका साहित्य भारतीय जीवनपद्धतिकी आधार शिला है। वे विश्वकी अनमोल धरोहर हैं, जिन्होंने मानवता, समरसता तथा ममत्वकी अमरवेलको फैलाया। 'रामहिं केवल प्रेम पियारा'। राम संस्कृति वाले देशों-इंडोनेशिया, ब्रह्मदेश(म्यामांर), थाई देश, मलेशिया, वर्मा, कम्बोडिया, लाओस, श्रीलंका, चीन, फिजी, मॉरीशस, गयाना, त्रिनिदाद-टुबैको, सूरीनाम, काम्बोज, जावा, इग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, उत्तरी दक्षिणी अमेरिका, अर्जेंटीना, मैक्सिको आदिमें तुलसीदास देवतारूपमें पूजित हैं।

तुलसीका मानस 'न भूतो न भविष्यति'पंचम वेद-स्वरूप जीवन शास्त्र है। जिस 'मानस' में सप्त-सोपान एवं नवाह्न पारायणके साथ'प्रस्थानत्रयी'(ब्रह्मसूत्र, उपनिषद, गीता)को पादुका बनाकर श्रीरामकथाको आधारिका स्वरूप स्वीकारा है। जिसमें ब्रह्मसूत्र के 'उपदेश-सूत्र", उपनिषदके 'सन्देश-मंत्र', गीताके 'आदेश-तन्त्र', तथा पुराणोंका सार-"नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद"समाहित है। इस 'तुलसी-त्रयी'के स्तम्भ पर 'तुलसी वेदांत'का विशाल प्रासाद सम्पूर्ण मानवता केलिए प्रसादरूपमें सिद्ध है। यह मानसही विश्व-परिवारकी आचारसंहिता है। लोक चेतनासे संपृक्त हिन्दू समाजकी संजीवनी है और लोक- मंगलकी प्रति-स्थापनाकी महौषधि है। भारतीय मनीषाका यह विश्वकोश, सांस्कृतिक सम्वेदनाओंका सुसंस्कृत महाकाव्य है। विश्वमें परिव्याप्त कोलाहल(महामारी)से संत्रस्त मानवको 'मानस'का अमृतही चिरशांति प्रदाता है। मानसकार तुलसीने मूल्यबोध पीठिकाकी संस्थापना की। उनकी प्रपत्ति अलौकिक दृष्टि चिरकाम्य है। गोस्वामी तुलसीदास सनातन धर्म के चल विश्वविद्यालय हैं, जिसमें पठन-पाठनसे प्राणी-मात्रको कैवल्यधाम(मोक्ष) की उपाधि तथा साकेत में सनातन वास सम्प्राप्त होता है। उनकी इस अनुभव गम्य प्रयोगशालामें श्रीरामानुभूति'सत्यं-शिवं-सुन्दरम एवं अमोघ'की अभिव्यक्ति है। सद-असद की मीमांसा है। प्रकाश-पुंजका सिद्धांत-शास्त्र है जिसके वे स्वयम्भू परमाचार्य हैं। इस कार्यशालामें स्वयंका आत्म-परिष्कार कर रामत्वको आत्मसातकरना ही 'सम्वाद'है। जो वैश्विक कल्मष को'परहित सरिस धरम नहिं भाई'रूपमें जीवको निष्कलंक बना देता है। उनके सम्पूर्ण शिक्षा ग्रन्थोंमें अवगाहनसे अभीष्ट ही प्राप्त होता है।

'मानस'में गति-तरंगोंके द्वारा जीवात्माको तन्मय, तदाकार तथा झँकृत करनेकी अपूर्व शक्ति है। जो दानवको मानवमें परिवर्तित करती है। वस्तुतः तुलसी सनातन भारतीय संस्कृतिके व्यास-स्तरीयउद्गाताऔर व्याख्याता तो हैं ही, शंकराचार्य स्तरीय संरक्षक व सम्प्रसारक भी हैं। वे भावनाओं और विचारोंके ऐसे महासागर हैं कि समग्र और शाश्वत मानवीय भाव-विचार सरिताएँ अंततः उनमें लीनहो जाती हैं। तुलसी प्रत्येक सदी के प्रधान पुरूषके रूपमें प्रासंगिक हैं।

समग्र कलाओंके पुंजीभूत तुलसीका जीवन(पारिवारिक पृष्ठभूमि)परिशीलनकाही नहीं, समवेत स्वीकृतिकाभी विषय है, जिनके जीवनके श्रीरामही प्राण हैं। श्रीराम हमारी राष्ट्र काया की आत्म-सत्ता हैं। वे समस्त व्यवस्था चक्रोंके नाभिक और प्रवर्तक हैं, विचारोंके मूलाधार हैं। श्रीरामका कहींभी कोईभी विकल्प नहीं है। और न ही तुलसीदास जीका।

तुलसीदास पर सबका अधिकार है। सम्पूर्ण भारतकाही नहीं, विश्वके सभी वैचारिक रूपसे साझीदार लोगोंकाभी अधिकार है। तुलसीको अहम्मन्यवादियोंके शिकार

करनेका, पूर्वाग्रही लोगोंके कल्पित स्थान विशेषसे जोड़नेका, क्षेत्रीय-स्वार्थी जनोंके सीमामें आबद्ध करनेका, तुलसीके नाम पर साहित्यकार बनने का, समन्वयके पुरोधाकी सृजन शक्तिको संकीर्णतामें परिवर्तित होनेका, इस सबसे बचानेके उपाय करनेका और तुलसीके नाम पर तरह-तरहके प्रपन्च करनेका सबको पूरा अधिकार है। हाँ,

तुलसी के साथ छल-कपट का मन भाव रुके, वे पृथ्वीउत्पत्तिस्थल भगवानश्रीवराहकी प्राकट्यभूमि, आदि व भागीरथीगङ्गा तटवर्ती सनातन तीर्थ है के थे, रहेंगे। तुलसी का यह अधिकार"मानस मूल मिली सुरसरिहिं"तथा दियो सुकुल जनम शरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को"(विनयपत्रिका) सनाढय विप्र शुक्ल आस्पदीय आत्माराम-हुलसी के औसर से श्रावण शुक्ल सप्तमी शुक्रवार संवत 1568 अर्थात 01 अगस्त, 1511 को शूकरक्षेत्रसोरोंके मोहल्ला योगमार्ग में जन्मे। यह सत्य सभी को मुक्त भाव से स्वीकारना होगा। गीताप्रेसका जब धरती पर अस्तित्त्व भी नहीं था, तवभी यही सत्य था, इस सत्यको छीननेका अधिकार किसीको नहीं होना चाहिए। तुलसी किसके, कहाँ के हैं। इसका महत्त्व उतना नहीं, जितना कि इसका- कि तुलसीके कौन-कौन हैं। "राजवीर अहीर उपाख्य राजा साधु"की स्मृतिमें संवत 1652 में तुलसी ने"राजापुर"स्थापित किया। अंग्रेजकालीन गजेटियर्स व मध्यकालीन साहित्य में सर्वत्र प्रमाण हैं।

तुलसी 36 वर्षकी अवस्थामें शूकरक्षेत्र सोरोंसे प्रयाणकर वे 63वर्षकी अवस्था तकअयोध्या, प्रयाग, मथुरा, काशी(27 वर्ष अवध में) आदि स्थानोंमें भ्रमण और 89 वर्षकी अवस्था तक चित्रकूट व यमुनाकिनारे (यशस्विनी, पयस्विनीनदी), (26 वर्ष बुंदेलखंड में)निवास करते रहे, बादमें 112 वर्षकी आयुतक (23वर्ष) काशीवास किया, संवत 1680 में कैवल्य(साकेत गमन)प्राप्त किया।

20 फरवरी 1595 को गोस्वामी तुलसीदास ने नन्दवंशी राजवीर सिंह अहीर उपाख्य राजा साधु(निवासी ग्राम औगासी, तहसील बबेरू, जिला बाँदा) की स्मृति में 'राजापुर' बसाया। कालिंजर, ओरछा, सिंहुड़ा के राज्याश्रित कवि 'अविनाश राय ब्रह्मभट्ट' जो तुलसी के मित्र थे, ने "तुलसीप्रकाश"में जो प्रत्यक्ष देखा, लिखा। 'राजापुर स्थापना चतु:शती' का आयोजन हिंदी जगत ने सन 1995 में मनाया।

सन 1707 में ओरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगलिया सल्तनत के सभी फरमान जाली हैं। सरकारी रिकार्ड में सन 1874 में 'राजापुर' अभिलेख में आया। 'राजापुर' के तुलसी मंदिर में 'राजासाधु' की प्रतिमा है। जिसकी मूर्ति संलग्न है। 'राजापुर' में तुलसी की न कोई शिष्य परम्परा है न उनके द्वारा लिखित 'श्री रामचरित मानस' की प्रति। सब रेत बालू पर भवन बनाये हैं। कलि के कालनेमियों ने महज़ उदरपूर्ति का साधन, माध्यम बना लिया है।

1985 में नारायण दत्त तिवारी की सरकार में तुलसीजन्मभूमि सोरों सूचना विभाग के गजट में भी सोरों के रूप में छपा। 2018 की उत्तरप्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद की कक्षा 7 की हिंदी पाठ्य पुस्तक"मंजरी"में भी तुलसी जन्मभूमि सोरों ही बच्चों ने पढ़ा। अंग्रेज कालीन गजेटियर्स 1874, 1886, 1908, 1909 सभी में स्पष्ट लिखा है कि अकबर के शासन काल में सोरों, परगना अलीगंज, जिला एटा के निवासी थे, यमुना किनारे उस जंगल में आये जहाँ अब राजापुर स्थित है। सोरों से आकर तुलसी ने राजापुर बसाया। 1947 से आज तक किसी मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री ने सरकारी अभिलेखों की अवहेलना नहीं की, इन्ही गजेटियर्स के आधार पर श्री रामजन्मभूमि मंदिर का 500 साल बाद निर्णय हुआ। सन 1810 में कलकत्ता से श्री रामचरित मानस का प्रथम प्रकाशन हुआ, बाद में वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित तुलसी साहित्य में जीवनी में शूकरक्षेत्र सोरों ही छपता रहा।

100 साल पहले जब गीताप्रेस नहीं थी, गीताप्रेस ने प्रारम्भ में तो सोरों ही तुलसी जन्म स्थान छापा, बाद में पूर्वांचल की कल्मषयुक्त राजनीति के कारण 'राजापुर' का झूठा प्रचार प्रसार करना शुरू किया, जो जारी है। हिंदी जगत सोरों ही तुलसीजन्मभूमि है को जानता, मानता रहा।

सरकारें सन्त महापुरुष की जन्मभूमि का निर्णय किसी के कहने या सरकारी पुरूस्कृत सन्त पीठाधीश्वर के अहम युक्त दुराग्रह को पुष्ट करने हेतु नहीं दे/कर सकतीं। इससे विभ्रम पैदा होता है, जनमन की आस्था भगवाधारी शासक के प्रति कुंठित होती है, जिन्होंने तुलसी पर जीवनभर शोध किया है, स्वयं तुलसी ने अपनी सभी बारह रचनाओं में प्रत्यक्ष वा परोक्ष सोरों तथा अपने परिवार को रेखांकित किया है।

सौभाग्य से "गोस्वामी तुलसीदास निर्वाण चतु:शती"(विक्रम संवत 1680-2080) वर्ष का प्रारंभ है। चैत्र शुक्ल राम नवमी "श्री रामचरित मानस सार्ध चतु:शती" विक्रम सम्वत (1631-2081) प्रारम्भ हो रही है जिसकी वैश्विक कार्य योजना तैयार है। दोनों चतु:शती की अग्रणी भूमिका "गोस्वामी तुलसीदास प्रतिष्ठान" निर्वाह कर रहा है। हिंदी के शिल्पी गोस्वामी तुलसीदास की जन्मविद्या एवं क्रीडाभूमि शूकरक्षेत्र सोरों से सनातनत्व का, हिंदी की राजधानी तथा गोस्वामी तुलसीदास की कर्मभूमि काशी से रामत्व का तथा श्री राम जन्मभूमि मन्दिर निर्माण (अयोध्या) से हिंदुत्व का जयघोष दिग्दिगंत गुंजायमान होगा।

देश के सांस्कृतिक विस्तार में हिन्दी की भूमिका के परिप्रेक्ष्य में गोस्वामी तुलसीदास जी का दाय अप्रतिम है।

"मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सुसूकरषेत" (बालकाण्ड)

• • •

सदस्य, हिंदी सलाहकार समिति,
नागर विमानन मंत्रालय

इतिहास में गुम चोल एवं अन्य भारतीय राजवंश

– प्रणय कुमार

संसद के नए भवन में राजधर्म और न्याय के साथ-साथ सत्ता हस्तांतरण के प्रतीक सेंगोल की स्थापना ने गौरवशाली चोल राजवंश की याद दिलाने का भी काम किया है।

कम-से-कम स्वातंत्र्योत्तर भारत की इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में विषयवस्तु का चयन एवं निर्धारण इस प्रकार किया जाना चाहिए था कि वर्तमान को अतीत के गौरवशाली अध्यायों का समग्र एवं संपूर्ण बोध हो ताकि भविष्य की मज़बूत आधारशिला रखी जा सके। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इतिहास के पाठ्यक्रमों का चयन एवं निर्धारण कुछ इस प्रकार किया गया है कि जहाँ मुगलों की पूरी-की-पूरी वंशावली एवं ब्रितानी लॉर्डों-राजाओं की क्रमबद्ध सूची याद रह जाती है, वहीं लंबे समय तक यशस्वी एवं प्रभावी शासन करने वाले चोल या अन्य भारतीय राजवंशों के दो-चार राजाओं के नाम भी सहसा याद नहीं आते। आज कितने ऐसे विद्यार्थी, शिक्षक, आम या प्रबुद्ध भारतीय होंगें, जिन्हें चोल राजवंश के राजाओं के नाम, उनके काम, उनके राज्य-विस्तार, कला, स्थापत्य, साहित्य एवं संस्कृति आदि क्षेत्रों में उनके योगदान इत्यादि के बारे में समुचित एवं सम्यक जानकारी होगी? शायद बहुत कम या बिलकुल नगण्य।

उल्लेखनीय है कि आज से लगभग 2300 वर्ष पहले 300 ईसा पूर्व में चोल राजवंश की स्थापना हुई थी, जिसका प्रभाव 9वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी तक देखने को मिलता है। अशोक के शिलालेख, पाणिनी की अष्टाध्यायी, कात्यायन द्वारा रचित वार्तिक, संगम साहित्य(100-250 ई.), शैव संतों द्वारा लिखे गए ग्रंथ, बौद्धग्रंथ महावंश, संस्कृत, तमिल, तेलगू एवं कन्नड़ भाषा के अनेक अभिलेखों, उस दौर के सिक्कों तथा विदेशी विवरणों जैसे अनेक स्रोतों से चोलों के गौरवशाली इतिहास की प्रामाणिक जानकारी मिलती है। नवीं सदी के मध्य से विजयालय के शासनकाल (848-871 ई.) में चोलों का पुनरुत्थान हुआ। विजयालय की वंश-परंपरा में लगभग 20 राजा हुए, जिन्होंने कुल मिलाकर लगभग साढ़े चार सौ (848-1279ई.) से भी अधिक वर्षों तक शासन किया। इनमें आदित्य प्रथम, परांतक प्रथम, परांतक द्वितीय, राजराज प्रथम, राजेंद्र चोल प्रथम, राजाधिराज प्रथम, कुलोत्तुंग प्रथम, विक्रम चोल, कुलोत्तुंग द्वितीय, राजराज द्वितीय, राजाधिराज द्वितीय, कुलोत्तुंग तृतीय, राजराज तृतीय एवं राजेंद्र चोल तृतीय आदि प्रमुख थे। राजराज प्रथम (985-1014 ई.) एवं राजेंद्र प्रथम (1014-1044ई.) चोल राजवंश के सबसे प्रतापी एवं पराक्रमी राजा थे।

आज से लगभग 2300 वर्ष पहले 300 ईसा पूर्व में चोल राजवंश की स्थापना हुई थी, जिसका प्रभाव 9वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी तक देखने को मिलता है। अशोक के शिलालेख, पाणिनी की अष्टाध्यायी, कात्यायन द्वारा रचित वार्तिक, संगम साहित्य(100-250 ई.), शैव संतों द्वारा लिखे गए ग्रंथ, बौद्धग्रंथ महावंश, संस्कृत, तमिल, तेलगू एवं कन्नड़ भाषा के अनेक अभिलेखों, उस दौर के सिक्कों तथा विदेशी विवरणों जैसे अनेक स्रोतों से चोलों के गौरवशाली इतिहास की प्रामाणिक जानकारी मिलती है।

इनके शासन-काल में चोल साम्राज्य का प्रभाव एवं विस्तार दक्षिण के तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, केरल, कर्नाटक से लेकर आज के श्रीलंका, बांग्लादेश, बर्मा, वियतनाम, थाईलैंड, मालदीव, मलेशिया, इंडोनेशिया, सिंगापुर, कंबोडिया आदि तक फैला हुआ था। कहते हैं कि जो समुद्र पर राज कर लेता है, वह पूरी दुनिया पर राज करता है। चोल समुद्री मार्ग के महत्त्व से भली-भाँति परिचित थे। उन्होंने अधिकांश युद्ध समुद्र के रास्ते जीते।

उनकी नौसेना अंग्रेज, फ्रांसीसी एवं पुर्तगाली नौसेना से भी उन्नत थी। उनकी नौसेना में 1000 युद्धपोत और 10 लाख से अधिक सैनिक थे। उनकी नौसेना इतनी शक्तिशाली थी कि उन्होंने पूरे बंगाल की खाड़ी पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था, इसलिए उसका प्राचीन नाम 'चोल झील' भी है। अपनी नौसेना के बल पर उन्होंने श्रीलंका पर भी जीत दर्ज की थी। उनकी नौसेना में महिलाएँ भी सम्मिलित थीं। वे लड़ाइयों में भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती थीं। उनकी नौसेना के चार प्रमुख भाग थे। धरानी - जो समुद्री युद्ध में इस्तेमाल होने वाले आज के विध्वंसकों के समकक्ष थे, लूला - आजकल के छोटे युद्धपोत के समान थे, वज्र- आज के समय के आधुनिक युद्धपोत की तरह तेजी से हमला करने में सक्षम थे और थिरिसदाई सबसे ख़तरनाक और हथियारों से लैस युद्धपोत, जो शत्रुओं के युद्धपोत को तबाह करने में सक्षम थे। आज से लगभग 1000 वर्ष पूर्व इतनी विकसित एवं उन्नत नौसेना चोलों की सामरिक दूरदर्शिता एवं शक्ति की परिचायक है। चोलों की सेना चतुरंगिनी थी। उसमें पैदल, धनुर्धारी, अश्वारोही और गज-सैनिक सम्मिलित थे।

चोलों के विभिन्न अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इनका शासन-तंत्र सुव्यवस्थित था। राज्य का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था जो मंत्रियों एवं राज्याधिकारियों की सलाह से शासन करता था। उनकी नौकरशाही सुसंगठित थी, जिसमें अधिकारियों के उच्च (पेरुंदनम्) और निम्न (शिरुदनम्) दो वर्ग थे। केंद्रीय विभाग की ओर से स्थानीय अधिकारियों का निरीक्षण और नियंत्रण करने के लिए 'कणकाणि' नाम के अधिकारी होते थे। सुशासन की दृष्टि से संपूर्ण राज्य को अनेक मंडलों में विभाजित किया गया था। मंडल को भी कोट्टम, वलनाडु, नाडु, कुर्रम, ग्राम जैसी छोटी इकाइयों में बाँटा गया था। संपूर्ण भूमि नापी हुई थी और करदायी तथा करमुक्त भूमि में बँटी थी। नगरम् उन स्थानों की सभाएँ थीं, जहाँ व्यापारी वर्ग प्रमुख था। ग्रामसभाओं को 'उर' या 'सभा' कहा जाता था। इन 'सभाओं' की कार्यकारिणी परिषद (आडुगणम्) का चुनाव जनसामान्य में से योग्यता के आधार पर निश्चित अवधि के लिए किया जाता था।

उत्तर मेरू से प्राप्त अभिलेख के अनुसार ग्राम-शासन 'सभा' की पाँच उपसमितियों द्वारा किया जाता था। 'सभाएँ' शासन के लिए स्वतंत्र थीं तथा उनके कामकाज में राजा का भी हस्तक्षेप नहीं के बराबर था। 'सभाओं' के कार्यों के संचालन के लिए अत्यंत कुशल और संविधान के नियमों की दृष्टि से संगठित और विकसित समितियों की व्यवस्था थी, जिन्हें 'वारियम्' कहते थे। न्याय के लिए गाँव और जाति की सभाओं के अतिरिक्त राज्य द्वारा स्थापित न्यायालय भी थे। निर्णय सामाजिक व्यवस्थाओं, लेखपत्र और साक्षी के प्रमाण के आधार पर होते थे। सुसंगठित नौकरशाही के साथ उच्च कोटि की कुशलतावली स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं का सुंदर और सफल सामंजस्य चोल शासन की सबसे प्रमुख विशेषता थी। स्थानीय जीवन के विभिन्न अंगों के लिए विविध सामूहिक संस्थाएँ थीं जो परस्पर सहयोग से कार्य करती थीं। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि चोलों की शासन-व्यवस्था में आज की लोकतांत्रिक एवं स्थानीय स्वायत्तशासी शासन-व्यवस्था की प्रारंभिक झलक देखने को मिलती है।

दक्षिण के कुछ सिने सितारों ने पूर्वाग्रह या कथित पंथनिरपेक्षतावादी मानसिकता के कारण भले कहा हो कि चोल हिंदू राजा नहीं थे, पर सत्य यह है कि अधिकांश चोल शासक भगवान शिव के अनन्य उपासक थे। वे भी अन्य हिंदू राजाओं की भाँति उदार, सहिष्णु एवं प्रजा-वत्सल थे। उनके राज्य में जैन, बौद्ध, पारसी एवं ईसाई मतावलंबियों को भी समान अधिकार प्राप्त थे। उनके द्वारा बनवाए गए बृहदेश्वर-राजराजेश्वर, गंगईकोंड चोलपुरम, ऐरावतेश्वर आदि मंदिर स्थापत्य एवं वास्तुकला के अनुपम उदाहरण हैं। तंजौर के बृहदेश्वर मंदिर को 1987 में, जबकि दरासुरम के एरावतेश्वर मंदिर और गांगेयकोंड चोलपुरम के मंदिर को 2004 में यूनेस्को द्वारा विश्व विरासत धरोहर में सम्मिलित किया गया। इनमें तंजौर का बृहदीश्वर मंदिर पूरी तरह से ग्रेनाइट से निर्मित है। विश्व में यह अपनी तरह का पहला और एकमात्र मंदिर है जो कि ग्रेनाइट का बना हुआ है। यह अपनी भव्यता, वास्तुशिल्प और केन्द्रीय गुम्बद से लोगों को अत्यधिक आकर्षित करता है। इसके तेरह मंजिलें भवन की ऊँचाई लगभग 66 मीटर है। मंदिर भगवान शिव की आराधना को समर्पित है।

यह कला की प्रत्येक शाखा - वास्तुकला, पाषाण व ताम्र में शिल्पांकन, प्रतिमा विज्ञान, चित्रांकन, नृत्य, संगीत, आभूषण एवं उत्कीर्णकला का भंडार है। यह मंदिर उत्कीर्ण संस्कृत व तमिल पुरालेख एवं सुलेखों का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस मंदिर के निर्माण कला की एक विशेषता यह भी है कि इसके गुंबद की परछाई पृथ्वी पर नहीं पड़ती। शिखर पर स्वर्णकलश स्थित है। जिस पाषाण पर यह कलश स्थित है, अनुमानत: उसका भार 2200 मन (88 टन) है और यह एक ही पाषाण से बना हुआ है। मंदिर में स्थापित विशाल, भव्य शिवलिंग को देखने पर उनका वृहदेश्वर नाम सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है। मंदिर में प्रवेश करने पर गोपुरम् के भीतर एक चौकोर मंडप है। वहाँ चबूतरे पर नन्दी जी विराजमान हैं। नन्दी जी की यह प्रतिमा 6 मीटर लंबी, 2.6 मीटर चौड़ी तथा 3.7 मीटर ऊँची है। भारतवर्ष में एक ही पत्थर से निर्मित नन्दी जी की यह दूसरी सर्वाधिक विशाल प्रतिमा है।

ऐरावतेश्वर मंदिर भी भगवान शिव को समर्पित है। शिव को यहाँ ऐरावतेश्वर के रूप में जाना जाता है, क्योंकि इस मंदिर में देवताओं के राजा इंद्र के सफेद हाथी ऐरावत द्वारा भगवान शिव की पूजा की गई थी। यह मंदिर भी कला एवं स्थापत्य कला का भंडार है और

चोलों के विभिन्न अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इनका शासन-तंत्र सुव्यवस्थित था। राज्य का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था जो मंत्रियों एवं राज्याधिकारियों की सलाह से शासन करता था। उनकी नौकरशाही सुसंगठित थी, जिसमें अधिकारियों के उच्च (पेरुंदनम्) और निम्न (शिरुदनम्) दो वर्ग थे। केंद्रीय विभाग की ओर से स्थानीय अधिकारियों का निरीक्षण और नियंत्रण करने के लिए 'कणकाणि' नाम के अधिकारी होते थे।

इसमें पत्थरों पर शानदार नक्काशी देखने को मिलती है। गंगैकोण्ड चोलपुरम् तमिलनाडु के अरियालुर जिले में स्थित है। इस मंदिर का निर्माण 1035 ईस्वी में राजेंद्र चोल प्रथम द्वारा कराया गया था। देश के उत्तरी भाग में गंगा को जीतने के बाद, उन्होंने गंगा के विजेता के रूप में गंगईकोंडा चोल नाम का अधिग्रहण किया था। इस मंदिर में असाधारण गुणवत्ता की मूर्त्तियाँ हैं। यहाँ स्थापित शिवलिंग एक ही चट्टान से बनाया गया है। चोल कांस्य प्रतिमाओं को विश्व की सर्वश्रेष्ठ प्रतिमाओं में से एक माना जाता है। भोगशक्ति और सुब्रह्मण्य के कांस्य चोल धातु के प्रतीक की उत्कृष्ट कृतियाँ हैं। तांडव नृत्य मुद्रा में नटराज की मूर्त्ति उनकी मूर्तिकला की उत्कृष्टता को दर्शाती है। इसके अतिरिक्त भगवान शिव के दूसरे कई रूप, ब्रह्मा, सप्तमातृका, लक्ष्मी तथा भूदेवी के साथ भगवान विष्णु, अपने अनुचरों के साथ श्रीराम और सीता, शैव संत और कालियदमन करते हुए श्रीकृष्ण की मूर्तियाँ भी उल्लेखनीय हैं।

सिंचाई के लिए चोल नरेशों ने अनेक कुएँ एवं तालाब खुदबाए तथा नदियों के प्रवाह को रोककर पत्थर के बाँध से घिरे जलाशय (डैम) बनवाए। करिकाल चोल ने कावेरी नदी पर बाँध बनवाया था। राजेंद्र प्रथम ने गंगैकोंड-चोलपुरम् के समीप एक झील खुदवाई, जिसका बाँध 16 मील लंबा था। इसको दो नदियों के जल से भरने की व्यवस्था की गई थी और सिंचाई के लिए इसका उपयोग करने के लिए पत्थर की प्रणालियाँ और नहरें आदि बनवाई गईं। आवागमन की सुविधा के लिए प्रशस्त राजपथ और नदियों पर घाट भी निर्मित हुए। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि शासन-तंत्र से लेकर कला, वास्तु, स्थापत्य, साहित्य, संस्कृति, भवन एवं सड़क निर्माण आदि क्षेत्रों में चोल राजाओं का अभूतपूर्व योगदान था।

परंतु चोल एवं अन्य भारतीय राजवंशों के बृहत एवं विस्तृत योगदान पर इतिहास की पाठ्यपुस्तकें लगभग मौन हैं। दुखद है कि हमारे विद्यालयों-विश्वविद्यालयों में केवल दिल्ली केंद्रित इतिहास को पढ़ने-पढ़ाने या विदेशी आक्रांताओं के गौरव-गायन पर जोर दिया जाता है। समग्र, संपूर्ण एवं संतुलित भारतबोध के लिए आज इस बात की महती एवं अविलंब आवश्यकता है कि इतिहास की पाठ्यपुस्तकों व पाठ्यक्रमों में आमूल-चूल परिवर्तन हो और उनमें अतीत के तमाम गौरवशाली अध्यायों, मसलन - चोल, चालुक्य, पाल, प्रतिहार, पल्लव, परमार, मैत्रक, राष्ट्रकूट, वाकाटक, कार्कोट, कलिंग, काकतीय, सातवाहन, विजयनगर, ओडेयर, अहोम, नगा, सिख आदि तमाम प्रभावशाली राज्यों एवं राजवंशों को सम्मिलित कर - शासन के उनके तौर-तरीकों, अन्य राज्यों एवं देशों से उनके संबंधों, आयात-निर्यात की साझेदारियों, व्यापारिक नीतियों एवं स्थितियों, वाणिज्यिक मार्गों, सैन्य-संरचनाओं, सामरिक रणनीतियों, विजय-यात्राओं तथा कला, धर्म, समाज, साहित्य व संस्कृति आदि के प्रति उनके योगदान एवं दृष्टिकोण को विस्तारपूर्वक पढ़ा-पढ़ाया जाय।

संदर्भ-सूची :-

तत्कालीन मंदिर:-

1. चोल राजाओं के शासन-काल में बने मंदिर। मुख्य रूप से तंजावुर का बृहदेश्वर, दारासुरम का ऐरावतेश्वर, कांचीपुरम का कैलाशनाथार एवं गंगईकोंड मंदिर
2. तत्कालीन सिक्के, स्मारक एवं मूर्त्तियाँ

तत्कालीन अभिलेख :-

3. उत्तर मे रूरकिलयुत्तगुर विजयालय कुल के आदित्य प्रथम के तिरुकल्लकुकरम, तक्कोलम, तिलोत्तम तंजोर एवं मणिमंगलम अभिलेख
4. मौर्य वंश के सम्राट अशोक का दूसरा और सातवां अभिलेख
5. तिरुवेंदीपुरम नामक अभिलेख जोकि राजराज तृतीय का है, इसमें चोल वंश के उत्कर्ष का वर्णन किया गया है।
6. राजराज प्रथम का तंजौर मन्दिर लेख जो इनकी शासनावधि के संबंध में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारी प्रदान करता है।

तत्कालीनसाहित्य :-

7. "कलिगंत्तुपर्णि", जैन विद्वान तिरुत्कदेवर कृत "जीवक चिंतामणि" एवं कंबन कृत ''रामायण'' आदि।
8. 'नवचोलचरित', 'बृहदीश्वर महात्म्य', 'चोल वंशचरित' नामक कृति।
9. शैव एवं वैष्ण वसंतों द्वारा रचित आगम
10. संगम साहित्य एवं महाभारत
11. 'कुलोत्तुंग पिल्लैत्तमिल', 'कोंगुदेश राजाक्कल' - नामक कृति
12. सिंहलीइतिवृत्त' महावंश', पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' एवं कात्यायन की 'वार्तिक'
13. पुस्तक' पेरीप्लस ऑफ द इरीथ्रियन सी' तथा भूगोलवेत्ता 'टॉलमी' के विवरण
14. बुद्धिमित्रकृत 'वीरशेलियम' एवं शेक्किलार कृत 'पेरियपुराणम' से प्राप्त जानकारी

• • •

शिक्षाविद एवं वरिष्ठ स्तंभकार

म्यांमार में मनाई गई लोकमान्य तिलक की 103वीं पुण्यतिथि

मांडले, म्यांमार स्थित भारतीय काउंसलावास में आयोजित राष्ट्रीय चेतना के नायक, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के शिल्पी और भारतीय सनातन संस्कृति के सचेतक बाल गंगाधर तिलक की 103वीं पुण्यतिथि के अवसर पर श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के अध्यक्ष माननीय डॉ.विनय सहस्त्रबुद्धे। इस अवसर पर मांडले स्थित विश्वविद्यालयों के रेक्टरस, प्रोफेसर इंडियन डायसपोरा के प्रतिनिधिमंडल के सदस्य, ब्रह्माकुमारी आदि अनेक संगठनों के पदाधिकारीगणों की उपस्थिति से कार्यक्रम की भव्यता और सार्थकता दोनों बढ़ गई।

कार्यक्रम के अंतर्गत म्यांमार की सुप्रसिद्ध कठपुतली नृत्य, तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम का भी आयोजन किया गया। इस अवसर पर काउंसल जनरल श्री नीरज कुमार के अलावा सभी डिप्लोमेटिक सोसाइटी के वरिष्ठ अधिकारी उपस्थित थे।

यांगाँव, म्यांमार में छत्रपति शिवाजी महाराज का 350वां राज्याभिषेक दिवस गत छह जून को धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी का वीडियो संदेश सभी को सुनाया गया। छत्रपति शिवाजी महाराज के राज्य की विशेषताओं, उनकी सैन्य क्षमताओं तथा सांस्कृतिक महत्त्व पर म्यामांर के भारतीय राजदूत श्री विनय कुमार जी ने प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि छत्रपति शिवाजी भारतीय एकात्मता और राष्ट्रवाद के आदर्श हैं। सांस्कृतिक केंद्र, यांगाँव के छात्रों ने सांस्कृतिक प्रस्तुति भी दी।

गत 21 जून को अंतरराष्ट्रीय योगदिवस पर यांगाँव में कई सारे कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। इन कार्यक्रमों में भूतनाथ मंदिर, गोएथ संस्थान, चैत्रिअम होटेल, आर्ट ऑफ लिविंग आदि यांगाँव के अनेक संस्थाओं की सहभागिता हुई।

गोएथ संस्थान में केंद्र द्वारा एक डांस मुवमेंट थेरेपी कार्यशाला का भी आयोजन किया गया। इस कार्यशाला में संस्थान के अलावा फेडेरल रिपब्लिक जर्मनी का सांस्कृतिक केंद्र भी सहभागी था।

ब्राजील में मची भारतीय संस्कृति और योग की धूम

स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, साओ पाउलो, ब्राजील द्वारा नौवें अंतरराष्ट्रीय योग दिवस पर श्रृंखलाबद्ध रूप में कई सारे कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। गत चार जून को केंद्र ने पिराकाइया शहर में योग, मुद्रा और आयुर्वेद पर विभिन्न सत्रों का आयोजन किया गया। इस अवसर पर केंद्र के अधिकारियों की पिराकाइया के मेयर और पर्यटन सचिव के साथ औपचारिक भेंट भी हुई।

गत 16 जून को केंद्र ने कैम्पिनास में यूनिवर्सिटी ऑफ कैम्पिनास (UNICAMP) के सहयोग से अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस का आयोजन किया। यह कार्यक्रम मन और आत्मा का एक उल्लेखनीय संगम साबित हुआ, क्योंकि इसमें टीआईसी, श्री सत्येन्द्र के नेतृत्व में एक कायाकल्प योग कक्षा और सम्मानित स्थानीय योग शिक्षकों द्वारा योग के सार पर एक ज्ञानवर्धक बातचीत शामिल थी। पिछले महीने की यात्रा के दौरान बनी केंद्र और यूनिवर्सिटी ऑफ कैम्पिनास के बीच गहरी साझेदारी ने इस आयोजन की शानदार सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गत 11 जून को अतिबैया में वहाँ की संस्कृति सचिव सुश्री ग्लोरिया डिनिज की गरिमामय उपस्थिति में योग दिवस का कार्यक्रम आयोजित किया गया। इस अवसर पर योग के अभ्यास तथा प्रदर्शन के साथ-साथ एक लघु (मिनिएचर) चित्र कला की प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया।

17 जून को प्रतिष्ठित इपिरंगा संग्रहालय में योग दिवस का कार्यक्रम आयोजित हुआ। उल्लेखनीय है कि ब्राजील की स्वतंत्रता का जश्न मनाने के लिए संग्रहालय आधिकारिक तौर पर सात सितंबर, 1895 को खोला गया था। संग्रहालय में आयोजित योग दिवस के कार्यक्रम में प्रतिभागियों ने उत्साह से भाग लिया। कार्यक्रम में "अनूठे स्थान पर योग मुद्रा" विषय पर एक फोटो प्रतियोगिता भी आयोजित की गई और उसके विजेताओं को सम्मानित करने के लिए एक विशिष्ट समारोह भी आयोजित किया गया।

गत 21 जून को साओ पाउलो सांस्कृतिक केंद्र में अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस 2023 बड़े उत्साह के साथ मनाया गया। इस कार्यक्रम में अंतरराष्ट्रीय योग विशेषज्ञ मार्कोस रोजो की उपस्थिति थी। एसवीसीसी की निदेशक डॉ. ज्योति किरण शुक्ला ने दर्शकों को संबोधित करते हुए समग्र कल्याण के लिए योग के महत्व पर प्रकाश डाला। श्री सत्येन्द्र ने प्रतिभागियों को एक योग प्रोटोकॉल पूरा करने का निर्देश दिया, जिससे सभी के लिए एक इंटरैक्टिव और आकर्षक अनुभव सुनिश्चित हो सके।

गत छह जून को छत्रपति शिवाजी महाराज के राज्याभिषेक की 350वीं वर्षगांठ का समारोह श्रद्धा और भव्यता के साथ मनाया गया। इस अवसर पर पुष्पांजलि अर्पित की गई, स्मृति को स्थायी बनाने और आगंतुकों को प्रेरित करने के लिए पुस्तकालय में छत्रपति शिवाजी महाराज की एक पेंटिंग लगाई गई, शिवाजी से जुड़े शानदार किलों को प्रदर्शित करने वाली एक मनोरम आभासी प्रदर्शनी और सम्मानित विशेषज्ञों द्वारा ज्ञानवर्धक बातचीत की गई। इस कार्यक्रम में सुश्री मनीषा स्वामी, महावाणिज्य दूत सहित प्रतिष्ठित व्यक्तियों की उपस्थिति रही, जिन्होंने इस अवसर पर निदेशक एसवीसीसी, डॉ. ज्योति किरण शुक्ला, एचओसी श्री बक्सला और ब्राजीलियाई मित्र समुदाय के सम्मानित सदस्यों के साथ समारोह की शोभा बढ़ाई।

एसवीसीसी ने 20 जून को प्रसिद्ध निर्देशक आनंद ज्योति के साथ एक फिल्म स्क्रीनिंग और एक वार्ता की मेजबानी की।

प्रदर्शित फिल्म 'श्री रुद्रम: टीयर्स ऑफ जॉय' थी, जो किसी के उद्देश्य की खोज करने और शिव के लिए किए गए हर काम में खुशी खोजने के बारे में एक वृत्तचित्र थी। दर्शकों को फिल्म देखने और निर्देशक के साथ विशेष बातचीत करने का अवसर मिला। यह फिल्म दर्शकों को बहुत पसंद आई, जिन्होंने अपनी खुशी व्यक्त की और अपने व्यक्तिगत अनुभव साझा किए।

24 जून को, एसवीसीसी ने बहुप्रतीक्षित 'इंडिया फेस्ट: कला अमृत' कार्यक्रम में अपनी सक्रिय भागीदारी के माध्यम से, सैंटोस में प्रतिष्ठित परंपरा महोत्सव में अपनी जीवंत उपस्थिति दर्ज कराई। निदेशक एसवीसीसी, डॉ. ज्योति किरण शुक्ला ने आकर्षक परिचयात्मक टिप्पणियाँ दीं और सभी उपस्थित लोगों को एसवीसीसी का दौरा करने और अपने भारत के अनुभव को बढ़ाने के लिए एक परिवर्तनकारी यात्रा शुरू करने का हार्दिक निमंत्रण दिया। मंच लोकप्रिय और शास्त्रीय दोनों प्रकार के नृत्यों के प्रदर्शन से जीवंत हो उठा। सितार संगीत के साथ 2 पंक्ति की इन मनमोहक नृत्य प्रस्तुतियों ने दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया। 'इंडिया फेस्ट: कला अमृत' की शानदार सफलता

सांस्कृतिक केंद्र, तेहरान द्वारा मनाये गये कार्यक्रम और योग दिवस

गत छह जून 2023 को एसवीसीसी, तेहरान ने छत्रपति शिवाजी महाराज के 350वें राज्याभिषेक दिवस का उत्सव मनाया। कार्यक्रम का उद्घाटन एसवीसीसी, तेहरान के निदेशक और भारत के दूतावास, सैन्य और वायु संलग्नक, कर्नल अमित ओस्कर फर्नांडिस ने दीप प्रज्वलित और पुष्प अर्पित करके किया। "शिवाजी महाराज और उनका स्वराज" विषय का व्याख्यान कर्नल अमित ओस्कर फर्नांडिस ने दिया। इस कार्यक्रम में तेहरान के केंद्रीय विद्यालय के कई ईरानी शिक्षकों और लोगों के अलावा विद्यार्थी भी उपस्थित थे।

गत 11 जून को, निदेशक एसवीसीसी ने ईरानी पारंपरिक कला संस्थान की निदेशक श्रीमती तैयबेह इज़्ज़तुल्लाहिनेजाद से मुलाकात की। यह संस्थान ईरान की सांस्कृतिक विरासत मंत्रालय के अधीन है। इसके साथ-साथ पारंपरिक कला कार्यशालाओं का भी दौरा किया। संस्थान के सदस्यों ने भारत-ईरानी पारंपरिक कला की समानताओं के कई पहलुओं पर चर्चा की। यह जानकर आश्चर्य हुआ कि संस्थान आज भी लगभग पचास साल पहले बनारस से निर्यात किए गए सुनहरे धागों का उपयोग कर रहा है।

योग सप्ताह समारोह में आयोजित विभिन्न कार्यक्रम

अंतरराष्ट्रीय योग दिवस, 2023 के अवसर पर कर्टेन रेजर इवेंट और योगासन खेल प्रतियोगिता का आयोजन योग सप्ताह के पहले दिन 15 जून को किया गया। एच.ई. राजदूत श्री रूद्र गौरव श्रेष्ठ के साथ उप प्रमुख मिशन श्री जॉन माई ने कार्यक्रम का उद्घाटन महर्षि पतंजलि की छवि को नमन एवं पुष्प अर्पित करके किया। श्री राजदूत ने अपने उद्घाटन भाषण में समग्र स्वास्थ्य में योग का महत्व बताया। उनका कहना था कि योग संपूर्ण मानवता के कल्याण के लिए है और इसपर कोई कॉपी राईट नहीं था। सांस्कृतिक केंद्र के विद्यार्थियों ने नवीनतम योगासनों का प्रदर्शन किया।

इस अवसर पर पुरुषों और महिलाओं के लिए अलग-अलग प्रतियोगिता आयोजित की गई। पुरुषों और महिलाओं के तीन आयु समूहों में प्रतियोगिता की दो श्रेणियां थीं। जिसमें विभिन्न आयु वर्ग के कुल 19 पुरुषों और महिलाओं ने प्रतियोगिता में भाग लिया, जो 45 वर्ष से अधिक थे, 30 से 45 वर्ष के बीच थे और 18 से 30 वर्ष के बीच थे।

गत 18 जून को "योग और समग्र स्वास्थ्य" नामक एक निबंध प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था। तेहरान में रहने वाले

लोगों ने भौतिक रूप से केंद्र में अपने निबंध जमा किए, जबकि ईरानियों ने ऑनलाइन जमा किए। सावधानीपूर्वक विश्लेषण के बाद तीन विजेता चुने गए, इस प्रतियोगिता में 33 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

गत 18 जून को ही "मानवता के लिए योग" नामक पोस्टर प्रतियोगिता के आयोजन की भी घोषणा की गई। तेहरान में रहने वाले लोगों ने अपने निबंध केंद्र पर भौतिक रूप से प्रस्तुत किए, जबकि बाकी लोगों ने ऑनलाइन जमा किए। प्रतियोगिता में 33 प्रतिभागियों ने भाग लिया और उनमें से तीन विजेता चुने गए।

मासिक व्याख्यान श्रृंखला के तहत तेहरान, एसवीसीसी में "योग का इतिहास" विषय पर 19 जून को एक व्याख्यान हुआ। श्रीमती ताहेरेह महमौदी, की पुस्तक "योग का इतिहास" की सह-लेखिका, ने व्याख्यान दिया। श्रीमती महमौदी ने फ़ारसी में भारत में योग की शुरुआत से लेकर आज तक इसकी उत्पत्ति और विकास का विवरण दिया। व्याख्यान के बाद चर्चा हुई। लगभग 70 लोग उपस्थित थे। व्याख्यान के बाद, एसवीसीसी की महिला छात्रों ने योगासनों का प्रदर्शन भी किया।

20 जून को एसवीसीसी, तेहरान में "महान आधुनिक भारतीय योग मास्टर्स" नामक एक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इसमें निम्न 20 योग गुरुओं के विवरण दिया गया था।

1. महर्षि पतंजलि
2. स्वामी विवेकानन्द
3. महर्षि अरविन्द
4. रमण महर्षि
5. स्वामी कुवल्यानंद
6. तिरुमलाई कृष्णमाचार्य
7. स्वामी शिवानंद
8. परमहंस योगानंद
9. श्री मां आनंदमयी
10. स्वामी मुक्तानन्द

11. पं. श्री राम शर्मा आचार्य
12. के. पट्टाभि जोइस
13. महर्षि महेश योगी
14. बी.के.एस. अयंगर
15. निर्मला देवी
16. स्वामी सत्यानंद सरस्वती
17. आचार्य रजनीश (ओशो)
18. श्री श्री रविशंकर
19. सद्गुरु जग्गी वासुदेव
20. स्वामी रामदेव

भारतीय दूतावास और स्वामी विवेकानन्द सांस्कृतिक केन्द्र (एसवीसीसी) तेहरान ने इस्लामी गणतंत्र ईरान का युवा मंत्रालय के सहयोग से 9वां अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस (आईडीवाई) मनाया। राष्ट्रीय ओलंपिक समिति के स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स, तेहरान में 22 जून को 8:00 से 10:00 बजे तक कार्यक्रम का आयोजन किया गया था।

भारत और ईरान ने पहली बार आईडीवाई को ईरान में मनाया।

और दूतावास और एसवीसीसी के बाहर पहली बार आईडीवाई का सार्वजनिक उत्सव हुआ। 9 वीं आईडीवाई चांसरी परिसर ने एसवीसीसी की महिला योग छात्रों की भागीदारी को भी सम्मानित किया। आयोजन में 45 महिला योग साधकों ने भाग लिया।

भारतीय संस्कृति, एसवीसीसी, का प्रदर्शन करते हुए शिक्षक श्री सुरेंद्र सिंह ने कॉमन योग प्रोटोकॉल का नेतृत्व किया। ईरान में पढ़ने वाले भारतीय विद्यार्थियों सहित लगभग 43 लोग भाग लेते थे।

ईरान में भारत के राजदूत श्री रूद्र गौरव श्रेष्ठ, डॉ. मोहम्मद हसन तगीज़ादेह, महानिदेशक, अंतर्राष्ट्रीय मामले, खेल मंत्रालय और ईरान के युवा, और अली खलीली, ऑल फेडरेशन के खेल प्रमुख, खेल मंत्रालय और ईरान के युवा, इस कार्यक्रम को संबोधित करेंगे।

कैरो, मिश्र में मना भारत दिवस

काहिरा, मिस्र में भारत दिवस के दौरान मौलाना आज़ाद भारतीय सांस्कृतिक केंद्र द्वारा आयोजित भारतीय नृत्य

बानी सुएफ, मिस्र में भारत दिवस के दौरान मिस्र के कलाकारों का नृत्य

फयूम विश्वविद्यालय, फयूम (मिस्र) में भारत दिवस के दौरान मौलाना आज़ाद भारतीय सांस्कृतिक केंद्र द्वारा आयोजित भारतीय नृत्य

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....

.....

.....

.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....

.....

.....

.....

विवरण	शुल्क			प्रतियों की सं.	रुपये/US$
गगनांचल वर्ष	एक वर्ष	₹	500 (भारत)		
		US$	100 (विदेश)		
	तीन वर्षीय	₹	1200 (भारत)		
		US$	250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय		10%		
	पुस्तक विक्रेता		25%		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक .....

रु./US$ ..... बैंक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ :
कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली–110002, भारत
फोन नं. 011–23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....

नाम .....

पद .....

दिनांक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 46 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ–साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार–प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश–विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य, विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों जैसे महात्मा गाँधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएँ परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन–योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य और नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिलकर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

अध्यक्ष	:	23378616, 23370698
महानिदेशक	:	23378103, 23370471
उप-महानिदेशक (प्रशासन)	:	23370784, 23379315
उप-महानिदेशक (संस्कृति)	:	23379249, 23370794
हिंदी अनुभाग	:	23370237, 23379309-10 एक्स. 2256/2272

गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन

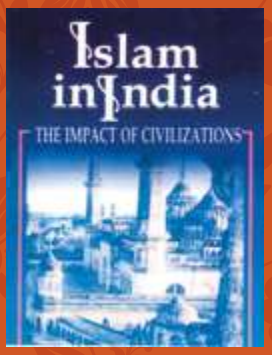

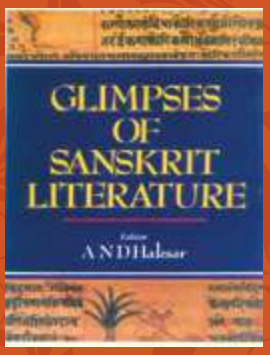

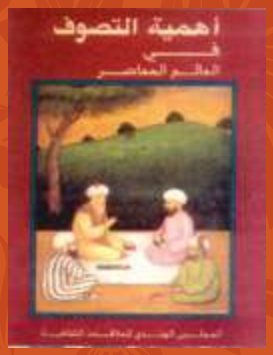

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
फोन : 91-11-23379309, 23379310
ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट : www.iccr.gov.in

आवरण परिकल्पना : ममता पोद्दार